दाम्पत्य–साधन का ग म के शारदा नायक तथा नर–नारी के जीवन–... ...
मां रम्भा मिलाप के सहवर्ती

हिन्दी उपन्यासों में सिन्धु द्वीप ग त जिनकी मनोहर ज्ञान
मानव–मानव के मन–मन्दिर में आरम्भण कर रहा है।

हे दिग्विजयी !

तुम्हारे गीतों में गीता है मेरी,
जिसको मैं गाता हूँ अब·······
क्यों कि यही आदेश तुम्हारा था।

तुम ही हो प्रेरणा मेरी,
भव्य जिसे कहता हूं मैं और अमर,···
गीतों के देव ! चित्रों के सौन्दर्य सनातन !

तुम्हारी दिग्विजय को गाना,
अनन्त की गोद में चिरन्तन नींद सोना है,
और है जीवन का चमत्कार।

उत्तरापथ के हे ! अमर तपस्वी,
कूटस्थ अचल, अवतार महान् !
तुम्हारी ज्योति जलती रहे; प्रेरणा फलती रहे,
मेरी तूलिका अमर रहे और लेखनी अप्रतिहत—
मैं लिखते रहूं औ' लिखते ही रहूं।

—स्वामी सत्यानन्द

निःसन्देह यह पाँचवां वेद है, जिसमें विश्व-निमृति का ज्ञान विश्व के लिए द्वार खोले खड़ा है······

······स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती

श्रीयुत् नरेन्द्रनाथ सिन्हा

के

परम-पवित्र तथा उदार दान की निधि

मे

यह पुस्तक प्रकाशित की गई।

प्रकाशक की लेखनी से

'शिवानन्द दिग्विजय' हमारे विशालतम इतिहास का पवित्र अध्याय है, जिस इतिहास के पन्नों में हम राम और कृष्ण, महात्मा बुद्ध और ईसामसीह की गाथा को अङ्कित पाते हैं। यह उसी इतिहास का एक विभाग है, जहाँ अवतारों के विशाल कार्य की, धर्मस्थापन और ज्ञानदान की पुनरावृत्ति का वर्णन युगविभागानुसार होता रहता है।

६ सितम्बर, सन् १६५० को उत्तरापथ के महान् तपस्वी ने दिग्पर्यटन के लिए प्रस्थान किया। ६१ दिनों तक निरन्तर भारत और लंका में अपनी अमर-गीता का शंख प्रतिध्वनित किया। अपनी विजय-वैजयन्ती लहराई और कोटिशः व्यक्तियों को परम-पुनीत आत्मज्ञान में दीक्षित किया। श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज के इस कार्य से समग्र देश में जागृति का प्रभात उदय् हुआ और ज्ञान के चन्द्र-दिवाकर जागे।

हमारे यशस्वी लेखक श्री स्वामी सत्यानन्द जी ने, जिनको इस दिग्पर्यटन के अवसर पर स्वामी जी महाराज के अनुसरण का सौभाग्य प्राप्त हो चुका है, अत्यन्त प्रेम से विवरणों की मौलिकता द्वारा यात्रा का वर्णन किया है; जो रोचक है और संक्षिप्त भी। अंग्रेजी में स्वामी वेंकटेशानन्द जी के पुण्य-प्रताप से वृहद्-ग्रन्थ प्रकाशित हुआ था और हिन्दी क्षेत्र की आवश्यकता को हमारे लेखक ने पूरा कर दिया। हम श्री स्वामी सत्यानन्द जी की कृपा के आभारी हैं, क्योंकि उन्होंने भविष्य के मानव के लिए धर्मचक्रसंस्थापक की ऐतिहासिक सत्यना अक्षुण्ण बना दी है।

—प्रकाशक

शिवानन्द दिग्विजय मण्डल

(८ सितम्बर, सन् १९५०)

महामण्डलेश्वर स्वामी श्री शिवानन्दजी के नेतृत्व मे ८ सितम्बर, सन् १९५० के अरुणोदय में, दिव्य जीवन मण्डल द्वारा 'दिग्विजय मण्डल' की स्थापना हुई।

विश्व व्यापिनी-अशान्ति के निवारण का श्रेय युगान्तरों से भारतवर्ष को ही रहा है। अपनी संस्कृति की वैदिक-परम्परा को सजीव रखते हुये, भारतवर्ष ने शताब्दियों से सामन्तशाही साम्राज्य की निरकुशवादिता से टक्करें ली हैं। परन्तु प्राकृतिक धर्म के बल हमारा सनातन धर्म सदियों की पराधीनता के बाद भी यथावत् ही है। हॉ, यह बात अवश्य है कि हमारे देशवासी समय-समय पर चोट खाये हुये, तथा पाश्चात्य सभ्यता की गहन-रात्रि मे अपने पथ से विचलित हुये, "धर्मसंस्थापनार्थाय सभवामि युगे युगे" की युगान्तर-ध्वनिकी पूर्ति की आशा मे रहते हैं।

भारतीय संस्कृति की परम्परा को बनाए रखने का श्रेय हमारे देश के उन सत-महापुरुषों को है, जिन्होने समयानुकूल इस स्वर्णभूमि मे जन्म लिया। मर्यादापुरुषोत्तम भगवान राम से हम रामराज्यकी कल्पना करते आरहे है। इसी

रामराज्य के स्वप्नालोकमें योगीश्वर कृष्णका उद्‌भव हमारे पौराणिक-कालमें हुआ, जिनकी कथायें आज भी घर-घर अमृतकी वर्षा कर रही हैं। कालान्तरमें महात्मा बुद्धने विश्व-शान्तिका अलौकिक-नेतृत्व अपने योगाग्नि-पुनीत-ज्ञानके तत्वावधानमें किया। विश्व के शान्तिप्रिय-राष्ट्रों ने उनके उपदेशों की शरण ली और विश्वशान्तिके योगमें तन, मन, धन और सब कुछ अर्पण कर दिया।

इन्ही विश्वप्रिय महात्माओंने जिस प्रकार भूमण्डलको एक नया तथा सुगम पथ बतलाया, उसी आदर्शकी आधारशिला पर ही हमारे स्वामी शिवानन्द जी के जीवनप्रासाद का निर्माण हुआ। उन्ही महर्षि के पदचिन्होंका अनुगमन कर, हमारे स्वामीजीने भारतीय-संस्कृति और भारतीय योगसम्पत्ति का सुरक्षण किया है और अभ्युदयकी विशाल चेतना भरी है। हमारा असीम गौरव है कि आज भी पदार्थवाद तथा निरंकुशवादिताके विशाल-संग्राम में भारत और भारत का योगी अपने देश की दिग्विजयिनी-पताका को उन्नत-मस्तक बनाये है, जिसके परिणाम स्वरूप हम और हमारा धर्म सार्वभौमिक तथा युगान्तरजीवी रहेगा।

अतः ८ सितम्बर, सन् १९५० को भारतवर्षकी द्विमासिक यात्राका संकल्प किया गया। प्रत्येक नगर, ग्राम और निवासस्थल इस समाचारसे प्रतिध्वनित हो उठे,—"श्रीस्वामी

शिवानन्द जी धर्मसंस्थापन के लिये प्रयाण कर रहे हैं।"
शान्तिप्रिय जनता पुलकित हो उठी। उसी दिन स्वामी जी ने कहा—

"हमारा कर्तव्य मानवता को प्रगाढ़-निद्रासे जागृत करना है। मनुष्यको मनुष्यके कर्तव्यों का ज्ञान कराना है। भगवद्भजन तथा नाम संकीर्तनकी मोक्षप्रदायिनी नामावलि जन-जनकी भावुकतामें जगानी है। भारतको जन-कल्याणके नेतृत्वके लिये तैयार करना है। दिव्य जीवनका संस्थापन-कर, सत्य-सनातन धर्म को चिरंजीव बनाना है।"

इस प्रकार "शिवानन्द दिग्विजय मण्डलकी" स्थापना हुई और निश्चित हुआ कि ६ सितम्बर सन् १९५० को पुण्यश्लोक स्वामीजी अपने योगसिद्ध शिष्यवर्ग के साथ 'अखिलभारत-यात्रा' के लिये प्रयाण करेंगे।

शिवानन्द दिग्विजय क्या है ?

सच्चे शब्दों में कहा जाय तो 'शिवानन्द दिग्विजय' महामण्डलेश्वर श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज की 'अखिल भारत यात्रा' का विवरण है, जो यात्रा ६ सितम्बर सन् १६५० से लेकर ८ नवम्बर सन् १६५० तक सम्पन्न हुई थी; जिस अवधि में उन्होंने स्थानों-स्थानों पर अपने सन्देश दिए और जनता को धर्म तथा आत्मा की ओर आकृष्ट किया था।

यह भारत की चेतना का उदय काल था। बर्बर शक्तियों से भी उसने लोहा लेना था, साथ-साथ आत्मशक्ति भी जागृत करनी ही थी। श्री स्वामी जी का यह दिग्पर्यटन उस के नवीन-इतिहास का प्रथम अध्याय था; जिसने पवित्र मंगलाचरण से इतिहास का श्री-गणेश किया और रामनाम की आनन्ददायिनी वाणी से उसकी प्रतिष्ठा की। इस चेतना के अपूर्वकाल में उन्होंने भगवान् बुद्ध के धर्मचक्रप्रवर्तन की पुनरावृति की और किया श्री कृष्ण भगवान् के धर्मस्थापन का पुनरभ्युदय।

हम लोग भी उनके साथ थे; अतः हमने अपनी आँखों से वे अभूतपूर्व और अविस्मरणीय युगानुजीवी दृश्य देखे, जिनका स्मरण करते ही हम आज भी मन्त्रमुग्ध हो जाते हैं, आश्चर्य-चकित और निर्वाक हो जाते हैं—लेखनी तटस्थ हो जाती है।

वे हमारे पथप्रदर्शक थे और हम उनके चरणों की छाया को देख-देखकर चलते थे, उनका अनुसरण करते थे।

कोटिशः व्यक्तियों ने उनके गीत सुने और उनकी गीता भी। वे क्या श्री स्वामीजी को कभी भूल सकेंगे? श्री स्वामीजी ही स्वयं उनको कभी नहीं भूल सकते, तो निश्चयतः उनकी अमिट छाप अगणित हृदयों में अंकित रहेगी ही। महाराज ने धर्म के सभी अंगों को शक्ति प्रदान की, उसकी कट्टरता को धोया, उसके प्रति जनता के अज्ञान की निवृत्ति की और ज्ञान का आलोक विकीरित किया—न जाने और क्या-क्या किया, भविष्य ही उसका निर्णय कर सकेगा। मैं तो यही कह पाता हूँ।

उनके ही चरणों का सेवक,
स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

आत्म संगीत

अन्तर पथ से मेरे जागे गीत—
"जागो हे शिव ! जग में सत्वर,
अपने इस खप्पर को भर लो !
अमृत से तुम, पुनः दे दो सबको—
पीने दो सबको—दूंगा मैं बल,
ओज, शक्ति औ' ज्ञान महान्।"
जाग उठा मैं निज पथ पर उदात्,
खप्पर सचमुच भरता गया अमृत से—
और मैंने भी तो सबको—
कोटिशः तृषाकुल-मनुजों को
सानन्द पीने दिया।

—स्वामी शिवानन्द

आनन्द कुटीर, ऋषिकेश
हिमालय

८ नवम्बर, सन् १९५०

परम प्रिय आत्माओ,

ओ३म् नमो नारायणाय।

'अखिल भारत यात्रा' के इस युगस्मरणीय अवसर पर मैं परमपिता परमात्मा की कृपा की याद कर अत्यन्त आनन्दोल्लसित होता हूं, क्योंकि उन्होंने मुझे विश्वरूप की सेवा का अवसर दिया। भारत तथा लंका के कोटिशः व्यक्तियों की अविस्मरणीय भक्ति मुझे अभी भी याद है। परम पवित्र संन्यासाश्रम के प्रति उनकी अटल श्रद्धा, योग और वेदान्त के ज्ञान के प्रति उनकी पवित्र जिज्ञासा को भला मैं भूल ही कैसे सकता हूँ?

जहां भी मैं गया, जनता के प्रेम का ही पात्र बनता रहा। प्रत्येक केन्द्र में मुझे जो अतुल हर्ष अनुभूत हुआ, उसको मैं कभी भूल न सकूंगा। कोटिशः व्यक्तियों की प्रभु-भक्ति के पवित्र सागर में मैंने पुनः पुनः स्नान किया और बारम्बार रामनाम-रसामृत का पान भी, जिस अमृत-गंगा का उदय कोटिशः हृदयों की प्रभु-भक्ति के कैलाशाचल से हुआ।

मैं भारत तथा लंका के कोटिशः नागरिकों का कृतज्ञ तो हूँ

ही साथ-साथ 'दिग्विजयमण्डल' के स्थानीय संचालकों (व्यवस्थापकों) की असीम कृपा का ऋणी भी; जिन्होंने मुझे विराट् नारायण की सेवा का स्वर्ण-सुयोग प्रदान किया। धन्य हो प्रभो! मैं कृतार्थ हुआ और आप्तकाम हुआ। जय हो! कोटिशः भक्त जनों की; जो राष्ट्र और विश्व के आत्म-प्राण हैं।

ईश्वर का आशीर्वाद सब पर रहे!

—स्वामी शिवानन्द

दिग्विजयमण्डल की ओर से कृतज्ञता प्रकाशन

परमपिता परमात्मा के आशीर्वाद की सतत भावना कर हम उनके प्रति अपना प्रणाम अर्पित करते हैं। क्योंकि उन्होंने दिग्विजय की सफलता को जन्म दिया।

स्वामी परमानन्द सरस्वती की अथक सेवा के हम ऋणी हैं, जिन्होंने लीलामय की लीला के उपकरण का अभिनय सुन्दर रीति से सम्पन्न किया और दिग्विजय के कर्णधार रह कर अपने गुरुदेव के उपदेशों को दिशि-दिशि प्रचारित किया।

भारत और श्री लंका में निवास करने वाले विभिन्न संस्थाओं के अध्यक्षों के हम कृतज्ञ हैं, जिन्होंने हिमालय के तपस्वी को राजराजेश्वरोचित सम्मान दिया और मानवता की आध्यात्मिकता के जीवन को नवीन-प्राणों का दान। भगीरथ के प्रयत्नों से गंगा धरातल पर आई, शिव की जटाओं मे लहरा कर। भारत और लंका के सहयोगियों के कर्म प्रताप से तपस्वी की ज्ञान गंगा देश के कोने-कोने मे प्रवाहित हुई। योगी की तपस्या के अमृत का घर-घर प्रचार हुआ। वे ही युग के महाभगीरथ थे।

अकैतवभक्तिसम्भूत भक्तगणों की कृपा का वर्णन किया ही किन शब्दों में जाय, जिन्होंने दिग्विजय की सफलता के लिए अपना आर्थिक सहयोग दिया। श्री पन्नालाल और श्री काशीराम गप्ता उनमें सर्वाग्रणी थे।

असंख्य शुभेच्छुकों और जनता के नेताओं ने भी हिमालय के तपस्वी हंस को विशाल समाज में उड़ने के लिए पंख बन कर अपना सहयोग दिया।

भारत और लंका के पत्रकारों ने पूर्व से पश्चिम और उत्तरापथ से दक्षिण तट तक धर्मविजय की गाथा गाई।

भारत और श्री लंका में स्थित रेडियो के अध्यक्षों और संचालकों ने आकाशमार्ग से योगी की अमृतस्रवी वाणी को दिग्प्रसारित किया।

अनेकानेक डाक्टरों ने भी दिग्विजयी के शरीर की यथोचित सेवा की और शिव की इच्छा के माध्यम, शिव के शरीर को स्वस्थ बनाए रखा।

रेलवे विभाग के सभी प्रकार के कर्मचारियों के प्रति हमारा नमस्कार है, जिनके सहयोग से दिग्विजय सफलतापूर्वक सम्पन्न हुई।

देवस्थान के संचालकों के प्रति भी हमारा नमस्कार है, जिन्होंने दिग्विजयी में अपने पार्थिव देव के दर्शन किये और अनेकानेक प्रयत्नों से श्री-चरण महाराज को पूजित किया। भारत और लंका के आदर्श नागरिकों ने दिग्विजयी को सम्मान दिया। छविकारों ने भी तत्तद्स्थानों पर दिग्विजय को अपनी कला द्वारा अंकित किया।

सभी गुरुभाइयों ने भी यात्रा में निरन्तर आनन्दपूर्वक अपने तन, मन और प्राण समर्पित किए तथा अपने गुरुदेव के चरणों की छाया की महिमा का अनुसरण किया···तथा च

कोटिशः जनता के प्रति हम अपने हृदय की कृतज्ञता को प्रकाशित करते हैं, जिन्होंने दिग्विजयी के वचनों को सुना और दिव्य जीवन के सन्देश को अपने हृदय-मन्दिर में प्रतिष्ठित किया। अर्जुन की तरह उन्होंने कर्मभूमि भारत में कृष्ण भगवान् की गीता सुनी। आदिमानव के समान उन्होंने आदिभूमि भारत में हिरण्यगर्भसम्भूत वेदवाणी को सुना।

हे गुरुदेव, हम तो आपके हैं ही। किस प्रकार प्रणाम करें।

—दिव्य जीवन मण्डल के सेवकगण

आप के ही विषय में

Sweet is the breathe of Vernal show'r,
The bees collected treasure's sweet
Sweet music's melting heart, but sweeter yet,
The still small voice of gratitude.

—*Gray*

वासन्ती फुहारों का उच्छ्वास मधुर है
मधुकर की सिंचित मधुनिधि मधुर है
मधुर है यह द्रावक संगीत
पर मधुरतर तो है कृतज्ञता का यह गंभीर उद्गार।

यह उनके ही पथ-पाथेय पर प्रस्थापित उद्गार की दूसरी पुष्पाञ्जलि है जिनकी प्रगल्भ प्रेरणाओं से ग्रंथकार ने विश्व के विनीक मार्ग का संवरण कर वैराग्य का पावन अंगीकार किया था। सजीव गुरुभक्ति, अविरल और अपरिमेय निष्ठा तथा अजस्र श्रद्धा का सर्वाकृत यह उद्गार भला मधुरतर ही क्या मधुरतम की उपाधि से भी ऊपर है। निरीह वृत्ति नैराश्य की निद्रित वेला में भी लेखक की प्रतिभा जाग रही है

और क्षण प्रतिक्षण परमार्थ का स्पंदन विश्व को भेज रहा है
जिनके परात्पर संगीत के सलाप से आसमुद्रहिमाचल नूत
चेतना और नवीन ओज से लहरा उठा था, उनके ही प्राण
सदुसदेशों का समवाय सत्यसंध स्वामी सत्यानन्द जी द्वारा आप
कर-कंजों मे जा रहा है। मुझे आशा है, पाठक उक्त लेखक
विशेष परिचित हो चुके होगे। जिन्होंने उनकी कलाकृ
"चैतन्य ज्योति" का सिंहावलोकन मात्र भी कर लिया है उन
आंखें अवश्य ही उनकी दूसरी मजुल कृति "शिवान
दिग्विजय" के रूप मे देखकर कृतकृत्य होगी। ऐसा अनुम
कर, कि पाठक वृन्द लेखक की जीवन रेखा को गहरी दृष्टि
देखने के लिए उत्कंठित हैं, मै उनके अद्यावधि जीवन
यथासंभव चित्रण करूंगा। देखूं तो अपने पिपीलिका वपुस्कं
पर हिमशैल का भार वहन करन की प्रत्याशा कहां त
साहचर्य स्वीकार करती है।

आज से तीस वर्ष पहले इस बालरवि की रश्मियो
अल्मोड़ा की धरती रक्तिम हुई, जिसका नाम था धर्मेन्
सुसम्पन्न माता-पिता की सन्निधि मे शैशव बीता और फिर
पूर्वजन्य संस्कारों का बांध टूटा और इस बालक ने अल्पक
में ही भूत-भावी का परिज्ञान कर लिया। अल्मोड़ा की श
श्यामला भूमि में विहरण करता हुआ यह बालक धर्मेन्द्र जी
के चलचित्रों से विज्ञ होता जा रहा था। विद्यालय के शु

'शिवानन्द दिग्विजय' के यशस्वी लेखक

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

आर अश्रेयस् अध्ययन से भला वह पिपासा कैसे प्रशमित हो सकती थी। लौकिक ज्ञान से अनन्त का ज्ञान कैसे हो सकता था। भूमिनाग पर धरणी का भार कैसे रखा जा सकता था। विपिन प्रान्तरो की हरितामयी पादपावलिया, उत्तुङ्ग शैल शृंग की शुचि शोभा, मलयानिल का श्रान्त सचरण और पार्वत्य विलक्षण सुषमाओ का पुटपान करता हुआ वह शैशवता का अतिक्रमण कर युवावस्था मे पदार्पण कर चुका।

अल्मोड़ा की धरती साहित्यकारो की जननी है। उत्तराखण्ड का यह भू-भाग प्रकृति का अधिष्ठान है जहाँ नयनों को सौंदर्य का वरदान मिलता है, क्लान्त पथी को अद्भुत विश्रान्ति मिलती है और शुष्क हृदय को कविता का उपकरण। हमारे कलाकार धर्मेन्द्र सिंह नयाल न यहीं कला का मर्म सीखा। उषा के अरुणाभ और सध्या की मरकत मधुप्याली ने इन्हे कविता का वरदान दिया। कवि ने क्षत विक्षत तुहिन शय्या पर जीवन का क्षणभगुरता का, प्रात किरण के साथ विहगावलियो के कलगायन मे अज्ञात आह्वान का और विटपावलियो के 'मरमर' में मार्मिक अनुभूति का आभास पाया। कल्पना की बाढ मे कवि ने एक कल्पित नाम लिया "पल्लव" अर्थात् धर्मेन्द्रसिंह नयाल 'पल्लव'—पल्लव की कविता पल्लवित हो चली थी और प्रतिभा के शिशिर शीत समीरण मे से परिरभित होकर वातावरण मे उल्लास का सर्जन

कर रही थी। अल्मोडा का कवि प्रकृति का ही उपासक होता है। उदाहरण मे पत जी को ही रख लें। और आप फिर परपरा से विशृ खलित क्यो होते ? प्रकृति मे जीवन का विम्ब देखना ही कविता का तत्त्व रहा। पर इतना ही नहीं, वह इस अन्वेषण की ओर भी प्रतिलक्षित होता गया कि क्या प्रकृति के परे भी कोई सत्तात्मक विभूति है अथवा प्रकृति ही एकमात्र अधिष्ठात्री है। इस उधेडबुन मे कविता के कुसुम कोमल कुन्तलो का शृ गार विशृ खलित हो चला था और कवि की मनसा उस अनन्त, एक, अद्वैत और सनातन की उपलब्धि करने की हुई जिसके परिज्ञान के उपरान्त कोई ज्ञातव्य शेप नही रह जाता।

और इधर तपश्चर्या की वन वह्नि से निकलकर स्वामी शिवानन्द ने अध्यात्मवाद और ईश्वरवाद का तूर्यनाद किया। शून्यवाद क पक से लथपथ मानव को आदि - सभ्यता, संस्कृति और योग के समीचीन तत्त्वो का परिदर्शन कराना प्रारम्भ किया। एक ओर से मिथ्या मोह, ममता और माया का अभेद्य कवच तोड कर स्वामी जी ने प्रतिहृदय मे सत्य, प्रेम समता और ज्ञान का समावेश कराना आरम्भ किया। कालनिद्रा मे जाग जाग कर मानव स्वामी जी के चरणारविन्द मकरन्द का आस्वादन करता और आत्मविभोर होता जाता था। 'तत्त्वमसि' आदि क अट्ट सिद्धान्तो से जब स्वामी जी हमे घन गर्जन की प्रेरणा देते हुए कहते कि हम मृगशावक नही वास्तव मे वन

कान्त केसरी हैं। तो इसी दुर्द्धर्ष नाद का एक शब्द, इसी स्पंदन की एक लघु लहर और इसी आवाहन का एक दारुण स्वर उस मुमुक्षु युवक के कर्णपुट पर रेंग गया। संदेश बोधगम्य था जिसका भावार्थ था—कि तुम जिसे सलिलालय समझते हो वह मृगमरीचिका है, तुम जिसे सुखदायी संसार समझते हो वह क्लेशकर विकट बन्धन है और तुम जिन्हें माता, पिता, पुत्र और प्रेयसी समझते हो वे सहज हो मिट्टी के पुतले हैं.....एक बार उन्मीलित आंखों से विश्व को स्वप्नवत् देखा और उन्निद्रित, उत्तेजित, उत्कण्ठित और उमंगित होकर अनजान दिशा की ओर प्रयाण कर दिया। बुद्धदेव की कथा का प्रतिस्मरण करता, भर्तृहरि के जीवन-यात्रा-पथ पर, 'अवधूत गीता' के चरणों को गाता—पूर्णयौवनावस्थाऽवस्थित तेजोराशि युवक उस असंग, अतीन्द्रिय, चिदानन्द, चिन्मय, कैवल्य और कूटस्थ की मनोवाञ्छा से चल पड़ा जिसकी जिज्ञासा कोटिशः मानवों में से एक को और प्राप्ति वैसे कोटिशः में से एक को होती है।

सन् १६४५ के शरद्काल में जैसे किसी दीर्घवाही सरिता में एक छोटी निर्झरणी आ मिली। हमारे पल्लव जी स्वामीजी के चरणों में आकर नतमस्तक हुए। स्वामी जी के प्रगाढ़ आलिंगन से जीवन सार्थक हो गया। नरेन्द्र को देखकर जितनी प्रसन्नता श्री रामकृष्ण को हुई थी उतनी ही प्रसन्नता धर्मेन्द्र को देखकर स्वामी जी को हुई। पल्लव जी के अलौकिक व्यक्तित्व को

देख कर स्वामी जी ने अनुमान कर लिया कि वे अपने दिव्य अध्यात्म सदेश को विश्व के हृदयप्रदेश तक पहुँचाने के लिए एक देवदूत पा चुके हैं। जिस प्रकार राजेन्द्रप्रसाद को महात्मा गान्धी ने अपना अंग कहा था उसी प्रकार स्वामी जी ने 'पल्लव' को अपने शिष्य समुदाय मे सर्वोच्च आसनासीन किया। कृष्ण और अर्जुन अथवा नर और नारायण की उपमा भी अतिशयोक्ति नहीं प्रतीत होती जबकि पल्लव जी के अमानुषीय कार्यकलाप का चिन्तन करते हैं। उनके हृदय मे पूर्वार्जित सुसंस्कारो का स्रोत सीमा तोड चला था। और तभी तो युवक कवि के दो तीन मास भी व्यतीत नहीं हुए थे कि महाशिवरात्रि के अवसर पर स्वामी जी के पुनीत कर-कमलो द्वारा ब्रह्मचर्याश्रम मे दीक्षित हुए और पुनर्नामकरण हुआ "ब्रह्मचारी सत्य चैतन्य"। यावज्जीवन ब्रह्मचर्य का कुलिप व्रत लेकर सत्य चैतन्य ने सत्यनिष्ठा को अगीकार किया। २२ वर्ष की तरुणावस्था में, जबकि ससारी युवक या तो किसी प्रेमिका के पीछे प्रमत्त रहते हैं या टी० बी० की औषधियों का विज्ञापन ढूँढा करते हैं, हमारे सत्य चैतन्य ने लौहमय काया पायी और अपूर्व बल और पौरुष का आदर्श प्रकट किया। हठयोग की विविध क्रियाओ मे परिनिष्णात सिद्ध हुए। लगन थी और विद्वत्ता भी। दोनो के सामजस्य से आप दिन दिन भर योगपाठों का मनन,

अनुशीलन और सक्रिय अभ्यास में परायण रहते। आश्रम में ही 'सत्यम्' की मर्यादा परिमित नहीं थी अपितु उन्होंने अपनी कला का जीवंत प्रमाण अपने व्याख्यानों द्वारा समीपवर्ती बन्धु-बान्धवों को दिया और जिससे सबके सब अत्यंत लाभान्वित हुए। आश्रम में तामिल भाषाभाषियों का आधिक्य था। श्री सत्य चैतन्य ने सबकी जिह्वा को हिन्दी का वरदान दिया और स्वयं भी उन सबों की भाषा पर पाण्डित्य प्राप्त किया। वह तो अपना सर्वस्व गुरु के ही चरणों में अर्पण कर चुका था। केवल यंत्रवत् उनकी आज्ञा का पालन करना ही शेष रह गया था।

यों तो आपके कई रचना-संग्रह पूर्वाश्रम में ही प्रकाशित हो चुके थे जिसे आपने स्वामी जी को भेंट भी किया था। परन्तु यहाँ आते ही अपनी कोरी कविता भूल बैठे और गुरु-देव का बृहद् और एक प्राकृत मानचित्र खींचना चाहा जो सर्वथा अप्रतिम और अप्रतुल हो। यह अभिनव और अभिराम ग्रन्थरत्न "चैतन्य ज्योति" उसी अभिलाषा का मूर्त रूप है जिसे औपन्यासिक अभिव्यंजना से आपने अभिनीत किया है। इस ग्रन्थ के निर्माण के लिए कहना नहीं होगा कि आपने स्वामी जी के प्रति अनेकानेक अनुसंधान किए। अगणित पुस्तकें छान डाली। और निर्देश के लिए व्यक्ति-व्यक्ति से पूछताछ की। पाठक जानते ही होंगे कि ग्रन्थकार की

भाषाशैली कैसी अभिवन्दनीय है। लेखक अनुप्रास और उपसर्ग के पीछे पागल हैं। छायावाद और रहस्यवाद से आपने यद्यपि ग्रन्थ को रिक्त कर प्रगतिवाद और वास्तविकता की कसौटी पर उतरने का प्रयास किया था तो भी उसकी झाँकी कदाचित आ ही जाती है। जो भी हो प्रकृति के पलने पर झूलने वाला काव्य बहकती कल्पनाओं का पराभव कर ठोस अध्यात्मवाद को अपना ले, यह भी एक पहेली है।

हाँ, तो श्री सत्य चैतन्य स्वामी जी के उन अंतरङ्ग शिष्यो में से थे जिन पर स्वामी जी उत्कट स्नेह आन्तरिक विश्वास, और अक्षय प्रीति रखते थे। १२ सितम्बर सन् १९५७ की पुण्य तिथि को श्री स्वामी जी ने आपको साधनापथ का एक उत्तमाधिकारी बनाया। अध्यात्म के सर्वोच्च शिखर पर समासीन करते हुए स्वामी जी ने श्री सत्य चैतन्य को सन्यास की दीक्षा दी और नूतन नामकरण हुआ—'स्वामी सत्यानन्द सरस्वती'। आज इस परमहंस सन्यास की सुभग सुकृति का श्रीगणेश कर 'स्वामी जी' चतुर्थ आश्रम में उपविष्ट हुए। उसी दिन महर्षि की 'हीरक जयन्ती' का पुण्यपर्व भी था। जिसके उत्सव से आनन्द कुटीर के आगन में आनन्द सदेह विराजमान था। दो हर्ष एक ही साथ आ मिले। यह संगम भी चिरस्मरणीय रहेगा। इस शुभ मुहूर्त्त से स्वामी जी विगत जीवन का विस्मरण कर चुके और अपने गुरुदेव के परम पावन आदेशो - उपदेशो को दैनिक

आचार-विचार में घटित करते हुए उस परा-वैभव की सदिच्छा से सम्पन्न हुए जिसका उफान उनके अन्तस्सागर में बाल्यकाल से ही प्रादुर्भूत था। स्वामी सत्यानन्द जी के शील, सौजन्य और शौर्य से प्रभावित होकर स्वामी जी ने योग वेदान्त आरण्य विश्वविद्यालय की ओर से क्रमशः दो उपाधि प्रदान की— 'अध्यात्मरत्न' और 'प्रवचनप्रवीण' जिसके आप वास्तव में अधिकारी थे।

सन् १६४८ में जब योग वेदान्त आरण्य विश्वविद्यालय का जन्म हुआ तो आप हिन्दी विभाग के अध्यक्ष हुए और अपनी महती योग्यता से अपने तरुण स्कन्धों पर कार्यभार संभाला। और इस अवधि तक वह कार्यवाही आपके ही कर-कमलों द्वारा परिचालित है। गत वर्ष श्री स्वामी जी के साथ हिमालय से सिंहल द्वीप पर्यंत यात्रा की और स्वामी जी के प्रवचनों को लेखनी बद्ध किया जिसका सकलन पाठकों के समक्ष है। स्वामी जी के मुखारविन्द से विस्फुरित परागरेणु को संपुटित करने का श्रेय इन्हीं अध्यात्मरत्न प्रवचनप्रवीण स्वामी सत्यानन्द जी सरस्वती को ही है जो इस मधुमंजूसा के मधुकण को अगणित पाठकों के समक्ष वितरण कर गुरुऋण का अल्पांश चुका रहे हैं।

आज भगवन्नाम के सदृश स्वामी जी का नाम आबालवृद्ध के अधरों पर है और स्वामी जी के नाम के सदृश स्वामी

सत्यानन्द जी की श्लाघा उनके परिचित पाठकों के उर अन्तर मे। "शिवानन्द दिग्विजय" के लेखन का उत्तरदायित्व एक ऐसे ही अनातुर, आत्मसंयमी और सुधीर लेखक ही वहन कर सकते हैं। यह कलाकृति क्या है? इसके विषय मे सम्मति देने के विपरीत पाठकों की सम्मति ही वाछनीय है। मैं तो इसे इसलिये अधिक चाहता हूँ कि गुरुदेव का परम पावन सुधासिक्त संदेश है। परन्तु एक साहित्य प्रिय के लिये भी यह पुस्तक कृपण की वस्तु होगी। कहीं शब्दालकार की लडी गुंथित है तो कहीं अर्थालकार का भवर। अनुप्रास का ऐसा संयोग है कि पाठक पढते पढ़ते रम जायेंगे। उपमा और उत्प्रेक्षाओं के लिए तो कोई बात ही नहीं, आखिर अल्मोड़ा के ही कवि हैं जिनका लालन-पालन प्रकृति की रंगरेलियों मे ही हुआ है। भाषा का उतार चढ़ाव ऐसा है कि पाठक, पाठ्य और पाठन की त्रिपुटी लय हो जाती है।

एक आध्यात्मिक दृष्टिकोण से पुस्तक की महत्ता उतनी ही है जितनी प्राचीन पुराणों और शास्त्रों की, क्योंकि उनकी ही वाणी का यह सरल और सुपाठ्य रूप है। संस्कृत वाङ्मय पौराणिक भाषा का माधुर्य, काव्यमयी धाराप्रवाह वाणी का लालित्य तथा अनुच्छेदों - उद्धरणों का एक वृहद् कोष सब एक ही ग्रंथ मे पा लेते हैं। साथ ही स्वामी जी के सद्वचनों का एक सारपूर्ण संग्रह—जो उनकी दो-सौ पुस्तकों का एक

लघु चयन है। फिर अध्यात्म के गहनतम और गूढ़तम शंकाओं का सरल समुचित समाधान। इसके अतिरिक्त स्वामी जी द्वारा लिखित उनका दुलभ संदेश। इससे अधिक और क्या अपेक्षित है। दिव्य जीवन के कर्णधार एक यशस्वी लेखक द्वारा प्रणीत यह ग्रंथ स्वाध्याय की वस्तु है। 'आरोग्य जीवन' के पाठक तो अपने संपादक को पहचानते ही होंगे जिनके अनवरत परिश्रम के उपरान्त ही वे स्वामी जी के सदुपदेशों को घर बैठे पा रहे हैं। हिन्दी की कई पुस्तकों को मूल से भाष्य करने का श्रेय भी इसी महापुरुष को है।

अन्त में हम पाठकों की ओर से लेखक को इस महत्कार्य के लिए बधाई देंगे। और उस समष्टि-नियन्ता से याचना करेंगे कि आप अपने सनातन सत्य की साधना में सिद्धकाम हों। दिव्य जीवन मंडल के सिद्धपीठ का यह पथ-प्रदर्शक हमें चिरन्तन प्रकाश में लाये। हिन्दी राष्ट्र की सन्तान होने के कारण हिन्दी सेवा का व्रत निभायें। आशा है स्वामी जी के आगामी विश्व-विजय का भी जयघोष आपके ही कल कंठ से दिग्विश्रुत होगा।

बोलो गुरु और उनके शिष्य की जय!

योग वेदान्त कार्यालय —स्वामी रामानन्द सरस्वती
आनन्द कुटीर, ऋषिकेष। सम्पादक 'योग वेदान्त'
१ जनवरी, सन् १६५२

दिग्विजय मण्डल के दो महारथी

स्वामी वेंकटेशानन्द सरस्वती

"मेरे कार्यों में उज्ज्वलता के प्रतिनिधि, सौन्दर्य-किरीट के प्रोज्ज्वल रत्न—स्वामी वेंकटेशानन्द जी के समान क्या मैं किसी और को भी पा सकूँगा ?"

ये श्री स्वामी जी के पवित्र उद्गार थे एक समय के। और यही उद्गार स्वामी वेंकटेशानन्द जी की समस्त कहानी को कह देते हैं।

श्री स्वामी जी की दिग्विजय उनके विषय में कुछ कहना चाहती है। क्योंकि उन्होंने ही दिग्विजय यात्रा को पद-पद पर लेखनी के रूप में चित्रित किया। वे भी स्वामी जी के साथ यात्रा में थे, प्रत्येक महोत्सव में सर्वाग्रणी और स्वामी जी के चरणों के अनुसरण कर्त्ता। स्वामी जी के सम्पूर्ण व्याख्यान, जो उन्होंने दिग्विजय के अवसर पर स्थान स्थान पर दिए थे, स्वामी वेंकटेशानन्द जी की दिव्य-स्फूर्ति के बल पर ही यथानुरूप अंकित किए जा सके। "शिवानन्द दिग्विजय" के प्रथम संस्मरण-लेखक और सम्पादक आप ही रहे। कह नहीं सकते कि हम श्री स्वामी जी महाराज की विशाल यात्रा का स्मरण भी रख सकते, यदि स्वामी वेंकटेशानन्द जी अपने अभूतपूर्व उत्साह और अपूर्व हस्त-कौशल द्वारा इसको सम्पन्न नहीं करते तो।

जो हो, हम उनके अत्यन्त आभारी हैं, क्योंकि उन्होने अपने जीवन को गुरुदेव के चरणों पर समर्पण कर दिया है। उनके लिए अपना कोई व्यक्तिगत अस्तित्व नहीं और न आत्मकल्याण का प्रश्न ही। गुरु का विशाल कार्य ही उनके जीवन का प्रथम और चरम लक्ष्य है, जिसको प्राप्त करने के अनेकों प्रयत्न वे पिछले ५ सालों से सफलतापूर्वक करते आ रहे हैं। यही उनका मौलिक रेखाचित्र है।

स्वामी परमानन्द सरस्वती

शिवानन्द दिग्विजय मण्डल के आप ही कर्णधार रहे। श्री स्वामी जी महाराज की विश्वविजयिनी प्रेरणा को क्रियात्मक करने में आप ही मध्यस्थ थे। दिग्विजय की सफलता का श्रेय तो आपको ही जाता है, क्योंकि आप ही ने अपने गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी की दिग्विजय के लिए अमित साधन जुटाए थे। यात्रा के अवसर पर आप ही स्वामी जी की सेवा में सतत संलग्न रहे, जब कि हमें यह भी नहीं पता चलता था कि हम कहां हैं और किस प्रकार अपने को गन्तव्य स्थान की ओर ले जाएँ। लक्षशः भावुक भक्तों के अपारावारविहारी सागर की भक्तिमती तरंगों से अपने गुरुदेव को सुरक्षित कर ले आने का समस्त श्रेय आपको ही प्राप्त हुआ। यह दिग्विजय

जिस सीमा तक दिग्विजयी की गाथा को गाती है, उसी सीमा तक परमानन्द जी की क्रियात्मकता और सफल स्वामीभक्ति के गीतों को भी।

ऐसे गुरुभक्तिपरायण परमानन्द जी का जन्म दक्षिण पथ में तन्जौर के सन्निकट उच्चवंशीय ब्राह्मण कुल मे हुआ था। आपके पूर्वाश्रमीय जीवन ने आपको आत्मतृप्ति से वंचित ही रखा। आप मे बाल्यकाल से ही आध्यात्मिक और निःस्वार्थ सेवा की भावना अंकुरित हो चुकी थी। उसके विकास को रोकने की शक्ति प्रकृति मे भी नहीं थी। जब आप रेलवे विभाग के कर्मचारी थे तो आपने आत्मा मे एक प्रकार के असन्तोष का अनुभव किया।

अन्त मे एक दिन उन्होंने क्षणभंगुर सांसारिकता के चलचित्रों को सदा के लिये प्रणाम किया और अध्यात्मपथ की ओर अग्रसर हुए। शीघ्र ही आप श्री रामकृष्ण परमहस देव के परम शिष्य श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज के चरणो म जा पहुंचे और निरन्तर सेवा से उनकी भक्ति मे तन, मन, धन अर्पण कर दिया।

जब वह महान आत्मा ब्रह्मनिर्वाण को प्राप्त हुई तो परमानन्द जी ने उनकी अनुपस्थिति मे आध्यात्मिक पथप्रदर्शक के अभाव का अनुभव किया और आश्रम त्याग कर परिव्राजक बन गए।

निरन्तर विचरण करते रहे। सभी आश्रमों में रहे और सभी प्रमुख संस्थाओं की सक्रियता में प्रमुख योग दिया। प्रत्येक महात्मा के चरणों की रज को अपने सिर आंखों में लगाया और उनके आशीर्वाद रूप सत्फल की प्राप्ति की।

विचरण करते-करते, महात्माओं के आशीर्वाद से सौभाग्यशाली होते-होते तथा सभी संस्थाओं में अपना सहयोग देते तथा उनको अपनी क्रियात्मकता द्वारा विमुग्ध करते एक दिन स्वामी परमानन्द जी ने आनन्द कुटीर के सन्त का नाम सुना। वह कितना मधुर नाम था। उन्होंने सुना कि अवतार पुरुष श्री स्वामी शिवानन्द जी आत्मकल्याण के लिए विश्व को प्रेरित, उत्साहित और नेत्रित कर रहे हैं। बस फिर विलम्ब ही क्या था। परमानन्द जी तो इसी की खोज में विचरण कर रहे थे।

उन्होंने स्वामी शिवानन्द जी को पत्र लिखा। स्वामी जी तब गंगा पार स्वर्गाश्रम में तपस्यारत थे। उनको स्वामी जी का पत्रोत्तर मिला। उसमें लिखा था—आजाओ।

सन् १६३१ में उन्होंने श्री स्वामी शिवानन्द जी के आध्यात्मिक-सन्निधान का आश्रय प्राप्त किया। तभी से वे निरन्तर अपूर्व और अविस्मरणीय क्रियात्मकता द्वारा सन्त शिवानन्द को सहयोग देते रहे, शिष्य के रूप में।

कालान्तर में जब स्वामी जी स्वर्गाश्रम से इस पार आनन्द

कुटीर में आये तो उन्होंने स्वामी परमानन्द जी की सेवा का समुचित उपयोग किया। दिव्य जीवन मण्डल, शिवानन्द प्रकाशन मण्डल का जन्म इसी विशाल योग के परिणामस्वरूप हुआ।

दोनों गुरु शिष्यों के विशाल प्रयत्न द्वारा दिव्य जीवन मण्डल ने अनेको मार्गों द्वारा जनकल्याण के लिए पर्याप्त साधन प्रस्तुत कर दिए। यह दिग्विजय तो उसका परिवर्द्धित संस्करण है।

उनका त्याग उच्च कोटि का था। रूखी-सूखी रोटी भी उनको अमृत के समान लगती थी। स्वामी जी के प्रमुख शिष्य होने पर भी वे सदा सादगी मे ही रहते थे और आज भी वे अपने उन्हीं सिद्धान्तों पर अटल हैं। रहन-सहन, खान पान, आचार-विचार-और सयम-नियम मे सादगी की सम्पन्नता उनके जीवन का आकर्षण है और है गुरु के आशीर्वाद का सु-परिणाम।

श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज की षष्ठ्यब्दिपूर्ति के मंगलमय उत्सव के जन्मदाता आप ही हैं - आपने ही अपने गुरु की गीता को जनता के घरों-घरो मे पहुँचाया। जब स्वामी लाहौर और विहार मे प्रचार के लिए गए तो आप भी उनके साथ थे।

इस प्रकार परमानन्द जी के जीवन का संक्षिप्त इतिहास

शिष्य के कर्त्तव्य का आख्यान है। सेवा के लिए ही शिष्य का जन्म हुआ है। आत्मबलिदान और आत्मसमर्पण का दृष्टान्त ही शिष्य है। यही स्वामी परमानन्द जी का विश्वास रहा, जिसके आधार पर उन्होने अपने जीवन और तज्जीवनसम्बन्धी सभी प्रकार के निर्माण कार्यों का श्री-गणेश किया।

श्री स्वामी जी महाराज की अखिल यात्रा के पीछे आपका पसीना वहा और रात-दिन सन्धित कर दिए गए। भूख और प्यास की अवहेलना की गई तथा व्यक्तिगत-सुविधाओ को किनारे रख दिया गया। अखिल भारत यात्रा, जिसे दिग्विजय यात्रा कहा जाता है, परमानन्द जी के जीवन की सक्रियता की कठोर परीक्षा थी, जहां उन्होंने सफल साधक के रूप मे दो महीनों तक अपने को इस प्रकार से सुसज्जित रखा कि किसी भी प्रकार की बाधायें उनको सत्पथ और सेवा के मार्ग स विचलित नहीं कर सकीं। श्री स्वामी जी के प्रति उन्होंने अपने जीवन के भावुक व्यक्तित्व को समासीन कर तो दिया ही, साथ साथ अपना हृदय, हाथ और बुद्धि सभी उनके चरणो की सेवा मे अर्पण कर दिए।

हम स्वामी परमानन्द जी को बारम्बार धन्यवाद देते है, और उनको विश्वास दिलाते है कि दिव्य जीवन मण्डल उनके किए अहसान को कभी भी नहीं भूल सकेगा। वे स्वस्थ रहें। परमात्मा उनको निरन्तर आयुष से सम्पन्न रखें।

—स्वामी सत्यानन्द

शिवानन्द दिग्विजय का सिंहावलोकन

दिग्विजयी शिव ने—

ई० आ० आर० की टूरिस्टकार से ३५३० मील की यात्रा की।

एस.आइ.आर. की टूरिस्ट कार से ५२७ मील की यात्रा की।

वायुयान से	७००	मील की यात्रा की।
जलयान से	२४	मील की यात्रा की।
साधारण रेलगाड़ी से	३७४	मील की यात्रा की।
लंका-राज्यस्थ सैलून से	४१८	मील की यात्रा की।
अग्नियान से	२०	मील की यात्रा की।
साधारण कार से	२०४०	मील की यात्रा की।
अश्वरथ से	३५	मील की यात्रा की।
वृषभ शकट से	४	मील की यात्रा की।

योग ७६७२ मील

दिग्विजयी शिव ने

३७ विभिन्न संगठित संस्थाओं में,

२८ विभिन्न-उपसंस्थाओं मे,

१४४ सार्वजनिक सभाओं में और 'दिग्विजय मण्डल' के

४५ प्रमुख केन्द्रों में व्याख्यान और दर्शन दिए।

तदतिरिक्त

१२५ भक्तों के घरों में कीर्तन की गंगा बहाई,

८ विश्वविद्यालयों में सन्देश दिया,

२५ महाविद्यालयों, विद्यालयों तथान्य शिक्षण-संस्थाओं में आत्मा की गीता गाई,

५ पत्रकार परिषदों में अपने उपदेश दिए,

७ रेडियो स्टेशनों से आकाश वाणी प्रत्युच्चरित की,

३० प्रख्यात देवालयों के दर्शन किए,

३५ वार शास्त्रोक्त-विधान से पादपूजा ग्रहण की,

१२७ अभिनन्दन-पत्र संप्राप्त किए

५ रजताभिनन्दन-पत्र स्वीकार किए,

८०६ वार शास्त्रोक्त मर्यादापूर्वक पूर्णकुम्भों से पूजा स्वीकार को,

७४६६ रुपयों की लागत के धर्म ग्रन्थ विभिन्न स्थानों में वितरित किए और

६१ दिनों तक भारत तथा लंका विजय की तथा व्याख्यान दिए!

हमारे सहयोगी-मण्डल के आधार

पुण्य भूमि भारत में निवास करने वाले धार्मिक-वृत्तिसम्पन्न जनमण्डल जब जब पूज्य गुरुदेव के इस विजय-चरित् की गाथा को प्रेमपूर्वक गाएँगे तथा अपने इष्ट-मित्रो तथा सम्बन्धियो को सुनाएँगे तो---- "

श्रीयुत नरेन्द्रनाथ सिन्हा

का उदार हृदय उनके नेत्रो के प्रागण मे नृत्य करने लगेगा । क्योंकि 'शिवानन्द दिग्विजय' का साहित्यानुविन्दित हिन्दी कलेवर, आपके ही सहयोग से आविर्भूत हुआ है ।

आप सदा से 'दिव्य जीवन मण्डल' के सहयोगी रहे हैं और बारम्बार आपकी सक्रिय सहानुभूति मण्डल को कृतज्ञता के वश कर कृत्यकृत्य करती आई है । 'दिव्य जीवन मण्डल' के यशस्वी आधारभूत महापुरुषो मे आपका शुभ नाम भी प्रथम पंक्ति मे आता रहा है। 'शिवानन्द दिग्विजय' के प्रकाशन मे सहयोग देना उसी परम्परा की स्वर्णमण्डित माला मे एक और मोती पिरो देना है।

आनन्दकन्द भगवान् आपको आत्मज्ञान का वरदान दें; शारीरिक क्षेम, .आत्मिक कल्याण तथा कैवल्य-ज्ञान सदा-सदा आपमें समधितिष्ठित रहें, यही प्रार्थना है और मनोकामना भी । ऐसा ही वरदान दो हे शिव !

—प्रकाशक

आदर्श यात्री

जो मार्ग को सुमार्ग बनाते और सत्पथ के द्वार खोलते हैं

दुर्गम पथ से होकर
एक यात्री जा रहा था।
ठण्डी रात आने वाली थी—
काली चादर लिए हुए।
यात्री एक नाले के पास आया
नाला गहरा था
और प्रवाहशील भी,
वयोवृद्ध उस यात्री ने नाला पार किया,
नाले की गहराई उसे डुबा न सकी,
वह हारा नहीं।
नाले का वेग उसे थका न सका ॥ १ ॥

उस पार पहुँचते ही वह वयोवृद्ध रुक गया;
आश्चर्य! उसने नाले को पुलसे बांधना आरम्भ किया,
"वयोवृद्ध !" पास ही खड़े एक सहयात्री ने कहा,
"समय क्यों खोते हो व्यर्थ पुलिया बाँधने में ?
आपकी यात्रा तो पूर्ण हो चुकी है—
पुनः तुम इस मार्ग द्वारा नहीं आओगे
और न यह नाला ही पार करना होगा,
तब क्यों अँधेरे में यह कष्ट-प्रयास ?"
तभी वयोवृद्ध ने उठाया शीश ॥ २ ॥
उन्नत हुआ गौरव भाल,
लहराने लगे रेशमी बाल;
लगे चमकने तिमिराञ्चल में—उसने कहा,
"प्रिय यात्री ! इसी मार्ग से,
आने वाले हैं कई बालक—
सुन्दर होंगे उनके केश, दीप्त-भाल।
यही नाला जिसको मैंने पार किया,
सम्भवतः उन कोमल-बालकों को,
अपने गर्भ में सुला लेगा ॥ ३ ॥

"इसी तिमिर-रञ्जित वन्यमार्ग में;
वे नाले को देखते ही सहम जाएँगे—
यात्रा पूर्ण नहीं कर सकेंगे,
गहन तिमिर में,
इसी अरण्य में
व्याकुल होंगे,
भटक जाएँगे।
मेरे मित्र ! उन्हीं बालकों का विचार कर,
भविष्य के यात्री—इन बालकों के लिये ही
मैं इस नाले को पुलिया से बाँध कर
सुगम्य बना रहा हूँ ॥ ४ ॥

मंगलाचरण

हिमगिरि के अंचल में, रम्य सुरसरि के तीर।
त्रिविध समीर बहती जहाँ मनभावन है॥

ज्ञान भक्ति भावना की बहती शुभ्र धारा जहाँ।
कीर्तन की ध्वनि से गूँज उठता गगनागन है॥

तपोभूमि ऋषिकेश—ऋषिगण का वास जहाँ।
'शिवानन्द आश्रम' इक आश्रम सुहावन है॥

करते हैं निवास आशुतोष शिव समान वहाँ।
पूज्य ऋषिराज स्वामी शिवानन्द पावन हैं॥

सत्-चित्-आनन्दरूप सौम्य शुभ्र तप पूत।
योगिराज सुखनिधान भूतल हितकारी हैं॥

आठों याम रहते लोकसेवा में लीन सदा।
ज्ञान रवि तेज मे अविद्या तमहारी हैं।

ईश्वरीय ज्ञान के प्रणेता दिव्य प्रेम रूप।
सुन्दर नयनाभिराम निर्मल अधिकारी हैं॥

माया के परदे को भूतल से हटाने वाले।
योगीराज शिवानन्द अवतारी हैं॥

रचियता : श्री प्रद्युम्नकृष्ण कौल, सहा० सम्पादक "दैनिक भारत"
इलाहाबाद।

सदाचार नीति शिक्षा स्वामी ! तुम जग को देते।
भक्ति गङ्गाधारा निर्मल बहाई है॥
योग वेदान्त वेदविद्या को सुगम करके।
योग की प्रणाली-सुगम जग को बताई है॥
"प्रेम रूप ईश्वर है, प्रेम ही जगत का सार"।
प्रेम परिपाटी दिव्य जग में चलाई है॥
जयति जयति शिवानन्द स्वामी ! जगतीतल में।
तुमने दिव्य जीवन की छटा सरसाई है॥
ज्ञानवान् ब्रह्मा से, विद्यानिधि बृहस्पति से हैं।
विष्णु से दयालु आप पूर्ण दयाधाम हैं॥
"कर्मभूमि वसुधा है"—कर्मनिष्ठ बनने का।
देते उपदेश आप ललित ललाम हैं॥
कीर्त्तन कलानिधि हैं आप ऋषि नारद सम।
महामन्त्र साधक हैं, भक्त हैं, सुनाम हैं॥
वयोवृद्ध देवरूप, शुद्ध प्रेम के स्वरूप।
स्वामी शिवानन्द ! आप पूर्ण निष्काम हैं॥
सुन्दर सुवक्ता हैं, सुकवि हैं, सुधारक हैं।
त्यागी हैं, विरागी हैं, सिद्ध योगीराज हैं॥
ज्ञानी हैं, मानी हैं, दयाधाम दानी हैं।
नम्रता, महत्ता के आप अधिराज हैं॥

हर्ष औ' विषादपूर्ण भूतल मे शान्त अटल।
पंक बीच पंकज सम आप पुष्पराज हैं॥
जयति जयति शिवानन्द ! निष्कलंक निर्विकार।
जग के उद्धारक आप सन्तन सिरताज हैं॥

योगीराज साधुश्रेष्ठ दिग्विजयन्ती, शुभ,
आपकी सफल हो, पूर्ण हो, अमर हो।
कीर्ति मे, सुयश मे नाथ ! और चार चाँद लगें।
विजय पताका फहरे, विश्व जयमय हो॥

कोटि-कोटि कण्ठों से बस निकल पड़े एक ही ध्वनि।
एक ही भावना हो, एक राग, एक लय हो॥
लाखों वर्ष जीवित रहो मानव कल्याण हेतु।
जयति जयति शिवानन्द ! तेरी सदा दिग्विजय हो॥

शिवानन्द दिग्विजय

का

❀ रा ज मा र्ग ❀

(हिमालय से सिंहल द्वीप पर्य्यन्त)

शिवानन्द दिग्विजयं

दिग्विजय के अवसर पर

ऋषिमन्त्रपुनीत भारत के प्रमुख नगर और संस्थान

(दूसरी ओर मानचित्र देखिए)

ऋषिकेश से यात्रा का श्री-गणेश हुआ। तदुपरान्त ... .
हरिद्वार, लखनऊ, फैजाबाद, बनारस, पटना, हाजीपुर, गया, कलकत्ता
वाल्टेयर, राजमहेन्द्रवरम्, विजयवाडा, मद्रास, विल्लुपुरम्, चिदम्बरम्
मायावरम्, धर्मपुरम्, तन्जावर, तिरुचिरापल्ली, पुदुकोटै, कनडुकातान्
रामेश्वरम्, धनुष्कोटि, तलैमनार, कोलम्बो और कुरुनेगल।

पुनः मदुरा, विरुधनगर, तिरुनेलवेली, पद्यमट्टाई, नागरकोविल
कन्याकुमारी, त्रिवेन्द्रवरम्, कोचीन, कोइम्बेतूर, बंगलूर, मैसूर, हैदराबाद
पूना, बम्बई, अमलवाद, बड़ौदा, अहमदाबाद, दिल्ली ... ...पुन
ऋषिकेश में।

(यही दिग्विजय का राजमार्ग था)

शिवानन्द दिग्विजय

शिवानन्द दिग्विजय

प्रथम विजय

उत्तर प्रदेश में

प्रातःकाल ८॥ बज चुके थे। मन्थर गति से 'शिवानन्द दिग्विजय' मण्डल का अपूर्व समारोह स्निग्ध-सौन्दर्यान्वित रेलवे स्टेशन की ओर प्रयाण कर रहा था। 'दिव्य जीवन संघ' के इतिहास के नवीन अध्याय का श्रीगणेश हुआ। सम्भवतः ऋषिकेश में ऐसे दृश्य का आलोकपात नहीं हुआ होगा।

ऋषिकेश

विविध शोभाओं से अलंकृत हाथी रथयात्रा के आगे था। उसकी सुरम्य अटारी पर काषायवस्त्रोपसज्जित महात्मागण समासीन थे। मंगलकारी हाथी का अनुगमन करती हुई थी, स्वर्णादि-परिवेष्टित रजत-पालकी; जिसमे मोक्ष-तीर्थ, हिमशैल-विहारिणी, गंगोत्तारिणी, मा गगा का जल रजत-कलश में प्रतिष्ठित था और उसके उपरान्त ज.पकार में रमणीयमान, पुण्यश्लोकोच्चरित, दिग्विजयी महाराज श्री स्वामी जी छत्र-चामरोपसेवित, सौरभान्वित-पुष्पमालासमन्वित, स्वयं देवलोक-मध्यानुवर्ती, अमरादिवन्द्य महाराज इन्द्र के समान अपनी स्वाभाविक सौम्य मुद्रा मे विराजमान थे।

अपूर्व समारोह था। उस परम पावनी भूमि में मानो समस्त निसर्गवर्ग उनकी अक्षय कीर्ति का चारण बना हुआ था। प्रत्येक प्राणी के मुख से हरिनाम की गगा प्रवाहित थी। नर-नारी, बाल–वृद्ध सभी हरिनाम की गंगा मे निमज्जन कर रहे थे। मार्गानुवर्ती याचकों को दक्षिणा दी जा रही थी। देवस्थानों मे पूजन सम्पन्न करते हुए स्वामी जी रेलवे स्टेशन की ओर बढ़े जा रहे थे।

लगभग तीन घंटे के उपरान्त श्री स्वामी शिवानन्द जी रेलवे स्टेशन पर पहुँचे। नगर के सम्मान्य-विद्वद्गण अभिनन्दन के लिए उपस्थित थे। "श्री स्वामी जी महाराज को जै" के विजयघोष के उपरान्त पुष्पवर्षा ने सदियों के आतप-वातावरण को कोमलप्राणाभिसिंचित कर दिया।

स्तव में आये हुए सभी भक्तों को प्रसाद भी मिला। आज सबका हृदय गद्गद् था। दो महीने तक श्रीचरण महाराज की अनुपस्थिति का विचार सबको दुःखी कर रहा था। उनके नेत्रों से आंसू भी बह रहे थे। उनके हृदय में तरंगें उठ रहीं थीं। अभी अभी जो बातें कर रहे थे, अब हृदय के मुक्त हो जाने से कण्ठावरोध की स्थिति का अवरोध करने लगे। सबने अपने आराध्य को प्रणाम किया, जो उनकी ही नहीं अपितु उनके सदृश कई और प्रेमियों की साध पूरी करने जा रहे थे।

रेल ने सीटी दी। पुनः उन्होंने प्रणाम किया। आंखों में थे आंसू और हृदय में था उल्लास। नेत्रों में थी पराजय और हृदय में विजयश्री की कान्ति थी। गार्ड की हरी झण्डी फहरा रही थी। सारा प्लेटफार्म जयजयकार के नारों से प्रतिनिनादित हो रहा था। मन्थर गति से गाड़ी चलने लगी और हम लोगों ने गाड़ी में से सब लोगों को प्रणाम किया। सबने हमें विदाई दी। प्रातःकालीन स्वप्नस्मृति के समान क्रमशः हमारे महाप्रभु की झांकी उनकी दृष्टि से ओझल हो रही थी और उनकी आकृतियां गाड़ी के वेग के साथ अस्पष्ट होती जा रहीं थीं। केवल थी उनकी जयजयकार, जो अभी भी स्पष्टतया डिब्बे में शब्दायमान हो रही थी। इस प्रकार ६ सितम्बर १९५० को मध्याह्नकालीन प्रकाश में श्री स्वामी जी ने 'दिग्विजय' के लिए प्रस्थान किया।

(२)

हरिद्वार

भगवान दिनमणि के अपराह्न गमन के साथ-साथ हमलोग तीर्थपुरी हरिद्वार में पहुँचे। हरिद्वार के माननीय नागरिकों ने श्री स्वामी जी का अभिवादन किया। सचमुच में हमारी 'टूरिस्टकार' की शोभा दर्शनीय थी। उसके मध्य भाग में "शिवानन्द दिग्विजयः हिमालय से लंका" का बोर्ड श्री स्वामी जी के प्रति अत्यधिक जिज्ञासा का अभ्युदय करता था। टूरिस्टकार से सतत रामधुनि का पाठ हो रहा था। स्वागत के लिए आए हुए भक्तों के पुष्प-समर्पण पर सम्भवत. देवता, अप्सरायें, गन्धर्व, और किन्नर भी आश्चर्यचकित हो रहे होंगे। वह दृश्य अवलोकनीय था।

"साक्षात् राम की प्रतिच्छाया है"—मैंने एक ही नहीं, वरन कई लोगों को कहते सुना। मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। मैंने सोचा क्या वास्तव में मानव दर्शनमात्र से पवित्र हो सकता है ? मेरे मन में यह सदेह अधिक दिनों तक नहीं रहा। कालान्तर में स्पष्टतया मैंने जाना कि महात्मा के उपदेशों की तो बात ही क्या, दर्शनमात्र से ही मनुष्य की सोई हुई धर्म भावना जाग सकती है। इसके कई उदाहरण आपको आगे के अध्यायों में मिलेंगे।

सायकालीन अरुणिमा का उदय हो रहा था। श्री स्वामी जी ने 'हर की पौड़ी' में जाने का निश्चय किया। सायकाल की

रमणीय गांग वायु के स्पर्श होते ही गंगातटस्थ पौराणिक तीर्थ दीपाराधना से देदीप्यमान हो उठा। देशदेशान्तरागत-यात्रियों की कलरव ध्वनि से मुखरित महादेव का वह क्रीडांगन क्षण भर के लिए ताण्डव-नृत्य का स्मरण दिलाने लगा। उस पर भी आज की दीपाराधना में विशेषता थी। आज की दीपाराधना में दिग्विजयगामी स्वामी जी के चरणों पर अपनी प्रतिभाञ्जलि समर्पित करने, स्थानीय विद्वन्मंडल स्वस्तिवाचन कर रहा था। इसका अर्थ यह था—

"हे विद्वद् प्रवर, हे भूमा के चिरंतन स्वरूप ......तुम सब रूपों में हम से भजे जाते हो। हे मित्र, हे यशस्वी .... तुम सम्राट् हो, महासम्राट् हो। ...... अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड तुम्हारा सूक्ष्म-स्वरूप है। हमें शरण दो, शान्ति दो, शमता दो, संकल्प दो।"

अनन्तवीर्य श्री स्वामी जी के चरणों को भी इसी आरति का श्रेय प्राप्त हुआ, जो आरती उस तीर्थपुरी में पौराणिक काल से देवाधिदेव शंकर और महामाता गंगा का सायंकालीन स्वरूप देखती आई है।

तद्पश्चात पुष्पांजलि समर्पित की गई, जिसमें हमारे स्वामी जी को सम्बोधित कर, वेदवाक्य गाया गया ....

"कर्म और प्रजा से...... अमृत-प्राप्ति नहीं, वरंच संन्यास ही अमर पद देता है ...... शुद्ध-सत्व-महात्मागण ही उस

ब्रह्मपद को प्राप्त करते हैं हे देव, हमारे पुष्प स्वीकार करें तथा हमें आशीर्वाद दो।"

समस्त दिग्मण्डल परमोल्लासमय था। इसी परम पवित्र अवसर पर दिग्विजेता के मुखारविंद से दिव्य-मुस्कान का आविर्भाव हुआ और आशीर्वादात्मक वचन निःसृत हुए ....

"ईश्वर हमें शान्ति, सम्पत्ति, तुष्टि-पुष्टि, भक्ति और मुक्ति का वरदान देवे। हम त्र्यंबक का यजन करते हैं, जो कीर्ति और सिद्धि का विकास करने वाला है ....वही हमें मृत्युपाश से मुक्त करे, शान्ति देवे; तापत्रय का शमन करे।"

उसी रात को १० बजे हम लोगों ने अपनी 'दिग्विजयिनी कार' पर हरिद्वार के विद्वान नागरिकों से विदाई ली और अपने गन्तव्य पथ पर प्रयाण किया।

(३)

लखनऊ

कृष्णपक्षीय रात्रि के मध्य प्रहर की साम्राज्यवादी लिप्सा में हमारी 'टूरिस्ट कार' दिग्विजेता को अपने अंक में निष्ठामग्न किये थी। हम लोग भी सुदूरवर्ती अरण्य तथा ग्रामों की शान्ति पर ध्यानस्थ थे। गाड़ी की तीव्र गति के साथ साथ हमारे गुरुदेव अपनी विजय वैजयन्ती को उत्तर प्रदेश में फहराते जा रहे थे।

दसवीं सितम्बर हमारी यात्रा की दूसरी तिथि थी। मध्याह्न-काल से कुछ पूर्व ही हम लोग लखनऊ नगरी में पहुंचे। श्री

स्वामी जी के आने की सूचना तड़ित्वेगत्वेन नगर के कोने २ में फैल गई। स्थान-स्थान से विद्वान नागरिक श्री स्वामी जी के दर्शन करने आ चुके थे। 'श्री रामतीर्थ प्रकाशन प्रतिष्ठान' से भी वेदान्त धुरन्धर-प्रतिभामंडल पधारा था।

हम लोगों को लखनऊ में पांच घंटे मात्र ही रुकना था, अतः समस्त मण्डल के भोजन की व्यवस्था रेलवे स्टेशन में ही सम्पन्न हुई। उस व्यवस्था में केवल एक ही व्यक्ति की भक्ति और श्रद्धा का चमत्कार नहीं, प्रत्युत समस्त नागरिकों की गुरु-भावना के चरम सत्य का प्रमुख अभिनाख्य था। यह वह प्रेम था, जिसका प्रचार आदि गुरु श्री शंकराचार्य ने किया; जिसकी संस्थापना के लिए उन्हें कठोर संघर्ष का सामना करना पड़ा। परन्तु हमारे स्वामी जी के जीवन में द्वन्द्व और संघर्ष कोई वस्तु नहीं। वे प्रेम के अवतार हैं। उन्हें प्रेम और भक्ति का विश्वास जन-जन में फैलाने के लिए संघर्ष नहीं करना पड़ा। वे शान्तिप्रिय महात्मा थे। अतः उनकी उपस्थिति ही शान्त वातावरण की सृष्टि करती थी। फलतः वे लखनऊ की विशाल जनता के समक्ष होते हुए, शांति और पवित्रता की भावना को विकसित करते चले। उनकी महान तपोशक्ति की असीमता के कारण किसी तार्किक का साहस नहीं हुआ कि प्रश्न करे।

लगभग २५ मिनट स्वामी जी ने व्याख्यान दिया। बीच २ में श्री स्वामी जी कीर्तन की मधुर-ध्वनि भी करते जाते थे।

हरिनाम के रस में सरोबार लखनऊ की भावाभिभूता जनता निस्तब्धतः महात्मा की वाणी को सुन रही थी। उन्होंने अपने जीवन के इतिहास में आज ही एक सच्चे सन्यासी के दर्शन किए। उनके मन, कर्म और वचन पवित्र हो चुके थे। उनकी शंकाओं का दैवी-समाधान हो चुका था। उनकी अन्तर-आत्मा में हरि-नाम का दीपक, अनन्त प्रकाश बिखेरे पग-पग को उज्ज्वल किए था। प्रातःकाल ८ बजे से जनता आई हुई थी; दिन के २ बजने को थे, तब भी तन्मय ही थी।

अन्ततः हमारे प्रयाण का समय हुआ और १० सितम्बर को २ बजे दिन में हमारे स्वामी जी ने फैज़ाबाद की ओर प्रयाण किया। सब लोगों ने मुक्तकण्ठ हो, हाथ जोड़, प्रणव का उच्चारण करते, अपने गुरुदेव को विदाई दी।

कुछ क्षण में हम उनकी दृष्टि से परे हो गए ………… परन्तु हमारे हृदय में उनकी अटूट श्रद्धा की छाप अंकित थी, जो दिग्विजेता पर भी विजय-प्राप्ति की सूचना दे रही थी। सचमुच में भगवद्प्राप्ति भी तो भक्त की भगवान् पर विजय ही होती है। तब क्या गुरुकृपा भक्त-शिष्यों की विजय सिद्ध नहीं करती ?

(४)

फैज़ाबाद

विशाल मार्ग में तीव्र गति से विजय वैजयन्ती के नेता श्री स्वामी जी हरिनाम का संदेश प्रसारित करते जा रहे थे। जहां जहां हमारी गाड़ी ठहरती, वहीं भक्तों का समूह एकत्रित हो

जाता और श्री स्वामी जी के दिग्विजय की सफलता का उपासक बनता। स्थान-स्थान में भगवन्नाम का संकीर्तन कराया जाता। अन्ततः १० सितम्बर की सायंकालीन रमणीयता में हम फैजाबाद पहुँचे।

स्थानीय विद्वद्-शिरोमणि श्री रामशरण मिश्रा के नेतृत्व में स्थापित की गयी 'स्वागत समिति' के स्वयंसेवकों ने नगरवासी जनता की ओर से श्री स्वामी जी का अभिनन्दन किया। विजय के नारों का अनुकरण करती हुई जनता ने अपने गुरुदेव का हार्दिक स्वागत किया। श्री स्वामी जी ने प्लेटफार्म पर उतर कर, पुरवासियों की भेंट स्वीकार की। महामन्त्र कीर्तन करते हुए सभी नागरिक श्री स्वामी जी का अनुसरण कर रहे थे।

सबसे प्रथम श्री स्वामी जी को जनता की ओर से श्री रामशरण मिश्र महोदय ने अपने निवासस्थान में निमन्त्रित किया। हम सब लोग यथास्थान पर बैठ गए। मिश्र जी ने उठकर कहा –

"हम लोगों का परम सौभाग्य है कि श्री स्वामी जी हम लोगों के बीच में हैं। हमारा कर्तव्य है कि हम उनकी अलौकिक-उपस्थिति से यथाशक्ति लाभ उठावें।"

इसके उपरान्त कुछ विद्वानों ने श्री स्वामी जी से धार्मिक वार्तालाप प्रारम्भ किए। परन्तु विवेचक लोग यह भूल न कर बैठें कि वे तर्क कर रहे थे। आज तक श्री स्वामी जी के जीवन

में ऐसा अवसर ही नहीं आया, जहा उन्होंने तर्क या बहस का अवसर अभ्युदित किया हो। आध्यात्मिक शक्ति के आगे आने से सभी सशयों की, सभी क्लेशों की निवृत्ति हो जाती है। सच्चा विजयी वही है, जिसके रणागण में प्रवेश करते ही प्रतिपक्षी रण से निवृत्त ही हो जाय और जो सच्ची वैजयन्ती फहरावे; शान्ति के बल पर। अत हम लोग न भूलें कि श्री स्वामी जी के दिग्विजय की मनोहरता उनकी वाग्पटुता नहीं थी, वरंच उनकी सौम्य प्रकृति की विशालता थी, जिसमे सभी कर्म, सभी संदेह विलीन हो जाते हैं। विशालता के आगे सीमावद्धता का कोई स्वरूप नहीं होता।

श्री स्वामी जी से वे लोग प्रश्न करते जा रहे थे। परन्तु आश्चर्य यह कि वे ही उत्तर भी देते जाते थे। उदाहरण के लिए देखिए—

श्री राम शरण मिश्रा जी भगवत्प्राप्ति की चर्चा कर रहे थे, "स्वामी जी! पुराणों में कहते हैं कि भगवन्नाम सारे क्लेशों का निराकरण कर देता है। परन्तु, उसमें अभ्यस्त होना ही गहन समस्या है। क्या यह ठीक है कि जप और ध्यान से अभ्यास दृढ़ हो सकता है?"

"हा" श्री स्वामी जी ने उत्तर दिया।

"तो क्या" मिश्र जी बोले, "नित्यप्रति ध्यान करने से सफलता तो प्राप्त होगी न? कोई लोग कहते हैं कि प्रात काल

ब्रह्ममुहूर्त मे ही अभ्यास दृढ़ होता है। आपकी राय मे यह ठीक है न?"

"हां" पुनः स्वामी जी ने उत्तर दिया।

इसी प्रकार धर्मप्रसंग चलता रहा। अन्ततः हम लोगो ने जलपान किया। सायंकालीन ७ बज चुके थे। फैज़ाबाद 'टाउन हाल' में सार्वजनिक सभा के मध्य, जनता की ओर से श्री स्वामी जी के स्वागत का आयोजन किया गया था। अतः समस्त मंडली 'टाउन हाल' की ओर अग्रसर हुई।

× × × ×

फैज़ाबाद का सार्वजनिक-भवन जिसकी 'विक्टोरिया हाल' संज्ञा है, नागरिको से पूरा भरा हुआ था। वातावरण में निस्तब्धता थी। प्रत्येक प्राणी का हृदय स्वामी जी के आगमन की आशा में उत्कंठित था। बार-बार उझक उझक कर देखते हुए नागरिको की मुद्रायें सफल-नृत्यकार की ईर्ष्या का पात्र होतीं, अथवा उनकी प्रतीक्षा की भावना के वर्णन करने में, गोपियो की प्रतीक्षा की भावना भी विस्मृत हो जाती थी। गोद के बच्चो की क्षीण ध्वनियां एकाकार हो मानो अपने इष्टदेव का अभिनन्दन कर रहीं थीं।

मन्थर गति से स्वामी जी मंच की ओर बढ़ रहे थे। जनता के हर्ष का सिन्धु असीमित हो गया। सबके हाथ उठे और प्रशान्त प्रणव-ध्वनि ने पाणियोग का अनुकरण किया।

फैजाबाद और लखनऊ डिवीजन के माननीय कमिश्नर श्री एस० एल० धार, (आइ० सी० एस०) सभापति थे। सबके यथा-स्थान बैठने पर माननीय सभापति ने सावजनिकतया स्वामी जी का अभिनन्दन सम्पन्न किया और कहा –

"हम फैजाबाद के नागरिक करबद्ध आपका स्वागत करते हैं। आपने धर्मविजय का जो अनुष्ठान किया है, वह अपूर्व है..............हम आपके आशीर्वाद के अभिलाषी हैं............ आपके उपदेशो के अनुसार हम चल सकें, यही हमें वरदान दो। हम लोगो का अतीव सौभाग्य है, जो आप सदृश महापुरुष हमारे उद्धार के लिए कमर बांधे, जन-जन के हृदय में योग की भावना का विकास कर रहे हैं।"

तदुपश्चात् श्री स्वामी जी ने रंगमंच से उपदेशों की सरिता प्रवाहित कर दी। उनके शब्दो मे कठोर सत्य की नग्नता थी और प्रत्येक शब्द मानों तपोपूत-अग्नि मे परीक्षित और दीक्षित हुआ हो।

"आत्मा ही परम सत्य है। प्रणव उसी अनन्त-आत्मा का विकास है। सभी धर्म, सभी मत और सभी सम्प्रदाय आत्मा के विकसित, व्यावहारिक-स्वरूप हैं। आत्मज्ञान की प्राप्ति के बाद जीवन की सभी साधें पूरी हो जाती हैं। उस आत्मा का ज्ञान किसी विशिष्ट पदार्थ में ही नहीं होता। अपितु, अखिल-भूमण्डल के जड़ और चेतन पदार्थ वर्ग में सन्त पुरुष आत्मा के दर्शन करता है।"

"भूल न जाना, यो वै भूमा तत्सुखम् । उसी पूर्ण आत्मा में अनन्त सुख है । अतः लोक में रहते, लोकोत्तर भावनामय हो, अनन्त-शान्ति में विश्राम करो ।"

समस्त जनसमूह अप्रतिहत-नीरवता मे प्रतिष्ठित था। श्री स्वामी जी का प्रवचन अक्षय ज्ञान की कला को ज्वलन्त करता हुआ, श्रोताओ के हृदयो मे प्रविष्ट हो रहा था।

श्री स्वामी जी के व्याख्यान के उपरान्त, सभापति का संक्षिप्त भाषण हुआ, जिसमें उन्होंने कार्यक्रम समाप्ति की सूचना दी। रात्रि के १० बज चुके थे।

× × × ×

दूसरे दिन स्थान २ पर कीर्तन और सार्वजनिक सभायें हुईं । कन्या विद्यापीठ मे शिक्षा सम्बन्धी व्याख्यान हुए। स्थानीय विद्यालय के छात्रो ने स्वामी जी का अभिनन्दन किया । सायंकाल के समय हम लोग महामाता सरयू के दर्शनो के लिये गए। सरयू के परम पावन तीर्थ पर भगवन्नामोच्चारण करते हुए, हम लोग मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् राम की जन्मभूमि अयोध्या मे पहुँचे। जन्मभूमि के भग्नावशेष अभी भी स्थिर हैं, जो शताब्दियों के अंक म परमोज्ज्वल तपस्वी, महात्मा, अनन्तवीर्य, शुद्ध-सत्व राम की नगरी के चिन्हों का दिग्दर्शन कराते हैं।

रात्रि के ६ बज चुके थ । प्रायः सभी नागरिक श्री स्वामी जी को विदाई देने आये थे । सारा प्लेटफार्म जनसमूह से

परिप्लावित था। ऐसा ज्ञात होता था मानों कोई आकर्षणाकपित-विशालता दौड़ी आ रही हो। वस्तुत: विश्वजित के लिए यह दुर्गम सफलता नहीं थी। कमल और भ्रमर समूह के संबंध को कौन अस्वीकार करेगा ? अग्नि से ही तो धूम्र कल्पित होता है अथवा सूर्यमण्डल के उदय से ही तो दिवस का निश्चय किया जाता है। उस पर भी परम प्रेम के प्रतीक होने से जनता स्वतः उनके श्री चरणों में लोट जाती थी। अभिमान लेशमात्र भी नहीं था। अतः जन-जन के शीश स्वामी जी के समक्ष नत हो जाते थे। क्योंकि यह आस्तिकवाद की विजय-यात्रा थी। नास्तिकवाद, अनात्मवाद और पदार्थवाद के आवरण में बन्दी ईश्वरवाद और सत्यवाद को परम-मुक्ति थी, जो 'परित्राणाय साधूनां' के मनोहर गीता वाक्य के कहने वाले की प्रतीक्षा कर रहे थे। यह भारतीय संस्कृति का नवनिर्माण काल था, जिसमें स्वामी जी ने सत्य-संकल्प की आधार शिला का पुनर्गठन कर, समस्त संसृति को नवल शक्ति और नूतन बल से अभिमन्त्रित किया।

११ सितम्बर को रात्रि के १० बजे हमने बनारस को प्रस्थान किया।

(५)

१२ सितम्बर को अरुणोदय की वेला में दिग्विजेता की विजय वैजयन्ती आर्य संस्कृति, आर्य प्रतिभा के

वाराणसी

केन्द्र, असि और वरुण की मध्यस्थिता भूमि में वायु से टक्करें ले रही थी।

दिग्विजय का चौथा दिन था। वाराणसी की पवित्र-भूमि में, जिस भूमि के गौरव पर आर्य संस्कृति की प्रतिष्ठा है और जिस प्रतिष्ठा के बल आर्य जीवन की सांस्कृतिक-सम्पत्ति जीवित है, हमारा दिग्विजय-मण्डल प्राची में प्रथम किरण के उदय होते ही प्रविष्ट हो चुका था। साक्षात् विश्वनाथ का गौरव-प्रतीक, मां अम्बिका की मधुर गोद में युगों २ से रक्षित, स्वसंस्कृताभिमानी बनारस गगनचुम्बी देवालयों से सनातन-धर्म की वैदिक-परम्परा के यशोरूप महापुण्य-पताकाओं से विश्व का विहंगम अवलोकन कर रहा था। इसी स्थल पर न जाने कितने महापुरुषों ने अपनी चरण-रज को शाश्वत कर दिया होगा। कह नहीं सकते, भारतीय संस्कृति के उद्गम् इस विश्वनाथपुरी ने अपने अंक में कोटिशः बार निज गौरव की रक्षा के लिए दिग्विजयी कितनी शाश्वत-अमर-आत्माओं को पोषित और परम ज्ञान में दीक्षित किया होगा। अन्यथा हमारा धर्म, हमारा सांस्कृतिक गौरव, हमारी भारतीय योग-परम्परा शताब्दियों के कराल-वक्षस्थल में अनादि के लिए विस्मृत हो चुकी होती। समय २ पर विद्वन्मण्डलान्विता, समस्त-कला सम्पन्ना, योगभूमि—इस वाराणसी ने परम पावनी जाह्नवी के तट पर धर्मरक्षकों को पवित्र कर्म में दीक्षित कर, विश्व-शान्ति का नेतृत्व किया।

उसी समय-परम्परा के अनुकूल, किन्तु अलौकिक शक्ति-सम्पन्न हमारे स्वामी जी जब वाराणसी में प्रविष्ट हुए तो

सम्भ्रान्त नागरिकों ने, जिन्हें वाराणसी का गौरव कहना चाहिये, स्वामी जी का स्वागत किया। डा० बी० एल० आत्रेय, एम० ए० पी० एच० डी० डी० लिट० हिन्दू विश्वविद्यालय की ओर से माननीय पण्डित किशनलाल किचलू महामहोपाध्याय, केन्द्रीय विद्यापीठ की ओर से श्री स्वामी जी का स्वागत करने आये थे। विद्वद्वर पंडित देवीनारायण जी और पंडित अम्बिकादत्त उपाध्याय जी ने नागरिक-विद्वानों की ओर से गुरुदेव का स्वागत किया। वेदविद्या-विशारद वैदिक आचार्य वर्ग के कण्ठों से पुण्याहवाचन हुआ और पुष्पों की वर्षा से स्वामी जी की विजय वैजयन्ती का परमाभिनन्दन हुआ।

वह वैजयन्ती दृष्टि से परे तो थी, परन्तु जन २ के हृदय की भावना ही उसकी विजय या पराजय थी। किन्तु दिग्विजयी कभी पराजित नहीं हुआ और न उसमें दूसरे के पराजय की इच्छा ही थी। भावुकता यदि एक दृष्टि से पराजय है तो दूसरी दृष्टि से विश्व विजय की अमर प्रतीक है। यदि जनता ने हमारे गुरुदेव की विजय मनाई तो हमारा दिग्विजेता कभी उनकी पराजय का प्रश्न ही नहीं लाया। आध्यात्मिक दृष्ट्या भगवान की विजय ही भक्त की विजय है तथा भक्त की पराजय केवलमात्र भक्त की ही पराजय नहीं, अपितु साक्षात् भगवान् की पराजय है। "ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्। मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः" ॥ जो ईश्वर या गुरु

को जिस प्रकार आश्रयरूप भजेगा (विजयी या पराजित) वैसी ही भगवान् या गुरु की भावना उसके प्रति होती है। तदनुसार ही प्रत्येक जीव की गति है अतः स्वामी जी की दिग्विजय समस्त विश्व की पारमात्मिकता की, आस्तिकवादिता और ईश्वरवाद की विजय है तथा पराजय है अनात्मवाद की, भौतिक तथा पदार्थवाद की, जिसका चिरकाल से मानवता के साथ समन्वय रहा है। एतदर्थ सद्भावना का मानव-हृदय में अभ्युदय होना हमारे स्वामी जी की दिग्विजय का विशिष्ट लक्षण है। सद्भावना के उदय होने से असद्भावनाओं की निवृत्ति हो जाती है।

'दिव्य जीवन मण्डल' की स्थानीय शाखा के स्वयसेवकों ने श्री स्वामी जी का अभिनन्दन किया। तदुपरान्त समस्त मडली श्री किशनलाल किचलू के नवीन गृह में प्रविष्ट हुई, जिसका उद्-घाटन श्री स्वामी जी ने स्वय अपने कर कमलों से किया। उद्घाटन के उपरान्त गुरुकुलों की वैदिक-परम्परा का चित्र खींचते हुए, श्रीमती किचलू के नेतृत्व में 'सेन्ट्रल कालेज' के लगभग ७० छात्रावासी विद्यार्थियों द्वारा साधना क्रम रूप भगवन्नामसकीर्तन का श्रीगणेश हुआ।

क्या ही अनुपम दृश्य था! श्रीमती किचलू का भावुकता से आप्लावित रसोल्लासमय सकीर्तन तथा विजय और गर्व की

योगमयी-तल्लीनता में पूर्णस्नात विद्यार्थियों की मनोमुग्धकर शब्दावलियां सहज समाधि का अनुभव करा रहीं थीं। सर्वत्र आनन्द ही आनन्द था।

सभी विद्यार्थियों ने सार्वभौमिक शान्ति के लिए सामूहिक प्रार्थना की। देवी-देवताओं की महिमामयी कीर्ति का उल्लेख किया तथा, वैदिक-शान्तिपाठ से साधनाक्रम का उपसंहार किया।

सचमुच में स्वामी जी के आगमन से उल्लास और आह्लाद का अनुभव वर्णनातीत था। जहां जहां स्वामी जी जाते, वहां वहां जनसमूह सागर के तरंगों की नाईं उमड़ा आता था। पुष्प वर्षा से काशी की सड़कें खचाखच भरने लगीं।

१२ सितम्बर के पौने ग्यारह बजे मानव-शान्ति के पुजारी ने श्री विश्वनाथ के महद्विख्यात प्रशस्त देवालय में प्रवेश किया। एक बृहद्-भक्त समुदाय मानो श्री विश्वनाथ पर आक्रमण करने जा रहा हो। परन्तु उनका आक्रमण मुगल बादशाहों की निरंकुश-साम्राज्य-लिप्सा का प्रतिरूप नहीं था। वह तो प्रेम का अपने प्रेम-प्रतीक पर आक्रमण था, जो युगान्तरों से चला आता है! वेद-ध्वनि के उच्चारण से भगवान विश्वनाथ का अभिषेक, अर्चन और पूजन हुआ। उस समय ऐसा ज्ञात होता था, मानों देवाधिदेव शंकर स्वयं अपने पूजन की लीला का सूत्रपात कर रहे हों।

तात्पर्य कि स्थान २ पर स्वामी जी का दिग्विजयी-पग स्थिर-गति से बढ़ता जा रहा था। किसी भी विद्वान् अथवा तार्किक का साहस नहीं हुआ कि अपनी वाग्पटुता और प्रतिभा के द्वारा दिग्विजयी का सामना करे। परन्तु इतना अवश्य था कि प्रत्येक विद्वान् फल-फूल लेकर श्री स्वामी जी के चरणों का सामना करता था।

श्री स्वामी जी का व्यक्तित्व और उनकी व्यक्तिगत स्फूर्ति दर्शनीय थी। यदि उनको अन्तर्यामी का पद दें तो अतिशयोक्ति न होगी। कभी देखिए तो स्वामी जी दशाश्वमेध घाट में दर्शन दे रहे हैं। दूसरी बार देखिए तो किसी विद्यालय का निरीक्षण कर रहे हैं। विशेषता तो यह थी कि प्रत्येक स्थान पर मोक्षद्वार-कपाटोत्पाटनकारिणी रामनाम की पवित्र–कला का प्रकाश विस्तारित था।

× × × ×

१३ सितम्बर को सहसा ही जनता का ज्वार-भाटा भगवान् बुद्ध के पवित्र स्थान सारनाथ की ओर बढ़ रहा था। उस परम ज्योतिर्मय विभूति के स्मारक–चिह्नों से हमारे स्वामी जी का उल्लास किसी अज्ञात-प्रेरणा की स्फूर्ति से स्मृतिमय हो उठा। कीर्तन और भजन हुए। अहा, क्या ही आनन्द था। कीर्तन का परम-पावन स्वर सबके हृदयों की संचित वासना का निराकरण कर चुका था। कीर्तन की महिमा के साम्राज्य में पापी पाप से

मुक्त हुए, कामी काम से मुक्त हुए और लोभी लोभ से मुक्त हुए। कीर्तनरूप परम विशाल सार्वभौमिक-राजछत्र की छाया में कल्मष भग हुए। जो मिलना था सो मिल गया, भय और त्रासोत्पादक-अज्ञान की निवृत्ति हुई। तन मे आनन्द, मन मे आनन्द, सर्वत्र आनन्द,तन मे राम, मन मे राम और सर्वत्र राम; जल मे शिव, थल मे शिव, नभ मे शिव—जल थल और नभोमय शिव—यही अलौकिक दृश्य था, यही अलौकिक भावनायें थीं; यही अलौकिक वातावरण था और इसी अलौकिकता से परिमार्जित ससार था। श्री स्वामी जी गा रहे थे, कीर्तन कर रहे थे, नाच रहे थे—परन्तु इस चेतना मे नहीं। उनकी मानवीय चेतना अन्तर्हित हो चुकी थी, विश्वात्मक-चेतना समाधिस्थ थी। केवलमात्र एक ही महान् की व्यापक-चेतनता उनकी शारीरिकता मे व्याप्त थी। वे परमानन्द-विभोर थे। उनकी वह व्यापक-चेतना अंशतः सभी भक्तो मे कलात्मक थी। जिसने कीर्तन किया, उसी ने उस ज्ञानरूप परम पिता के स्वरूप का ज्ञान किया, उसी ने मगल कार्य किया—अहो, उसीने महामगल कार्य किया; सचमुच उसी ने अपने आचार्यवर्ग, प्राचार्यवर्ग, परमाचार्यवर्ग तथा अनन्ताचार्यवर्ग के कहे हुए उपदेशो का पालन किया। अहो, उसी ने अपने मातृकुल, पितृ-कुल, भ्रातृकुल, भगिनीकुल का तथा अनन्त पूर्वजों का रौरवरूप क्लेशपूर्ण नरक से उद्धार किया। वही शीलवान, वही

गुणी है। वही धन्य है, वही साधु है, पुनः कहूगा कि वही साधु है।

× × × ×

सायकाल के समय प्रातःस्मरणीय त्यागमूर्ति श्री मालवीय जी के विजयप्रतीक, विश्वविद्यालय की पावनी सस्कृत-भूमि मे श्रीयुत आत्रेय जी के सभापतित्व मे, श्री स्वामी जी का ओजस्वी भाषण हुआ। विद्यार्थीगणो को सचेत किया गया। शिक्षकों को उनके कर्तव्य का महत्व दिग्दर्शन कराया। समस्त हाल श्री स्वामी जी की अमृतमयी वाणी से मुखरित हो रहा था। जीवन और मरण के प्रश्न पर प्रकाश डालते हुए, स्वामी जी ने सबको सावधान किया और कहा, 'याद रखना! यह धन, यह वैभव, यह कीर्ति किसी क्षण मे अदृश्य हो जायगी। केवल सत्कर्म और सद्भावना के वल आप अपने जीवन को अमर प्रतिष्ठा मे स्थापित कर सकेंगे।'

श्री स्वामी जी मे भावुकता थी, व्यावहारिकता थी और साथ २ कर्मपरायणता का अपूर्व-समन्वय था। उनकी वाणी मे अमित-शक्ति थी, जो श्रोता के लौकिक-विचारों को छिन्नमस्तक कर देती थी। किसी में शक्ति नहीं रहती थी कि तर्क करे। उपदेशो के श्रवण से ही श्रोता के सशय नष्ट हो जाते थे।

१४तारीख को सायकाल के समय 'थियॉसाफिकल सोसाइटी' की विशाल भूमि कई सहस्र नागरिकों से भरी थी। सभापति

श्री रोहित मेहता तथा माननीय श्री आत्रेय जी ने प्रभावुक भाषा में गुरुदेव को काशी के नागरिकों की ओर से सम्मान-पत्र भेंट करते हुए कहा -- 'आज हमें श्री स्वामी जी के मध्य अत्यन्त गौरव का अनुभव हो रहा है। आज श्री महाराज भारतवर्ष की ही नहीं अपितु विश्व की विभूति हैं। उनका योग प्रत्येक व्यक्ति के लिए है। हम श्री स्वामी जी के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकाशन करते हैं। हमें आशा है कि वे हमारी अकिंचित भक्ति को स्वीकार करेंगे।"

श्री स्वामी जी महाराज ने धन्यवाद देते हुए कहा, "मुझे आज विद्या के केन्द्र में आने का सुयोग प्राप्त हुआ है। मैं काशी के नागरिकों का अति कृतज्ञ हूं। मैं आशा करता हूं कि काशी के नागरिक अपनी आर्य-संस्कृति के गौरव को नहीं भूलेंगे। उनके समक्ष आर्य-प्रतिष्ठा के अभ्युदय का कर्तव्य है। आर्य-धर्म की आधारशिला आध्यात्मिकता के बल पर उन्होंने विश्व-शान्ति का स्तम्भ स्थिर करना होगा। विवेक, वैराग्य और सदाचार, भगवद्भजन प्रेम और सत्संग के द्वारा भारतवर्ष को खोए हुए ज्ञान की प्राप्ति करानी होगी।"

"रात्रि के मध्य प्रहर में झिंगुर की तान और दादुर-ध्वनि से हमें नींद नहीं आ पाती। एक छोटे से जीव में यह अभ्यस्त-शक्ति है। हम विद्वान हैं, सद्विवेक-सम्पन्न हैं ······ हमारी शक्ति अपार है। तब क्यों नहीं हम इस चिर-मोहनिद्रा का निवारण करें?"

समस्त वातावरण पवित्र–गति-सम्पन्न था। नागरिक लोग सौम्यमुद्रा धारण किए हुए थे। श्री स्वामी जी का प्रत्येक शब्द उनके हृदय प्रदेश में प्रविष्ट हो रहा था। रात्रि के ६॥ बजे कार्यक्रम समाप्त हुआ।

सभी लोग आज भी नित्य की भांति अपने घरों में प्रविष्ट हुए। परन्तु खाली हाथ और रिक्त-हृदय नहीं। वरंच हाथों में उत्तेजना थी और हृदय में आत्मबल की स्वर्गीय भावुकता का उदय हो चुका था।

× × × ×

इस प्रकार श्री स्वामी जी काशी की गली-गली में और कूचे कूचे में हरिनाम की विजयपताका फहरा रहे थे, जिसे दूसरे शब्दों में 'शिवानन्द दिग्विजय' की संज्ञा दी जाती है।

इसी अवसर पर हमारे गुरुदेव, बनारस विश्वविद्यालय के उपकुलपति श्रीयुत् गोविन्द मालवीय जी के निवासस्थान में गए। उन दिनों श्री मालवीय जी रोगाक्रांत थे। श्री मालवीय जी के स्वस्थ होने का सकल्प कर, हमारे स्वामी जी ने अपने इष्टदेव का आह्वान किया तथा त्र्यंबक का शास्त्रोक्तरीति से यजन करते हुए, श्री मालवीय जी के स्वस्थ होने की कामना की।

१४ तारीख को सायंकाल ७ बजे स्वामी जी को 'रामानुज विद्यालय काशी' के आचार्य मण्डल द्वारा सम्मान प्राप्त हुआ। इसी अवसर पर काशी की विभिन्न संस्थाओं ने स्वामी जी के सम्मान का विशेष आयोजन किया। इसी आयोजन के संकल्प-

स्वरूप, 'ओंकार विलास भवन' में केन्द्रीय विद्वानों ने महामना स्वामी जी के प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि समर्पित की और गीर्वाण भाषाबद्ध अभिनन्दन पत्रों द्वारा महाराज का सम्मान किया। महाराज की यात्रा व उद्देश्य का उल्लेख करते हुए श्री सरयू प्रसाद शास्त्री जी ने कहा—

"हृषीकेशाच्छरदशाद् परगमनशीला मुनिवरो,
हरिद्वारादाराद् दिशि दिशि प्रचारार्थमधुना।
समायाता यातो जगदुदधिपारं स्वतपसा,
शिवानन्द स्वामी यतिवर इहासौ विजयते ॥"

'इहासौ विजयते' से ही उनकी विजय स्वीकृत होती है। परन्तु विश्व परम्परा के अनुकूल उन्होंने स्वामी जी का वंश-परिचय भी दिया। क्योंकि विजयी पुरुष का पूर्वजीवन जनता में प्रत्यक्षत प्रकट होकर जनता को जीवन पथ की अनुभूति कराता है, जैसे—

"दाक्षिण्य ताम्रपर्णीतट शोभनाये, पट्टामदाइ नगरेऽ पयदीक्षितस्य।
सद्वंशवृक्षसुफलो मुनिभूतमाय, श्रीवंगु अय्यरसुधात्मज पावताज।"

और भी—'लोकोपकारनिरतो, विरतश्च रागाद्' की उक्ति से हमें जनता की भावनाओं का ज्ञान होता है। किस प्रकार मनुष्य अपने जीवन की सफलता को कीर्तिमान् बना सकता है? वह कौन सा योग है, जो मानव कीर्ति का विस्तार करता है, तो हम कहेंगे—

लोकोपकार निरतो विरतश्च रागाद्,
मंराजते जगति योगिवरो महात्मा । तथा च
यो लोभमोहरहितां जनता करोति,
सत्कर्मनिष्ठमनिश सुयशोऽभिरामम् ॥

इन्हीं गुणों से सम्पन्न पुरुष ही सत्यतः सम्पन्न कहा जा सकता है। स्वामी जी में इन सभी गुणों का अलौकिक समन्वय था। अतः स्वामी जी की विजय-पताका द्वीप–द्वीपान्तरो की सीमाओं को एक धर्म की विशालता के नीचे संगठित होने का विजय-संदेश दे रही थी और उसी संदेश का प्रत्युत्तर आर्यविद्या के केन्द्रस्थ-नागरिकों से अभिनन्दन के रूप में प्रतिशब्दित हो रहा था—

"सदा भोगासक्तान् जगति पुरुषान् धर्मविमुखान्,
हरेः सेवालग्नान् ललितभजनानन्दविरतान्।
करोत्यालापैर्यः श्रुतिमधुरगीताप्रवचनैः,
शिवानन्दस्वामी यतिवर इहासौ विजयते ॥"

अन्ततः 'काशी पण्डित सभा' के सदस्यों की ओर से समर्पित अभिनन्दन-पत्र का पाठ हुआ।

× × × ×

१५ सितम्बर को प्रातः १० बजे सारा स्टेशन जनकोलाहल मे प्रतिमुखरित था। सभी लोग स्वामी जी के दर्शनों के लिए आए थे। पुष्पों की वर्षा से सारा प्लेटफार्म सुसज्जित हो चुका था। आज स्वामी जी पटने के लिए प्रस्थान करेंगे। अतः अपने

विजयी गुरुदेव के दिव्यदर्शन करने सभी लोग अपने-अपने नित्यकर्म छोड़कर आए हुए थे। प्रणव की गम्भीर-ध्वनि विशाल और विस्तृत शून्य में जाग रही थी। हर्षोल्लसित, श्रद्धावान नागरिकों के हृदय में शाश्वत-छाप अंकित कर, श्री स्वामी जी ने सबको आशीर्वाद दिया और कुछ ही क्षणों में जब हमारी गाड़ी चलने लगी तो श्रीमती किचलू छोटे शिशु के समान अपने उद्गार को न रोक सकने के कारण सिसक-सिसक कर रोने लगी। बड़ी ही कठिनाई से उन्होंने गुरुदेव के चरणों को मुक्त किया। श्री किचलू भी गाड़ी के सीटी देते ही अपने आवेग को न रोक सके। उनके नेत्रों में आंसू भर आये; पुरुष-प्रकृति सम्पन्न श्री किचलू की वह तीव्र-उत्तेजना सिसकियों में परिवर्तित हो गयी। दोनों दम्पति बोल भी नहीं पाये। उनका गला भर आया था। केवल यही नहीं; जब गाड़ी में गति का संचार हुआ तो हमने देखा, आंसूओं के असीम सागर को—लहराते हुये प्रेमाश्रुओं से प्रपूरित, आनन्द और परम शान्ति के सागर को; उन विस्तृत तथा सजल कई सहस्र नेत्रों में, जिन्हें वाराणसी के नाथ श्री विश्वनाथ को देखने का असीम सौभाग्य रहा है।

शिवानन्द दिग्विजय

द्वितीय विजय

बिहार में

पाटलिपुत्र

आज का दिन बहुत ही आनन्दप्रद था। व्योमवाहिनी नीलराशि कृष्णवर्ण-दुकूल में अपना स्वरूप छिपाए थी। रह-रह कर चपला अनन्त की गोद में लुप्त हो जाती थी। कभी-कभी जलधाराएँ वेगवती हो, क्रुद्ध नागिन के समान धरातल के मर्म का स्पर्श-सा कर रही थीं, तो कभी सप्तरागानुरंजित इन्द्र-धनुष

की महिमा का दिगन्तव्यापी विस्तार हो रहा था। पल-पल मे गाव, वृक्ष और मैदान लुप्त हो रहे थे। हमारा 'टूरिस्ट कार' तीव्र गति से प्रशस्त-शरीरी के समान गम्भीर शब्द करती, मीलों की दूरी को नाप रही थी। एकान्त प्रहरी के समान सुदूरवर्ती ग्राम अपनी मलिनता को अस्पष्ट बनाए, कई युगों से अपने सामने विजय पताकाओं को फहराने वाले वीरों को आते-जाते देख रहे थे। इन्ही एकान्त प्रहरियों ने सैन्य विजयी कई सामन्तो और सम्राटो को यहीं से जाते देखा होगा। युगों-युगो मे साक्षी का रूप धारण किए ये निर्जन अरण्य, न जाने कितनी बार युद्ध-विजयी, राष्ट्र विजयी, धर्म-विजयी और दिग्विजयी वीरों, राष्ट्र नेताओं और अवतारो के पद मे दलित हुए होंगे। परन्तु आज ये धुंधले निर्जन वन और सरिताएँ अवश्य देख रही हैं, नवयुग के दिग्विजयी की विजयिनी-गति की स्फूर्ति को, जो पल-पल मे तीव्र गति से विजय मार्ग पर अवतरण कर रहा है।

१५ सितम्बर को सायकाल के ५ बजे 'शिवानन्द दिग्विजय मण्डल' प्राच्य विद्या के पुरातन केन्द्र पटने मे पहुच गया। आनन्द और उल्लास से नियन्त्रणातीत हुई जनता का उद्रेक पग पग के वातावरण को "श्री स्वामी जी की जै" के विजय घोष से प्रपूरित कर देता था। कुछ ऐसे अनुपम दृश्य का सूत्रपात हो गया कि लेखनी अपनी सीमा का अतिक्रमण नहीं कर पाती। जहा तक मेरी वृत्ताकार दृष्टि जाती, मुझे सिर ही सिर नजर आते थे। पुष्पों की वर्षा ने कुछ देर तक दर्शनातीत विश्व-सौन्दर्य की कल्पना को

सजीव रूप दे दिया। वेगवती वर्षा से भी विचलित न हुए जनसमूह की श्रद्धा और सन्तप्रेम के महिमा की सीमा को नापने का साहस कौन कर सकता है? समुत्तेजित और सम्प्रवाहित जनता ने हाथ जोड़ कर, श्री स्वामी जी के प्रति अभिनन्दन-भाव सम्प्रकाशित किए। कुमारी कन्याओं ने सहस्र-आरति-दर्शन से अपने इष्टदेव की आराधना की।

रथयात्रा का समारोह प्राचीन पाटलिपुत्र के राजपथ पर हरिनाम के वातावरण को समुत्पन्न करता हुआ जा रहा था। स्थान-स्थान पर रथ ठहरता तो नागरिकों की भक्त्याविष्ठा भावनाऐं पुष्पवर्षा का आनन्दित और उल्लसित, अप्रतिहत, चिरकालीन और स्वर्गीय, रमणीय, ज्योत्स्नामय और अमित-सौन्दर्य अनुभूत कराती थीं।

अब हम लोग राजपथ को पार कर रहे थे। सम्भवतः इसी राजपथ के मधुर और सुखद अंक मे धर्मरक्षक, आत्मज्ञ, समाधिसिद्ध और महात्माओं के चरण-कमलों की अमृतमयी अनुभूतियां सजीव रही होगी।

अन्तत· हम लोग श्रीयुत् अलखकुमार सिन्हा के निवास-स्थान मे प्रविष्ट हुए। रात्रि का प्रथम प्रहर व्यतीत हो चुका था। बिहार के अर्थ मन्त्री श्रीयुत् अनुग्रहनारायण सिन्हा ने 'दिग्विजय-मण्डल' के साथ रात्रि के भोजन मे योग दिया।

× × × ×

१६ सितम्बर श्री स्वामी जी ने कई भक्तों के घरों को पवित्र किया। घर-घर रामनामामृत की प्रशान्त-धारा से प्रोक्षित और सम्परिप्लुत किए गए। अनवरत स्वामी जी घर घर को अमित पवित्रता की स्फूर्ति से सम्प्रपूरित करते जा रहे थे। प्रभुनाम की दीक्षा दी जा रही थी। मन्त्रोपदेशों की शान्त शक्तियां वायुमण्डल की संघर्षशीला शक्तियों का निराकरण कर रही थीं।

१७ सितम्बर को प्रातःकाल पटने के धनकुबेर श्री राधाकृष्ण जालान का विशाल भवन श्री स्वामी जी की विजय-ध्वनि से आकीर्ण था। उनके पुत्र श्री हीरालाल जालान ने श्री स्वामी जी के चरणों में मस्तक नवाया।

गंगा के सुरम्य तट पर सत्संग प्रारम्भ हुआ। श्री स्वामी जी ने उपस्थित जनता को आत्मा के लक्षणों का ज्ञान कराया।

तदुपरान्त हमारे दिग्विजयी ने विद्यापीठों में प्रवेश किया। कई विद्यालयों में उत्सुक विद्यार्थी समुदायों को दर्शन देकर स्वामी जी ने उनको सम्प्रहर्षित किया। बी० एन० कालेज में स्वामी जी का भाषण हुआ। सारा हाल जनसमूह से अतिव्याप्त था। हाल के अन्दर ही लगभग १५००० नागरिक बैठ चुके थे। बाहर भी जनता खड़ी थी। बिहार के प्रधान मन्त्री श्रीयुत श्रीकृष्ण सिन्हा के सभापतित्व में समस्त जनता ने श्री स्वामी जी के प्रशान्त और सुमधुर उपदेशों को सुना और गम्भीर, योगमय,

विजयी तथा परिपावन वाणी से अपने कर्णों को पवित्र जाना। 'लोकवत्तु लीला कैवल्यम्' से उपदेश प्रारम्भ हुआ और उसकी सीमा केवल भक्तों का हृदय था, जहां उस पवित्र ज्ञान ने आश्रय पाया, विश्राम पाया और श्रद्धा-प्राण पाया।

१७ तारीख को गोधूलि के समय समस्त नगर 'पटना विश्वविद्यालय' के सिनेट हाल की ओर प्रचण्ड बवण्डर की नाई उमडा आता था। सायंकाल के ६ बजते ही समस्त हाल लगभग २०,००० नागरिको मे खचाखच भर चुका था। हजारो की संख्या थी उनकी, जो बाहर खडे थे।

विश्वविद्यालय के उप-कुलपति की अध्यक्षता मे जन समूह ने सुना; उपकुलपति कह रहे थे—"श्री स्वामी जी आर्य-संस्कृति की प्रतिभा हैं, विश्व-बंधुत्व के प्रतिनिधि और विश्व-शांति के नेता हैं।"

तदुपरान्त स्वामी जी ने सम्बुद्ध-सिद्धान्तमय पारमार्थिक-विषय की विशिष्टालोचना की, साथ-साथ विश्वविद्यालयो के मौलिक-सिद्धान्तों और कर्तव्यो की व्याख्या भी। शान्त नागरिको ने भावुक व्याख्यान सुना और आनन्दोद्रेक से सप्रतिहत, अपने घरो को लौटे। स्वामी जी की विजय गीतिका उनके अन्तराल मे प्रतिशब्दित हो रही थी, जो शाश्वत और अमर है।

१७ सितम्बर को "आल इण्डिया रेडियो" के पटने स्टेशन से पुण्यश्लोक स्वामी जी की वाणी गांवो मे, सुदूरवर्ती शहरो मे,

प्रान्त के कोने कोने मे प्रस्फुरित की गई। स्वामी जी के ओजस्वी भाषण ने प्रान्त के अणु-परमाणु में अन्तस्थित चैतन्य को जगाया और कहा—

"एक ही विश्व के रहने वाले हम मानव, एक ही आकाश के नीचे, एक ही चन्द्र की सौम्य तथा स्निग्ध-ज्योत्स्ना म परिप्लावित, एक ही सूर्य को जन्मदाता मानते हैं। तब क्या नहीं हम आज विश्व-धर्मचक्र का उदय करें? तब क्यों नहीं विश्व-बन्धुत्व का स्वर्ण पक्षी पूर्व और पश्चिम दिशास्थित दोनों परों के बल असीमानन्द-सागर की अमृतमयी गोद में विश्राम पावे? क्यों नहीं 'वसुधैव कुटुम्बकम्' हमारा लक्ष्य हो, हमारा पथ हो, हमारा धर्म और हमारा अद्वैत कर्तव्य हो? आज विश्व-बन्धुत्व के नाते हमने कितनी अपरिमित परोपकारिता मे जन-जन के कल्याण का सौम्य-संकल्प विश्वपिता के पवित्र नाम पर लिया है और कितनी बार हमें विश्वास हुआ कि विशाल भूमण्डल हमारा एक परिवार है? कितनी बार हमने दूसरों के दुखों से आहत हो कर गहरी उःश्वासें ली हैं और उनके निवारण के लिए बलिदान किया है? कितनी बार हमने दृश्य-जगत् का सत्यवाद और चिरन्तनवाद की कसौटी पर कसा है? यदि आजतक कुछ भी नहीं कर पाया तो आज हम विश्व-धर्मचक्र की छाया में विश्व प्रेम, विश्व शांति, विश्व-बन्धुत्व और विश्व-सुख की प्रतिष्ठा का संकल्प करें।

(७)

इस प्रकार अपना परम विजयी सन्देश प्रसारित करते

हाजीपुर

१८ तारीख को श्री स्वामी जी गंगा पार कर, हाजीपुर नामक सम्भ्रान्त ग्राम मे पहुँचे। लगभग २०००० भक्त लोग

गगा के परम रम्य तट पर प्रतीक्षा कर रहे थे। तटवर्ती भूमि का विस्तार श्वेतवर्ण के दुकूलों से आच्छादित जान पडता था। क्या ही अपूर्व दृश्य था। अपने दिग्विजयी के दर्शनों की लालसा लिए आह्लादित हृदय २०,००० ग्रामीण गगा के सु मनोरम नैसर्गिक तट की गोद मे खडे थे।

स्थानीय जिलाधीश पं० उमाकान्त शुक्ला के ही नेतृत्व मे आज बिहार प्रान्तीय धार्मिक जनता ने दिग्विजयी महात्मा का अभिनन्दन किया। हमारे तट पर उतरते ही वालचरो तथा 'दिव्य जीवन मण्डल' के स्वय सेवको की ओर से स्वामी जी के प्रति प्रणाम का श्री गणेश हुआ। तदुपरान्त ब्राह्मणों ने क्षितिज-विहारिणी वैदिक पुष्पाजलि की मत्रावलि से श्री स्वामी जी को महामहनीय परमहस के रूप मे अजलि अर्पण की। कुमारी कन्या ने आरती उतारी। सौभाग्यवती नारियो ने मगल गीत गाये और नागरिको ने पुष्पवर्षा से विजय स्वागत सम्पन्न किया।

मीलों लम्बा था वह समारोह। रथयात्रा थी कि विजय-यात्रा? मस्त हाथियो के पदाघातो से पृथिवी हिल सी रही थी। रथ की निस्तब्ध गति से समस्त वातावरण सौम्यता की गोद मे सोया हुआ था। पीछे से आते सहस्रा वाहनो से नि सृत हुई हरिनाम की गगा, विश्व सघर्ष की आधार-शिला के क्रान्तिमय प्रतिष्ठान की शक्ति को उच्छिद्द कर रही थी। समस्त जनपथ पुष्पवर्षा से आप्लावित था। गृहमाताए छत के ऊपर खडी हो,

मंगल गा रहीं थीं। बालक भी पुष्पवर्षा से भारतीय धर्म के अभिभावक की जयजयकार मना रहे थे।

दोपहर का समय हो गया था। हम पं० रमाकान्त शुक्ल जी के निवास-स्थान में प्रविष्ट हुए। वह घर नहीं, स्वर्ग था। वहां साक्षात् भक्तिदेवी का वास जान पड़ता था। गृहप्रवेश करते ही हमने अति-पावन आध्यात्मिकता के उस रमणीय-सौन्दर्य का अनुभव किया, जो तपोनिष्ठ ऋषियों की तपोभूमि में ही प्राप्त हो सकता है। स्वयं पण्डित जी की धर्मपरायणता और उनकी कर्मपरायणता एक ही सूत्र में पिरोई गई थी। उनका शरीर पसीने से लथपथ था, परन्तु उनकी स्फूर्ति दर्शनीय थी।

श्री स्वामी जी के आगमन के उपलक्ष्य में उन्होंने अभ्यागतों को भोजन तो दिया ही, साथ-साथ उन्होंने दरिद्र-भोज भी सम्पन्न किया, जो आज के संसार में आवश्यकीय है। भोज के उपरान्त अपनी विजय के उपलक्ष्य में श्रीचरण महाराज ने 'दिव्य जीवन पुस्तकालय' की प्राणप्रतिष्ठा की।

हाजीपुर के विषय में जितना कहें, उतना थोड़ा ही है। समस्त कार्यक्रम महा-ओजस्विता की स्फूर्ति से संयुक्त था। स्थान-स्थान पर व्याख्यान होते, कीर्तन की ध्वनियां जल, थल और नभ की विशालता को भावुकता के सूत्र में पिरो रही थीं।

सायंकाल को एक प्रशस्त पण्डाल में श्री स्वामी जी को जन-पद की ओर से सम्मान समर्पित किया गया। अभिनन्दन के

उपलक्ष्य में उपस्थित जनता ने प्रणवध्वनि से जयजयकार का तुमुल घोष किया और श्री स्वामी जी ने मंच पर से अपना संदेश दिया। गृहस्थों को सदाचारमय जीवन का महत्व बतलाया तथा सदाचार और सद्विचार की नींव पर सद्गृहस्थी के निर्माण का अनुरोध किया। किस प्रकार गृहस्थ को अपनी दिनचर्या का पालन कर घर को स्वर्ग बनाने का श्रेय प्राप्त करना है ? श्री स्वामी जी ने अपने संदेश में स्पष्टतया मनुष्य-जीवन का कर्तव्य जनता के आगे दिग्दर्शित किया और आशीर्वाद के साथ जन-कल्याण, योगक्षेम और कैवल्य—पद की प्राप्ति के लिए ईश्वर से प्रार्थना कर, नागरिकों से विदाई मांगी।

सायंकाल ६।। बजे श्री स्वामी जी हाजीपुर की प्रहर्षित जनता से विदाई लेकर पटने वापिस आ गए।

× × × ×

जब हम पटने वापिस आये तो बांकीपुर घाट पर स्थित साप्ताहिक-संगठन-स्थान 'रोटरी क्लब' के सदस्यों ने स्वामी जी का स्वागत किया। माननीय न्यायाधीश श्री बी० पी० सिन्हा ने क्लब के सदस्यों को महाराज का परिचय देते हुए कहा कि "स्वामी जी भारतीय-संस्कृति के अभिभावक और विश्व-शान्ति के नेता हैं। इन्होंने अपनी दिग्विजय द्वारा शांति के स्थापन का बीड़ा उठाया है। विश्व-बंधुत्व और विश्व-धर्म की आधार शिला पर ही स्वामी जी भारतीय गौरव का पुनर्निर्माण कर रहे हैं।"

तदुपश्चात् व्यावहारिक विधितया क्लब के सदस्यों की ओर से सभापति ने अपने सम्भ्रान्त अतिथि-वक्ता से सदेश देने का आग्रह किया। विश्व-शान्ति के विषय पर स्वामी जी ने मानवता के कर्तव्य का दिग्दर्शन कराया। आत्मा और जीव मे नित्यानित्यवाद की विवेचना की। अन्ततः 'सर्वभूतहितेरताः' के सूक्ष्म-अभिवचन से सिद्ध किया कि उपरोक्त अभिवचन का सकल्प तथा उसका अभिसंपादन ही मानव क्लेशों की इति-श्री कर सकेगा और गीता मे गाई हुई 'परस्पर भावयतः' की लोकप्रिय श्रुति ही भूमण्डल व्याप्त संघर्ष और क्रान्ति की जटिल समस्या को सुलझा सकेगी।

श्री स्वामी जी ने अपनी अभिव्यक्ति मे क्लब के सदस्यों के समक्ष ईश्वर-स्मरण की असीम महिमा का वर्णन करते हुए कहा कि ईश्वरीय बुद्धि और आस्तिक-विचारपरायणता ही मानव-शान्ति के द्वार को खोलने की कुंजी है।

आशीर्वाद-लहरी से श्री स्वामी जी ने प्रवचन समाप्त किया और क्लब के सदस्यों का विजयाभिनन्दन स्वीकृत किया।

(३)

गया

१६ सितम्बर को प्रातःकाल हमारा 'दिग्विजय मडल' पटना-पुर-वासियो के हृदयो मे विजय की अमिट छाप अकित कर, गया की ओर प्रस्थान करने लगा। सभी लोग बिदाई देने आये हुए थे। श्री अलख कुमार सिन्हा ने बालक की तरह गुरुदेव के चरण पकड़ लिए। उनकी अवस्था प्रौढ़ता को प्राप्त हो चुकी

थी। उनकी आंखों से जल का वेग थमता ही नहीं था। उनके परिवार के सभी लोग उपस्थित थे। उनके प्रेम से हमारे नेत्र भी भर आये। जैसी अवस्था अपने प्रेमी के विरह में होती है, अथवा अपनी प्रिय माता के वियोग में होती है, ठीक वैसी ही अवस्था समस्त सिन्हा-परिवार की हो रही थी।

"स्वामी जी! हमारे हृदयों में आप सदा के लिए अमर हो गए हैं। हमें आपके जाने से जो दुःख अनुभूत हो रहा है, वह वर्णन नहीं हो सकता।" इतना कह कर वह वृद्ध पुरुष सिन्हा गला भर आने के कारण और कुछ न कह सका। धोती के छोर से अपनी आंखों को पोंछते हुए, उन्होंने मन भर कर अपने गुरुदेव के दर्शन किए और थोड़ी देर में निर्निमेष-नयन उन्होंने अपने इष्टदेव को विशाल-प्रकृति की गोद में अन्तर्ध्यान होते देखा।

महावेगवाहिनी हमारी गाड़ी भगवान् विष्णुपादपुनीत गया की तपोभूमि में प्रविष्ट हुई। गाड़ी के स्टेशन पर प्रविष्ट होते ही जनसमूह शस्यसंकुलित महाक्षेत्र की नाईं लहरा रहा था। वेद-विधानानुकूल आचार्यवर्ग ने श्री स्वामी जी की दीपाराधना की और पुष्प-मालाओं से उनके विशाल-शरीर को आच्छादित कर दिया।

विविध पुष्प-सज्जित कार में दिग्विजयी अतर्कावचर स्वामी जी ने विशाल गंगामहल में प्रवेश किया, जहां सहस्रों गृहमातायें,

बालिकायें और कुमारी कन्याएँ मंगलगीत गा रही थीं। स्वामी जी के भवन मे पहुंचते ही पादपूजा प्रारम्भ हुई।

तदुपरान्त सायंकाल ५॥ बजे संस्कृत विद्यालय, गया मे महा-धुरन्धर विद्वानों के सम्मेलन का स्वामी जी ने नेतृत्व किया। प्रशस्त विद्वानो ने अपनी लौकिक भाषा मे स्वामी जी को व्याकरणोक्त विशेषणों की महिमा से सम्मानित किया। स्वामी शिवानन्द जी की काव्यमयी परिभाषा मे विद्वानो ने श्लोकोद्गार प्रकाशित किए।

अभिनन्दन का उत्तर देते हुए दिग्विजयी ने अपनी अमृत-मयी वाणी द्वारा विद्वानो को अपना संदेश दिया।

× × × ×

२० सितम्बर को प्रातःकाल के बालारुण ने बुद्ध-गया के विशाल प्रदेश की सुरभि-सम्पन्ना-स्थली मे दिग्विजयी के प्रथम दर्शन किए, जो घुटने टेक कर, प्रणामांजलि अर्पित कर रहा था; उस विश्वपिता चिरन्तन बुद्ध के प्रति, जिसने शताब्दियों की उपत्यकाओं के पार, उस परम-ज्योति के महोद्दीपित दर्शन किए थे। एक ने तो यहां से दिग्विजय का श्रीगणेश किया था, परन्तु आज दूसरा दिग्विजेता यहां मस्तक नवाने आया है। क्या ही समुल्लासमय कौतुक था ? क्या ही सुन्दर हमारे महात्मा की लीला थी ?

उसी दिन सायंकाल को गया की जनता की ओर से 'जवाहर हाल' में स्वामी जी का सम्मान दिग्विजयी के रूप में किया गया और अभिनन्दन पत्र के द्वारा नागरिकों की भावनाओं को उस महापुरुष के प्रति प्रकाशित किया गया।

धन्यवाद देते हुए स्वामी जी की दैवी मुस्कान में परम-ज्ञान का सागर था; योग की मधुरता का प्रकाश-पुंज था। उनका सन्देश मानवता को चेतावनी के रूप में प्रभासित हुआ। उनका प्रत्येक शब्द आत्मज्ञान के सांचे में ढला हुआ था तथा उनकी प्रत्येक मुद्रा योग के पारस-पत्थर से स्वर्णिम हो चुकी थी। इसीलिए तो जन-जन के आत्म-हृदय उनके दर्शनमात्र से ही अनिर्वचनीय तथा शीतल-स्पर्श की स्वर्गातीत-अनुभूति करते थे।

स्वामी जी में संन्यासोद्भूत-अहंकार का लेश भी नहीं था। उनके मानव जीवन की अनुभूति में समस्त दृश्य-पदार्थ अनित्य थे। परन्तु बुद्ध की नाईं उनमें नित्यानित्य पदार्थ की व्यावहारिकता पर स्वप्नजनित-वासना अथवा वासना-जनित-स्वप्न का आभास प्रतिष्ठित था। वे केवलाद्वैत की परम्परा को प्रतिष्ठित करने वाले तो थे ही, परन्तु निराशावाद का उन्होंने वेदान्तानुभवों से निष्कासन कर दिया। बुद्ध की सदाचारप्रियता के ज्वलन्त-अनुयायी हमारे स्वामी जी ने शून्यवाद का कभी भी प्रतिपादन नहीं किया। सच्चरित्रता तथा नैतिक-विचारपरायणता हमारे स्वामी जी के उद्देश्यों का सारांश है। इसी कुंजी के बल

स्वामी जी ने महिमामय अलौकिक तत्व के प्रगहन रहस्यद्वार का उद्घाटन कर विश्व के अकिम मे नई दार्शनिक स्फूर्ति जाग्रत कर दी ।

विश्व को उन्होने उदाहरण देना था, अत निराशावाद शून्यवादादि क्रान्तिकारी वादो को निष्कासित कर हमारे स्वामी जी परातत्व के विभूतिरूप देवी देवताओं की महिमा को अखिल ब्रह्माड की महिमा का स्वरूप देते और उनकी विजय वैजयन्ती' इसी महिमा का आदर्श थी, जिसको दिग्विजयी प्रघोषित करना स्वामी जी के जीवन प्रमुख उद्देश्य था ।

२१ सितम्बर को ५ बजे सायकाल स्वामी जी श्री शिवप्रसाद नामक स्थानीय भक्त के घर पहुचे । वेदमन्त्रो से स्वामी जी ने वहा शिवलिंग की प्राण-प्रतिष्ठा की, विधिविधानपूर्वक पूजा की, फूल चढाये और पचाचर कीर्तन किया तथा अन्त मे साष्टाग नमस्कार किया, जो शून्यवादी सन्यासियो के लिए आश्चर्यजनक कर्म है । परन्तु मैं सच कहूगा कि मुझ जैसा निराशावादी तथा शून्यवादी कट्टर सन्यासी भी मूर्ति महिमा पर यदि विश्वासपरायण है, तो केवल स्वामी जी की वर्णनातीत कर्मपरायणता के कारण । मुझे ही नहीं अपितु मेरे समान कई शुष्क वेदान्तियो के हृदय और कर्म पर श्री स्वामी जी ने परिवर्त्तन का लहर सदा के लिए प्रवाहित कर दी है । फलत मुझे विश्वास है कि एक परातत्व प्रत्येक चराचर पदार्थ मे

परिव्याप्त है और मुझे नतमस्तक होने में लज्जा का अनुभव नहीं होता।

२१ सितम्बर को रात्रि के ६ बजे गया के सहृदय भक्तों ने हमें आज्ञा दी। हमारी 'दिग्विजयिनी कार' अपने स्वामी को विश्रान्ति की गोद में लेकर वैभवशाली कलकत्ते की ओर चली। नर-नारियों के हृदय गद्गद् थे। "स्वामी जी! जल्दी दर्शन देना। हम गया के निवासी आपकी अमर-स्मृति को सदा पूजेंगे।" राय बहादुर काशीनाथ के नेत्रों में ज्वार-भाटा था। क्षण-क्षण में "शिवानन्द-जी महाराज की जै" का घोष इंजिन की सीटी को अपने अंक में समासीन कर लेता था। गाड़ी मन्थर गति से बढ़ी। हाथ उठे। प्रेम के प्रतीक, श्रद्धा के आदर्श गयापुरवासी शनैः शनैः आंखों से ओझल होने लगे। प्रकाश की क्षीण-विभा में उनके हाथ निरन्तर हिल रहे थे। परन्तु उनके हृदय का अमितानन्द तथा अनन्त-स्नेह हमें सदा याद रहेगा।

रात्रि के मध्यप्रहरीय अन्धकार में हम विहार की सीमा को पार कर, वंगभूमि में प्रवेश कर रहे थे।

शिवानन्द दिग्विजय

तृतीय विजय

वंग भूमि में

---

२२ सितम्बर को हम मां काली की पावनी भूमि मे प्रविष्ट हुए। प्रातःकाल के अरुणोदय ने कलकत्ते

कलकत्ता

की वैभव-सम्पन्ना नगरी मे हमारे अनन्त-गुणगणभूषित स्वामी जी को दिग्विजयी मुस्कान से आवेष्टित देखा।

हम कलकत्ते पहुचे ही थे कि 'जन गण मन' की लोकप्रिय

श्रुति ने आगत-जनता के हृदयों को महत्वमय-स्फुरण से संचारित कर दिया। ब्रिटिश साम्राज्य की वह पुरातन भारतीय राजधानी अपने वैभव-सम्पन्न पुत्रों के रूप में, स्वामी जी के राजकीय सम्मान का दृश्य देखने आतुर थी। राजराजेश्वर भी सम्भवतः इस प्रकार के विजयाभिनन्दन से वंचित ही रहे होंगे। परन्तु हमारे दिग्विजयी राजराजेश्वर साम्राज्यवादी-सम्राटों के समान न थे। वे प्रेम और स्नेह के युगातीत अवतार थे। राज्य-श्री उन के पांव दबाती थी और लोक-वैभव उनके इशारों पर नाचता था।

श्री स्वामी जी के दर्शनों के लिए कलकत्ते के प्रख्यात धन-कुबेर उपस्थित थे तो साधारण जनता भी उनके कन्धों से कन्धा मिलाए थी। विश्व को एक–परिवार-परायणता का क्या ही उज्ज्वल दृष्टान्त था? स्वामी जी के दर्शनों की लालसा ने मानव-भेदों का निष्कासन कर दिया था। अतः सामाजिक-विभिन्नता के विचारों को तिलांजलि देकर, धनिक और गरीब हाथों से हाथ मिलाए, स्वामी जी के दर्शनों की आकांक्षा में एक भूमि पर साथ-साथ खड़े थे। जिस भेदवाद ने सामाजिकता को जन्म दिया है, उसी की जटिल गुत्थी को सुलझाते हुए, स्वामी जी मानों सन्देश दे रहे थे—"यही विश्व-बन्धुत्व की कुंजी है। यही आध्यात्मिकता है और यही मानव की समस्याओं का एकमात्र सिद्धिकरण है।"

मां काली की पवित्र गोदी में स्वामी जी का विश्वातीत-सम्मान हुआ। माँ की गोद के वे पवित्र-पुष्पदल महिमामय स्वामी जी का आलिंगन करने लगे। 'श्री स्वामी जी महाराज की जै" के विजयनाद से जनता ने महाराज को प्रणाम किया।

कारों की एक पंक्ति नगर की शोभा में अभिवृद्धि करती हुई, गगा तट पर पहुंची, जहाँ स्वामी जी के निवास के लिए काशी बाबू तथान्य सहयोगियों द्वारा अति-रमणीय स्थान नियत किया हुआ था। इस भव्य तथा सुरम्यातीत भवन मे गगा के उस पार, दिग्प्रज्ज्वलित वर्चस्व की विशालता मे एक अविस्मरणीय सन्तपुरुष के जीवनादर्श का मन्दिर, सात्विक आलोक द्वारा मा काली के उपासकों का प्रिय बना था। वह था सुप्रसिद्ध दक्षिणेश्वर का मन्दिर, जहा परमहस रामकृष्ण के दैवी जीवन की व्यावहारिकता का सूत्रपात हुआ था।

हमारे गुरुदेव को पहुंचे अधिक समय नहीं हो पाया था कि भक्तजनो का समूह आकृष्ट हुआ चला आया। वे आते और श्री स्वामी जी के दर्शनो से सम्प्रोल्लास की स्फूर्ति से सचरित होते और काषाय वस्त्राविष्ट विजयान्वित स्वरूप के तेज मे मन्त्रमुग्ध से रह जाते। क्षण-क्षण मे 'जय शिवानन्द' की श्रुतिप्रिय विजय-लहरो उस विशाल भवन की समृद्धिशालीनता मे टकराती, वातावरण की अविस्मरणीय प्रशस्तिका मे तन्मय हो जाती थी।

सूर्य अस्ताचल की ओर शीघ्रता से जा रहा था। हमारे स्वामी जी, कलकत्ता विश्वविद्यालय के आशुतोष भवन' की ओर जा रहे थे। आज स्वामी जी विश्वविद्यालय के विद्यार्थियो द्वारा अभिनन्दित होने वाले थे।

सायकाल के ५॥ बजे हम विश्वविद्यालय की विद्यान्विता गौरवशाली भूमि मे प्रविष्ट हुए तो समस्त आचार्यवर्ग ने श्री

स्वामी जी का स्वागत किया। प्रजातन्त्र भारत के भूतपूर्व मंत्री श्रीयुत् श्यामाप्रसाद मुकर्जी के सभापतित्व में, सम्मेलन का श्रीगणेश हुआ तथा आंग्ल-विभाग के प्रधान श्री भट्टाचार्य ने लौकिक-विधितया स्वामी जी का संक्षिप्त, परन्तु ओजस्वी परिचय दिया।

अन्ततः स्वामी जी ने अपना संदेश दिया। उनकी वाणी न मालूम किस अमर-शिल्पी की भव्य तथा अनिर्वचनीय सृष्टि थी ? उनकी स्वर-लहरियां किसी विशाल ज्ञानाम्भोधि से निःसृत होती हुईं, मर्मज्ञों के हृदय-सागर को आपूर्यमाण करती थीं। वे गाते; तन से, मन से, श्वास और प्राण से—आनन्दोन्मत्त हो, जो चैतन्य के मादकता की अधिक सुन्दर परा पराकाष्ठा थी और थी मीरा के जीवन की अगम्य तपश्चर्या की कल्पना। उनकी ध्वनि में आकर्षण था तो मानव जीवन का अमित सौन्दर्य भी तो था; जिसमें से निःसृत होता था, तपोनिष्ठ-जीवन का योगाभिवचन और झलकता था आत्मशान्ति का मधुर सन्देश।

२३ तारीख को कलकत्ते के प्रतिष्ठित विद्वान नागरिकों से स्वामी जी का वार्तालाप हुआ। तदुपरचात् स्वामी जी ने 'आल इण्डिया रेडियो' कलकत्ते से अपने मधुर-वचनों को प्रसारित किया।

'बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय' के प्राणप्रतिष्ठाता श्री मदनमोहन मालवीय जी के सुपुत्र श्री मुकुन्द मालवीय जी ने "श्री विशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालय" में महाराज के सन्देश को

प्रत्युक्ति करते हुए कहा, "श्री स्वामी जी तपोनिष्ठ, तत्त्वज्ञाता तथा योगसिद्ध महात्मा हैं, जिनकी योगमयी जीवनानुभूति विश्व के आत्मिक-जीवन का अभ्युदय है, और है मानव-पतन के हृदय का पट-परिवर्तन। आज का संसार महाराज के सदुपदेशों की आवश्यकता का अनुभव करता है। महाराज जी ने आध्यात्मिक-निर्माण का जो महान् नेतृत्व किया है, वह अलौकिक ही है।"

श्री स्वामी जी ने अपने सन्देश मे कहा कि आज के संघर्ष-मय जीवन के अशान्ति की यदि निवृत्ति करनी है तो हम वैर और द्रोह-भावना से रहित होकर, मैत्री-भावना के सिद्धान्तो का पालन करें। शुद्धशीलता के प्रकाश में निर्भय होते हुए इन्द्रियजित्, सदाचारी, पवित्र-हृदय और सन्तुष्ट हो जावें; सच्चे ज्ञान की प्राप्ति करें। विश्वविद्यालयोपार्जित ज्ञान हमे लोक-व्यवहार का मार्ग ही दिखा सकेगा। परन्तु हृदय की विशालता के पवित्र प्रदेश मे अनुभवगत-ज्ञान हमारे जीवन को उद्योगशील, प्रमाद-रहित और आत्मनिग्रही बनाते हुए, हमे आवागमन से मुक्त कर परमोपसम्पदा के आलोकित साम्राज्य मे प्रतिष्ठित कर सकेगा। यदि हम इस का व्यवहार करें तो निःसन्देह हमें आनन्द और शान्ति प्राप्त होगी।

'श्री शिवानन्द सरस्वती विद्यालय' से लौटने पर बंगाल के माननीय राज्यपाल श्रीयुत कैलाशनाथ काटजू का पत्र श्री स्वामी जी को प्राप्त हुआ। उसमें लिखा था—

Hous
A.

23.9.5

पूज्य मान्यवर स्वामी (श्रावण
जी महाराज के चरणों में मेरा
प्रणाम स्विकार हो

आप यहां पधारे हैं यह
हर्ष की बात है कलकत्ते (समाज
के भाग्य हैं कि दर्शन हुए
और आप के उपदेशों के सुनने
का अवसर मिला –

मेरे उपर आपकी सदा कृपा
बनी रहती है और जो
संदेश आप भेजते रहते हैं
उन से मैं सदा लाभ

बात सच ही थी कि स्वामी जी को विश्राम के लिए एक क्षण भी नहीं मिलता था। अहर्निश जन-समागम उनकी परिक्रमा करते रहता। समस्त पुरवासियों के हृदयों में भव्य-स्मृति अमरांकित करते हुए, स्वामी जी की पद-ध्वनि से धरा कांप-सी उठती थीं और दिगन्त हिलने-से लगते थे। जहां भी वे जाते, वहीं जनसागर की तरंगें भूमण्डल-व्यापिनी अशान्ति के हृदय को छिन्नप्राय करती थीं। उस विशाल मानव सागर की तरंगाघातों से नभोमण्डल प्रतिशब्दित होता था; दिशायें प्रतिस्तम्भित होती थीं; चराचरावर्त्त-माया अस्तप्राय हो जाती थी।

२४ सितम्बर। "भारतीय तामिल संघ" के सन्निधान में अपार जन-समूह तरंगित हो रहा था। देदीप्यालोक की छटा में आवृत्त स्वामी जी का ईश्वरीय व्यक्तित्व पुरवासियों को अपनी ओर खींच रहा था। दाक्षिणात्य-जनता की भावुकता अपनी सीमा का उल्लंघन कर चुकी थी। उनके सम्मुख दिग्विजयी की प्रशस्त भालोल्लसित भव्य-पारमात्मिकता स्थिर थी। वह इन्द्रजाल था या सत्य, इसे संप्रेक्षक की दृष्टि ही निश्चित कर सकती है।

कलकत्तापुरस्थ 'दिव्य जीवन मण्डल' की सन्निधि में श्री स्वामी जी ने जनता को दर्शन दिए और उनको उत्कट-दर्शनाभिलाषा को शान्त किया।

× × × ×

इस प्रकार वंग भूमि में विजेता रामनाम की महिमा को प्रतिष्ठापित कर चुका था। श्री रामकृष्ण की मधुमयी लीला-भूमि आज परमात्मा के गुणगानों से पुन पवित्रीकरण में दीक्षित हो चुकी थी। आज जगज्जननी संप्रफुल्लोल्लसित थी।

हमारे दिग्विजयी में अणुमात्र भी कर्तृत्व की अभिमानिता नहीं थी। क्या ही सरल हृदय थे स्वामी जी। प्रशान्त-ज्ञान के अविस्मरणीय निकेतन, वर्चस्व-तेज की अनिर्वचनीय ज्योति से भी परमोज्ज्वल, सौम्यातीत स्निग्ध-इन्दु-छटा से भी शीतल-हृदय स्वामी जी आदर-सम्मान में सभी को अपने से श्रेष्ठ समझते थे।

कलकत्ते छोड़ने के पहिले वे पुरीमठ-प्रतिष्ठा श्रीपाद जगद्-गुरु महाराज श्री शंकराचार्य के दर्शनों को गए। अनन्त श्री-विभूषित शंकराचार्य के समक्ष दिग्विजयी ने, जिसकी विजय-वैजयन्ती विश्व पर लहरा रही थी, साष्टांग प्रणाम कर, अपना अभिवादन सम्पन्न किया।

× × × ×

२४ सितम्बर। सायकाल की पुलकित-अरुणिमा के छायालोक में हावड़ा का विशाल स्टेशन शत-सहस्र नारियों से आच्छन्न था। सब के मुखों से वारम्बार "श्री स्वामी शिवानन्द जी की जै" का विजयनाद प्रतिनिनादित हो, असीम शून्यता में प्रशान्त हो रहा था। कलकत्ते के धनकुबेर थे तो साधारण जनता भी शरीर

से शरीर मिलाकर खड़ी थी। अध्यात्मवाद ने साम्यवाद की पूर्ति की और उसे सफल बनाया। छोटे-बड़े के भेद-भावों को भुला कर, आबाल-वृद्ध. राजा-रंक, उच्च-नीच की *साम्यवादिता* पर परमात्मवाद की सुखमय-छाया व्याप्त थी।

७॥ बजने को थे। गाड़ी के द्वार पर विशाल-बाहु, प्रशस्त-भाल और भव्य-मूर्ति स्वामी जी ने दिग्विजयी के सौम्य-स्वरूप में सबको प्रणाम किया। सहस्रशः कण्ठों ने विजयध्वनि से दिग्विजयी पताका को लहरायमान् किया। उनके आंखों में आंसू थे तो हमारा हृदय भी पुलकित था। उनकी श्रद्धा ने हमारे हृदय पर विजय पायी तो सही, पर वे स्वयं पराजित सेना के समान गद्‌गद् हृदय हो, अपने विजयी महारथी को मंगल-शकुन अर्पण कर रहे थे। मर्मस्पर्शी सीटी देते हुए इंजिन में पुनः चेतना आई। हरी झण्डी दिखलाते हुए गार्ड ने सुना—

"जनगणमन अधिनायक जय है भारत भाग्य विधाता"

पुलकित-हृदय उन सहस्रों में काशीराम गुप्ता भी थे, जिन्होंने प्रत्येक महात्मा के कर-स्पर्श कर विजय की अभिवन्दना की।

× × × ×

किसी पागल गजराज की नाईं मद्रास मेल धरा को कम्पित करती, दिशाओं को हिलाती, वायु को वेधती, अकल्पनीय गति में दिग्विजयी पताका को चन्द्रस्नात-वातावरण में लहराती हुई, अन्धकार की निस्तब्धता को भंग कर, गन्तव्य स्थान की ओर

दौड़ी जा रही थी । क्षण-क्षण में गाँव, नगर, जंगल, नदी, नाले विद्युच्छटावत् पार हो रहे थे । अबाध-गति से 'दिग्विजय मण्डल' वंग प्रदेश की विशालता को पार कर, आन्ध्र प्रदेशीय सीमा की ओर संप्रविष्ट हो रहा था ।

शिवानन्द दिग्विजय

चतुर्थ विजय

आन्ध्र देश में

प्रकृति के विशाल गर्भ और विभीषिकामय वातावरण के घटाटोप अन्धकार में दिग्विजयिनी, इतिहास के अमर पृष्ठों पर अपने विश्व-विजयी की अमर गाथा को प्रत्यंकित करती, शान्त एवं निश्चयपूर्ण पुरुष को अपने अङ्क में विश्राम देती, प्रचण्ड गति से क्षण-प्रतिक्षण में योजन पार कर रही थी। तपस्वी की आत्म-सत्ता का प्रतिष्ठापन करने, गुरुपद पूजित पुण्यप्रताप का यश सौरभ मानवीय संस्कृति में बिखेर देने, अमित-ग्लानि से

आवृत्त विश्व के दैन्याच्छन्न-अन्तस्तल की पूर्वजन्म संचित दुर्वासनाओ को मानव के निर्माण के साथ साथ निर्वाण के पथ की ओर प्रेरित करने—वह विश्वविजयिनी दुर्दान्त-गति से कवियो के केन्द्र—पवित्र-आन्ध्रजन-समाकीर्ण प्रदेश में पताका को तरंगित करती हुई प्रविष्ट हो रही थी।

सद्गौरवनिष्ठ आन्ध्रपूत विजेता की चरण-धूलि का स्पर्श करने प्राणों की बाजी लगाने को भी प्रस्तुत थे। विजय हास्य-मुखावृत्त सर्वश्रेष्ठ के दर्शनो के लिए मानव-मेखला उमड़ पड़ती थी तो उड़ती हुई धूल से स्वर्ण-किरण भगवान् भी आच्छन्न हो जाते थे। अरुणिमा के सौन्दर्य की भव्यता मे हम पूर्वीय सागर के तट-सानिध्य मे अग्रसर हो रहे थे।

(१)

वाल्टेयर

विशाल जनसागर मे लहरायमान दीखता हुआ वाल्टेयर स्टेशन, वेदध्वनि से मुखरित, नाम सकीर्तन का पवित्र अमृत छलकाता हुआ, अपने महर्षि के अभिनन्दन के लिए समस्त पुरवासियों के कलेवर की समुत्तेजना से संचलित था। पूर्णकुम्भ-समर्पण की वैदिक-परम्परा के अनुकूल शास्त्रीय-सम्मान समर्चित कर ऋत्विजो ने सन्यास की महिमा को गाते हुए समभिवन्दनीय महाराज का समाराधन सम्पन्न किया और विजय घोष भी।

पीछे था महोदधि और सामने उसी के समान तरंगित लोक समूह। सर्वप्रथम थे दिग्विजयी महाराज; मानो साक्षात् शिव ही विजय-प्रयाण कर रहे हों और पीछे थी अपार जन-राशि; नंगे पांव और खुले शिर। मां की गोद में बच्चा था। फेरी वालों के पान, बीड़ी, सिगरेट भी साथ थे। श्रमिकदल की फटी हुई वस्त्रावलियों में मुड़े हुए कागज के नोट भी साथ थे। विधवा महिलायें एकवस्त्रा तो थीं; परन्तु जनसमूह के विशाल सागर से टक्करें लेती हुई, पवित्र-तीर्थ महाराज के पास पहुंचने का भरसक प्रयास कर रही थीं। स्वेदधारा-आप्लावित पुरवासीगण पूर्ण-विस्मृत हुये से, जिस ओर को धक्कों का निर्देश मिलता, चले जाते थे। जन-समूह था या किसी प्रान्त की महासेना प्रयाण पर थी अथवा देवाधिदेव शंकर अपने महारुद्रों की महासेना लेकर त्रिपुरासुर-विजय के लिए जा रहे थे। एक के बाद एक, फिर सहस्रों की संख्या को प्रशान्त-सागर के तट पर विजयाधिराज के पीछे आते देख सहसा मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम के अपरिमित वानरयूथ का स्मरण हो आता था। मेदिनी कांप रही थी। विजयी का विशाल रथ, गड़गड़ाहट की ध्वनि से अम्बर-पट को विदीर्ण-सा करता, वाल्टेयर की सुरम्य-भूमि पर २५ सितम्बर के अपराह्नकाल में चल रहा था।

यथासमय पादपूजा का वेदपारायण से श्रीगणेश हुआ। घी, दूध, दही, फल, फूल का पार न रहा। एक के बाद एक आता

और परम-ऋषि के चरण-स्पर्श कर, उनकी झाँकी हृदय मे अनुष्ठित कर चला जाता था। घण्टो यही दर्शन-क्रम अनवरत गतिगत हो चल रहा था।

तदुपरान्त स्वामी जी ने 'प्रेम समाज' को अपने चरण-स्पर्श से पवित्र किया। आर्यप्रथानुसार वहा के वालक और वालिकाओ ने महर्पि की चरणरज को सिर-आंखो मे रख, अपने को धन्य माना। अनाथालय का परिक्रमण करते हुए, दरिद्र-नारायण के छद्मवेप में इन्होंने भारत के सजीव-वैभव का दर्शन किया। हमने देखा कि स्वामी जी का तपोल्लसित प्रशान्त-मुखमण्डल किसी असीम तेज स दमक रहा था।

तदुपरचात् प्रेम की दिव्य मूर्ति के सम्मान मे दो वालिकाओ ने 'प्रेम समाज' की ओर से अभिनन्दन-सगीत गाए। कुछ ही देर तक स्वामी जी ने नामामृत का जादू सवत्र प्रसारित कर दिया और मंजुल तथा श्रुतिप्रिय-संगीत द्वारा सभी के हृदयो को पुलकित तथा आनन्द-विभोर कर दिया।

× × ×

विलीयमान तप्त स्वर्ण-कलश के प्रकाश मे, लौटते हुए पक्षियो की कल गुंजन मे, पक्षिशावकों की उत्कंठित स्वरावलि मे, "आन्ध्र विश्वविद्यालय" का शिक्षा केन्द्र स्वामी जी के सप्रज्ञात ज्ञान-तत्व प्रकाशालोक की मधुरिमा मे सुसज्जित था और निःसृत होती जहाँ थीं ज्ञान-विज्ञान के परिधान की मेखला मे सूत्रित मणि-माणिक्य की सहस्रधा रश्मियाँ।

विश्वविद्यालय के प्राचीरों में अपनी प्रेरणा का अभिमंचार करता हुआ, स्वामी जी का मेधावी प्रवचन, पृथिवीतल से दूर और अति दूर जाकर, प्रशान्त सागरों के ऊपर अरण्यरंजित उपत्यकाओं के प्रोत्तुङ्ग शिखरों पर, आनन्त्य सीमा में पार्थिव-शृंखलाओं के बन्धन से विरहित हो, संज्ञामय विचारपरायणता में उड़ता, अप्रतिम सौन्दर्य-सत्व की छटा में नृत्य-सा करता, मानों चन्द्र की ज्योत्स्ना से, पुष्प के सौरभ से, जलधि तरंगों के योग से अथवा विशाल ब्रह्माण्ड की परम-सत्य सत्ता से अभिरंचित हो, संसार की दुःख—परम्परा के अवशेष की श्मशानभूमि में नाचता, कूदता तथा गाता था।

× × × ×

यन्त्रवत् जनता प्रशान्तिमय थी। बाहर नगर में सहस्रों दीप जल उठे थे। 'सार्वजनिक-सभा' (Town Hall) के चारों ओर विजय-दिवाली तेजपुञ्जों में जगमगा रही थी।

यथासमय सभामण्डप के मध्यभाग में, पूर्णेन्दुवत्-स्निग्ध तेजोमय स्वामी ज़ी विराजमान थे। नागरिकों की ओर से अभिवन्दित किए जाते हुए स्वामी जी सहस्र-शारदा-सेवित महानारायण ही प्रतीत हो रहे थे। उनका ब्रह्मतेज-समाव र्ण-व्यक्तित्व जनता के हृदयों में प्रविष्ट होकर, अपनी स्मृति को अंकित कर रहा था और उनकी बौद्धिकता की जीर्ण-शीर्ण अट्टालिका का नव-निर्माण भी।

अर्द्धरात्रि समीप थी। अतः जनता को विदा होने का आदेश हुआ। सब अपने-अपने मार्ग पर, अपने-अपने घरों की ओर

करतल-ध्वनि से कई महापुरुषों का अवतार हो जाता है। फिर भी ये दीन भारत की नग्न-सन्तानें कही जाती हैं!

हमें भी इन दृश्यातीत आश्चर्यों की कल्पना नहीं थी। हमने कभी भी नहीं सुना कि एक महात्मा के दर्शनों के लिए समग्र जनसमूह धूल और कीचड़ में लथपथ हो जाता है। स्वामी जी की कथा भी निराली है। विशालकाय शरीर, हिमांचल की शीतल गोद में अभिपोषित, दक्षिण भारत की तप्त भूमि में नंगे पांव और नंगे सिर चलता। घण्टों प्रवचन करते करते सम्भवतः स्वामी जी ने अपना सन्देश आने वाली जनता के लिए अमर कर दिया।

रात्रि को 'गवर्नमेन्ट आर्ट्स कालेज' की विशाल भूमि में जब स्वामी जी का व्याख्यान होने वाला था तो लगभग एक लाख जनता उनके संदेश को सुनने के लिए आतुर थी। 'नगर निर्माण विभाग' के अध्यक्ष इंजीनियर श्रीयुत् शेषावतारम् ने नागरिकों की ओर से स्वामी जी का सादर अभिनन्दन किया। अभिनन्दन-पत्र समर्पण करते ही जनता ने हर्ष से विजयनाद किया; मानों कोई चिरकालीन-स्वप्न पूर्ण हुआ हो।

युगों-युगो से सन्तप्त हुई जनता महात्मा का आंचल छोड़ने के लिए तैयार नहीं थी। भूखा था मानव; षड्व्यंजन सामने प्रस्तुत थे; भला कैसे ठुकरा सकता? युगों-युगों की तृषा जो शीतल करनी थी; कैसे सरोवर की अवहेलना करता? सचमुच में यही हुआ भी।

उपरोक्त सम्मेलन के उपरान्त, स्वामी जी ने 'रामकृष्ण सेवा समिति' में प्रवेश किया ही था कि लगभग ४०,००० जनता एकत्र हो गई। अत्यन्त दिव्य-गति से हरिनाम संकीर्त्तन हुआ। दो बालिकाओं ने गाना गाया। विश्व भर की सामूहिक-मादकता मानों उनकी वाणी में भरी हुई थी अथवा विधाता ने जगन्माता की मूलशक्ति का संगीतांग उनकी भावुकता में सूत्रित किया था।

संगीत के उपरान्त स्वामी जी ने भी कीर्तन कराया। परन्तु उनकी संख्या ही कितनी थी, जो साधारण चेतना का अभी भी अनुभव कर रह थे ? कोई बैठा तो कोई खड़ा था। सभी मानवीय चेतना के परे अनन्त में भावस्थ हो चुके थे। उस विशाल जन-समूह में किसी अदृश्य के हाथ की दैवी-छाया थी। "नाहं वसामि वैकुण्ठे योगीनां हृदये न च। मद्भक्ता यत्र गायन्ति, तत्र तिष्ठामि नारद।" तब यहां भी अवश्यमेव वह अपनी प्रतिज्ञा को नहीं भूले होंगे।

× × × ×

२७ सितम्बर। राजमहेन्द्रवरम् में आज हमारा दूसरा दिन था। नगर की बस्ती-बस्ती को नामगंगा की दिव्य-धारा में स्नान कराया गया।

प्रातःकाल होते ही पुण्यतोया गोदावरी का तट जन-कोलाहल सम्पन्न था। कोई नहा रहा था; कोई प्रातःरश्मि को अर्घ्य अर्पण करता; कोई नित्यकर्मानुसार संध्यादि में निरत था तो कोई भस्म-चर्चित हो किसी की राह देख रहा था। प्रशस्त-ललाट

गोदावरी के तट पर आज कोई मेला-सा मालूम पड़ता था। मालिनें फूल की टोकरी को सजाये बैठी थीं। ब्राह्मण वेदपाठ मे निरत थे।

दिवाकर की भुवनप्रिय किरणो ने साम्राज्य पसारा तो दिशा-विदिशा धूल के गोटे उड़ाती हुई, किसी शतसहस्राधिक जन-समूह के आने का संकेत करने लगी। गोदावरी का तट, मार्कण्डेय की अमर-भूमि, अतिविस्तृत वक्षस्थल लिए गौरवान्वित हो उठी; जब धीर वीर गम्भीर हिमाचल की आत्मा, अम्बरपट की छाया में, जल मे, थल में, अनिल-अनल मे और अखिल-लोक रंजक- उल्लास की चरम मेखला के अविनश्वर-पारावार मे विहार करती, अविराम-गति से स्वर्णरेणु-सज्जित, पुष्पपत्र-वन्दित, अखिल-देवपूज्य भूमि मे, कोमल—परन्तु अमर-चरण स्पर्श कर रही थी।

सबसे प्रथम हिरण्यगर्भोद्दीपित गगा-जल-संपूरित रजत-कलश ने अपनी अनुजा को शताब्दियो की गोद मे अति दीन तथा अति संकुचित देखा। रजत कलश-रथानुगामी थे हमारे स्वामी जी। अतएव थी उनकी विजय गीतिका। रविरश्मिया उन्हें परम तेजोमय अर्घ्य देती थीं। उनका गाम्भीर्य जनता का आकर्षण था।

गोदावरी के तट पर पदार्पण करते ही जनता के हृदय क्षितिज मे दिवानक्षत्र की रश्मिमाला जागृत हुई। उन्होंने महात्मा के दर्शन

कर, अपने को कृतार्थ जाना। फूल चढ़ाये, चरण छूए और दिव्य-स्वरूप की बलैया ली। स्वामी जी ने आगम-विधितया गोदावरी का सप्रेम पूजन किया। उनकी मुद्रा परम-गम्भीर थी। शतसहस्र इन्दु-सूर्य का उद्दाम-प्रकाश उनके विजय-श्री की कान्ति को हिरण्य-वर्ण कर रहा था। प्रियदर्शन स्वामी जी ने अर्घ्य दिया और गंगा-कलश में गोदावरी का संकल्प कर प्रणाम किया; जिससे रामेश्वर में संकल्पोच्चारण के समय गोदावरी के पवित्र नाम के संकल्प की पुनरावृत्ति पूर्ण होवे।

(३)

कोव्वुर

राजमहेन्द्रवरम् को स्वामी जी के सत्कारपूर्वक सम्मान का अनुपम-प्रसाद मिला। दिग्विजय मंडल के स्थानीय संचालकों ने इस अपूर्व ज्ञानयज्ञ में जो अक्षत-योग दिया, उसकी कीर्ति-गाथा आदर्श है और है गीता-धर्म की प्रतिरूप। उनके कौशल से नागरिकों को अपने जीवन में देव-दुर्लभ महात्मा के पदारविन्दों के संपूजन का वन्दनीय अवसर मिला।

हमारे हर्ष का पारावार न रहा, जब हम जलयान से गोदावरी की गोद में रामनाम के अक्षय कोप को बिखेरते हुए, उस पार कोव्वुर ग्राम की सीमा में प्रविष्ट हुए। जहां तक दृष्टि जा सकती थी, भूमिपृष्ठ श्वेत-परिधान पहिने हुए, कास के फूलों से आवृत-सा कल्पित होता था। क्षण-क्षण में ऐसा भान होता था, मानों कोई

हिमाच्छादित क्षेत्रभाग भूगर्भ मे उदित हो, आगन्तुक के आतिथ्य-सत्कार के लिए प्रस्तुत था।

अगाध गोदावरी का तरण कर, हम लोग तट की ओर अग्रसर हो रहे थे। ज्यों २ हम निकट पहुंचते तो उस क्षितिजान्त-विस्तार में सजीवता दृष्टिगत होती। शस्य-श्यामला; पावस-तृण-संकुलित रम्यता की कल्पना मे कोई नवीन आश्चर्य अन्तर्निहित दृष्टिगोचर होने लगा। लक्षसंख्यक श्वेत-वस्त्रावृत्त मानव-शरीर कोव्वुर विहारिणी के तट पर, स्वामी जी के दर्शनों की उत्कण्ठा मे अधीर खड़े थे।

वृक्षो के पत्ते कम्पित हो रहे थे। स्थान २ पर धूल उड़ रही थी। कलामय तूलिका का मानो चित्रकार ने आज ही अनुपम कौशल रचा था। भू-पर्यङ्क मे सृष्टि की आध्यात्मिकता के कौतुक, नव-पल्लव-दल से विकाश की गोद मे लीला का सूत्रपात कर रहे थे।

ज्यों ही हमारा जलयान तीर का चुम्बन करना चाहता था, हमने सुना प्रचण्ड विजय घोष; मानों अन्तरिक्ष गिरा चाहता हो। पावसकालीन घटाओ के संघर्ष से उद्भूत हुए सप्तभू-नवखण्ड निनादित मेघगर्जन की तरह "श्री शिवानन्द जी महाराज की जै" का प्रोत्तुङ्ग निनाद वातावरण को झंकृत करता, सप्त सिन्धु-पार, अनन्त-कोटि ब्रह्माण्डो के वक्ष को चीरता, देवदूत की तरह सत्यलोक मे श्रीपद-चुम्बिता महामहनीय परम-कमनीय की

कल्पोज्ज्वला तपोभूमि की परम-विभूति के सूत्रधार के मायामय रंगमंच पर उसी के धर्मस्थापन और धर्मचक्र-प्रवर्त्तन का दृश्य देख रहा था।

जलयान पर से स्वामी जी ने सबको दर्शन दिए। पुण्यतीर्थ के खड़े होते ही योजन-नरंगित नर-समुदाय कल्पान्तव्यापी नीरवता की समाधि के आनन्द में समाश्रित हो गया। विशाल-विस्तार में विस्तृत शान्ति निःशब्दतावत कुछ क्षणों तक दमक-दमक कर रह जाती थी।

कुछ ही क्षणों में 'दिग्विजय मण्डल' के स्थानीय संचालकों ने स्वामी जी की प्रशस्त ग्रीवा में विजयमाला डाली। ब्राह्मणों के पुण्याहवाचन से सम्मानित गुरु महाराज के चरणों से तट-चुम्बन होते ही वाद्ययन्त्रों की स्वर-लहरी वायु की गोद में झूला झूलने लगी। कोव्वुर के पथ पर श्री स्वामी जी का विजय-रथ चला। ऐसा भास हुआ मानो समस्त क्षितितल चलायमान हो रहा था। कोई खेतों से होकर दौड़ रहा था तो कोई झाड़खण्डों को पददलित करता हुआ कुलाँचे भर रहा था। सहस्रों मार्ग स्वतः बन गए।

सारे तालुक से जनता आई था, अपने घरों में ताले लगा कर। ३० मील इर्दगिर्द के गाँव एकदम जन शून्य हो गए थे।

श्री रामलिंगेश्वर राव उनके नेता का नाम था। उसने अपने लिए नहीं, वरन समस्त तालुकवासियों के मंगल के लिए स्वामी जी को विनयपूर्वक कोव्वुर के लिए निमन्त्रण दिया।

श्री रामलिंगेश्वर राव से समस्त ग्रामीण परिचित थे। अतः जब उन्होंने रामलिंगेश्वर के ग्रामदूत से स्वामी जी के आने का समाचार सुना तो उनके आनन्द की पराकाष्ठा हो गई और दो दिन पूर्व ही कोव्वुर ग्राम मे शतसहस्र ग्राममूर्तियां आ विराजीं।

कोई बैलगाड़ी पर आया; अपने समस्त परिवार को ले। कोई वृद्धावस्था के कारण पालकी में आया तो कोई अपने घोड़ो पर यथायोग्य सामग्री ले आ धमका। कोई-कोई गरीब थे और जिनके पास सवारियों का प्रबन्ध नहीं था। वे भी सिर पर गठरी रखे, अविश्रान्त-गति में कोव्वुर की ओर चले आ रहे थे।

सहस्रो बैलगाड़ियों, शतशः पालकियों तथा सहस्रों घोड़ों से परिपूर्यमाण कोव्वुर की शोभा किसी महाबली सम्राट् के दिग्विजयी-सैन्य-शिविर से कम नहीं थी। सायंकालीन अरुणिमा मे वह योजनापार महाशिविर, अलौकिक-कौतुक से शब्दायमान हो जाता था। शत-सहस्र दीपकों के जलते ही तथा सहस्रो चुल्हो से प्रकाश के उदय होते ही अतिविस्तृत निर्मल-क्षेत्र उद्दीपित हो उठते थे।

तत्फलतः स्वामी जी की रथयात्रा लक्षशः ग्राम-देवताओं से आवेष्टित, सुन्दरतर को भी सुन्दरतम बना रही थी। 'श्री श्री श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज की जै'' के विजयघोष से माया का मोहक चमत्कार लुप्त हो रहा था।

इस यात्रा में हमारी मण्डली सदा स्वामी जी के साथ चलती थी। परन्तु आज वह क्रम भंग हो गया। मण्डली अस्त-व्यस्त हो गयी। हम लोग कहां थे और स्वामी जी का रथ कहां था, कुछ भी नहीं जान पड़ा। जिधर जाते उधर ही असंख्य जनसमूह। रास्ता काट कर भी स्वामी जी तक पहुँचने का उपाय न था।

इधर तो हम जनसमूह की लहरों में गोता लगा रहे थे, उधर शामियाने के नीचे जनता एकत्रित हो रही थी। हमें सभापति का शब्द सुनने में आया। अतुलित घोष का श्रवण करते ही जो जहां थे, वहीं बैठ गए। कोई बैलगाड़ी पर बैठे थे तो कोई वृक्षों की शाखाओं को अपना आश्रय बना चुके थे। अधिकांश जनता मोटरों की छतों पर भी बैठी थी। हमने भी आश्चर्य-चकित हो देखा कि अविच्छिन्न-भावुकता के सूत्र में पिरोई हुई, क्षितिजान्त विद्रूपावलि की नाईं आन्ध्रदेशाय ग्रामीण जनता एकटक हो, सभी असुविधाओं को भूल कर शस्य-संकुलित क्षेत्र की सुन्दरता का महोत्सव सम्पन्न कर रही थी।

नक्षत्र छटा की जगमगाहट में, अविकसित चन्द्र की हिमांशु-निःसृत शीतल-आभा में, मिट्टी का संचय प्राणी अपना अतीता-गत इतिहास सुन रहा था, जिसे काव्य की कल्पना कल्पित नहीं कर पाती; चित्रकार की सफलतम तूलिका भी अंकित नहीं कर सकती। परन्तु जिसे आत्मप्रदेश के प्रकाश में ज्ञानचक्षुओं के उपार्जन करते ही शुद्धसत्व यतिगण सरस्वती-पूजिता वाणी ने स्वर्ग-प्रांगण के बालकों को युगारम्भ के सूर्योदय से सुनाते

आ रहे हैं। जिसकी भूमिका को आदि पुरुष ने वेदों में गाया। जिसका प्रकाशन आदि-महर्षियों ने किया और जिस इतिहास का निर्माण न मालूम किन विस्तृत कल्पों से होता आ रहा है।

सभी निस्तब्ध थे। यदि सुई भी गिरती तो दिशायें गूंज उठती थीं। सभापति अपनी प्रान्तीय भाषा में स्वामी के प्रति अभिनन्दन पत्र पढ़ रहे थे। वे शब्द थे या मेघ-गर्जन, बम-विस्फोट अथवा भू-विस्फोट !

अब उठे स्वामी जी। मंच पर आरूढ़ हुए। ऊपर उज्ज्वल नक्षत्राच्छन्न गगन था और मंच पर शान्त-मुद्रा, विश्वप्राण, प्रकृति के सुहाग, कैलाश-शिखर पर इन्दु की सजलता के साथ और संन्यास वेष में साक्षात् शंकर थे। उनके गौरव-ललाट पर अगणित श्रम-सीकर तुहिन-बिन्दु की नाईं झलक रहे थे। स्वर की अनवरत तरंगें गंगा की अमर-धारा सी, आघात और प्रत्याघातों से अज्ञान को गलित, पीड़ित और नष्ट कर रही थीं। परस्पर के अंतर, सामाजिकता के अंकुर और भेद-दृष्टियां इस बलिदान में महायज्ञमंच पर स्तब्ध, क्षुब्ध, असंयत और कलाहीन हो, प्रतिपल अपने महाप्रलय के ज्योतिस्फुलिङ्ग की लपटों को देखकर दिग्भ्रान्त हो, क्षण भर बाद ही रोमाञ्चित डर से शंकर के खप्पर की प्रचंड अग्नि की ज्वाला के बादलों में अपने चारतत्व की कल्पना करती, विश्व-वंदित महाशिव की साक्षात् विभूतिमत्ता का ताण्डव-नर्त्तन देख रही थीं।

स्वामी जी के संदेश में सार्वभौमिक-सत्य की गीतिका का उच्छ्वास था, जिसने सभी संप्रेक्षकों के हृदयों पर अपनी गाथा अमर लिपि में अंकित कर दी। यदि ऐसा न होता तो जनता कभी की उकता कर चली गई होती। परन्तु ऐसा न हुआ। उन्होंने तन्मय हो दो घन्टे स्वामी जी के कीर्तन, भजन और उपदेश सुने। तद्पश्चात् भी उन्होंने स्वामी जी का साथ न छोड़ा।

× × ×

व्याख्यान के उपरान्त श्री रामलिंगेश्वर राव के निवासगृह में उत्सुक तथा भावातुर जनता ने स्वामी जी पर छत से पुष्पवर्षा की। कई वृद्ध ग्रामीण, जिनको स्वामी जी के पास पहुंचना अत्यन्त दुर्लभ हो रहा था, परम भक्ति की चरम-सीमा में पर्यवसित हो गए। दीवालों से नारंगियां फेंकते हुए उन्होंने कहा, "यदि हम न पहुंच पाए महाराज के चरणों के सामीप्य में, कम-से कम हमारी भेंट तो उनके अंगों का स्पर्श करले।" भक्त-भावना की पराकाष्ठा का मूल्य हमारे स्वामी जी को चुकाना पड़ा। तप स्निग्ध शरीर पर फलों के गिरने से अति-वेदना को प्राप्त होते हुए स्वामी जी के मुखमण्डल पर वह प्रशस्त मुस्कान थी, जिसने दिग्विजयी के स्वर्णिम यश को सुहागे से आलोकित किया था।

जनता उनको छोड़ना ही नहीं चाहती थी। उनको यदि स्वामी जी के अरविंद-भाल पर स्पर्श करने का अवसर मिलता

वनिता लतादिक पुरवासियों की टक्करों का आघात अनुभव करतीं। बहुत सम्भव था कि भक्तों के भावावेश की चरम-सीमा का यह अलौकिक दृश्य मूर्त्तमयी प्रतिष्ठा के चैतन्य स्वरूप भगवान को योगनिद्रा का निराकरण कर देता। परन्तु यही बहुत था। देवता की मूर्ति तो नहीं साक्षात् देवता की विभूति ही योग-निद्रा से जाग पड़ी। जनता की भीषण झंझा ने योगी को परिस्थिति का ज्ञान कराया। बस फिर क्या था; देवता उठा रंगमंच पर— स्वामी जी के रूप में। जनराशि में नीरवता का आविर्भाव हुआ। एक ही क्षण में परम शान्ति का अनुशासन स्थापित हो गया। मंच पर से स्वामी जी ने मानो विराट्-स्वरूप को अपने स्वरूप का दर्शन कराया।

इसी निस्तब्ध अवसर का लाभ उठाते हुए 'शिवानन्द दिग्विजय मण्डल' के कर्णधार श्री स्वामी परमानन्द जी ने जनता को जनता की परिस्थिति का अनुभव कराया और प्रार्थना की कि सभी दर्शनार्थी यथावत् राह दे दें, जिससे स्वामी जी अपने आगामी कार्यक्रम में समयानुकूल पहुंचें।

प्रार्थना सफल तो हुई, परन्तु विलम्ब अधिक हो गया। आगामी कार्यक्रम ७॥ बजे प्रारम्भ होने को था; लेकिन स्वामी जी जब मन्दिर से लौट कर, वहां पहुंचे तो रात्रि के दस बज चुके थे। पुरवासी लगभग तीन घंटे से स्वामी जी की प्रतीक्षा में धरना दिए बैठे थे।

कुछ ही क्षणों में स्वामी जी ने 'राममोहन पुस्तकालय' में प्रवेश किया तो भक्त जनता ने अपने महात्मा की अभ्यर्थना

फूल चढाए और जयघोष किया। सभी लोग परम शान्ति के
थ महाराज की अनुपम छटा के अमृतमय-सौन्दर्य की
तरंगिनी मे स्नान कर रहे थे। निरन्तर प्रतिस्रुत हुई आध्यात्मिक
न की निर्मल धारा उपस्थित जीवों के सन्तप्त स्वान्त में सुख
न्ति का सचार कर रही थी। भगवान् शकराचार्य के
नुयायी-सन्यासी और अद्वैत वेदान्त के मतावलम्बी महात्मा
ाता की मानसिक स्थिति के अनुकूल कर्म, उपासना और ज्ञान
समन्वय, योग-साधन की प्रक्रिया का उपदेश दे रहे थे।
के आध्यात्मिक ज्ञान-संवलित दिव्य-वाणी की निरवच्छिन्न
ाह-धारा परम-पावनी त्रिपथगामिनी श्री गगा जी की प्रवाह
ारा के समान, असंख्य जनता के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक
तथा आध्यात्मिक रूप अगणित संतापों को समूल नष्ट करने
म निरत थी। गंगा तट का तपस्वी देवदुर्लभ-आत्मज्ञान
का, सात्विक जीवनयापन का, सुखाभास स्वरूप मृगमरी-
चिकामय जीवन के ममत्व-त्याग का वरदहस्त सिद्ध हो रहा था।
जीवन की भौतिक समृद्धि से संसार का मोह हटा कर,
आध्यात्मिक सुख-शान्ति को सर्व-सुलभ करने, सौजन्य-सिन्धु से
निष्कलंक शशांक की कलाकलित सदाचार राशि के समुदाय के
समान निरव शान्ति का पुजारी ज्ञानोपदेशामृतवर्षधाराभिषेक
ने विराट् स्वरूप की पूजा सम्पन्न कर रहा था। सम्मुख थी, भक्ति-
मद-उन्मत्त जनता—प्राग्भवीय सुकृत-विशेष के संचय से समुदित
हुई, वैराग्य की ज्वलन्त भावना से समुज्ज्वल।

किसी को लौकिक चेतना का अनुभव नहीं हो पाया। किसी सीमान्त स्वप्नों के कौतुक उनकी अनुभूति में नृत्य कर रहे थे; किंवा किसी असीम-चेतना के अनन्त उड़ान की गति में उनके प्राण नीरव से हो गए थे; किंवा किसी अनुस्मृत-कल्पना की सजीवता के अनुभवों का स्वप्न-दर्शन, प्रातःकालीन स्मृति में रहस्यात्मक हो रहा था। परन्तु यह भी तो सत्य था कि विराट् की चेतना किसी धातु पर केन्द्रित हो गई थी और उस दैवी आकर्षण का अनुभव उनके जीवन में स्पष्ट तथा असंशयात्मक हो उठा था; जिस अनुभव के आधार पर प्रत्येक भारतीय के नवीन-जीवनात्मक आध्यात्मिक-अध्याय का श्रीगणेश होने वाला था तथा मानव-जीवन का नयनाभिराम चित्र खींचा जाने वाला था; भविष्य को पाठ पढ़ाने तथा आध्यात्मिक, ऐतिहासिक सत्य के विजय की गाथा गाने।

शिवानन्द दिग्विजय

पञ्चम विजय

द्राविड़ भूमि में

मद्रास

२६ सितम्बर को प्रातःकालीन सूर्य के प्रोज्ज्वल होते ही मानवता के उन्नायक ने विजयवाड़ा से मद्रास-विजय के लिए प्रयाण किया। विजयवाड़ा की सौजन्यमयी भूमि में श्री स्वामी जी ने एक मधुर स्मृति अंकित कर दी। आन्ध्र-प्रदेशीय जनता को अध्यात्मवाद में दीक्षित करते हुए, महर्षिकृततिलक

दिग्विजयी महाराज ने ३० सितम्बर को प्रथम प्रहर के उदय होते ही द्राविड भूमि के राजनगर मद्रास में प्रवेश किया।

मद्रास की जनता ने अपूर्व उत्साह से महाराज का स्वागत किया। उनके हृदय विकसित हो गये। उन्होंने स्वामी जी के दर्शनों को पाते ही अपने में नए जीवन और नवीन आह्लाद को जागते देखा। सारा प्लेटफार्म नर-मुण्डों से आपूरित था। श्वेत वस्त्रान्वित विशाल जनसमूह क्षण-क्षण में अनियन्त्रित होता जा रहा था। सर्वप्रथम श्रीयुत् एन० श्रीनिवासन् की कुमारी कन्या ने वैदिक रीतितया गुरुदेव की आरती उतारी और विनय-भारती को स्वामी जी के अर्पण किया। तदुपरान्त पूर्ण कुम्भसमनुयुक्त वैदिकों ने वेद ध्वनि से श्री स्वामी जी के चरणों की अभिवन्दना की।

नगर के प्रमुख सज्जनों में मद्रास हाईकोर्ट के माननीय न्यायाधीश श्री विश्वनाथ शास्त्री जी का नाम उल्लेखनीय है, जिन्होंने सर्वप्रथम श्री स्वामी जी के चरणों में नागरिकों की ओर से मस्तक नवाया। तदुपरान्त स्वागत समिति के सदस्यों ने श्री शास्त्री जी के अध्यक्षत्व में, महाराज के गले में विजय-माला सुशोभित की और उनका अक्षय आशीर्वाद लिया। सुप्रसिद्ध 'माइ मैगेजीन' के संचालक तथा सम्पादकों ने अभिवादन के रूप में श्री स्वामी जी को माला अर्पण की। 'माइ मैगेजीन' के संस्थापक श्री पी० के० विनायक जी ही मद्रास जनपदीय 'शिवानन्द दिग्विजय मण्डल' के सफल कर्णधार थे। पिछले कई सालों से

उन्होंने श्री स्वामी जी के सदेश को द्राविड भूमि में व्यापक कर दिया है। यही कारण है कि आज वहां के ग्रामों, अग्रहारों, पत्तनों तथा विशाल जनपदों में हमारे महाराज पारिवारिक-ख्याति को प्राप्त कर चुके हैं। जगद्‌गुरु और गुरुसेवक-शिष्य का यह प्रथम मिलन था।

स्टेशन पर दिए गए जन-सम्मान के उपरान्त, रथोत्सव आरम्भ हुआ। अति सुन्दर और नयनाभिराम हंसाकृत-रथ पर छत्र-चामरोपसेवित और विविध प्रकार के वाद्यों की लहरी से अभिवन्दित, हमारे स्वामी जी विराजमान थे। उनके पीछे था, नागरिकों का अपरिमित समुदाय; नंगे पांव और नंगे सिर। वृद्धायें हांफ रही थीं और युवतियों की शारीराभा रक्तिम हो उठी थी। दक्षिण की आतप्त-भूमि पर नंगे पांव चलना कोई आसान बात नहीं।

महासिन्धु के तीर पर लहरा रहा था, विजय-रथानुगामी नागरिकों का सागर। प्रथम बार महासिन्धु की उत्ताल तरंगों ने महा-शान्ति के अवतार को देखा। प्रथम बार तरंगनिलय की नीलराशि-मंडिता प्रशान्ता ने सहस्रों शताब्दियों के अकल्पित-तट पर देखा, एक महापुरुष। उसे स्मरण हो आया त्रेतायुगीय वह मनोहर दृश्य; जब किसी ने उसी के तट पर कहा था, "सोषौं वारिधि बिसिखि कृसानू" उसे स्पष्ट स्मरण आया कि उस पुरुष ने भयानक अग्निबाण का सन्धान किया था। उसने

अपने को विदग्ध होते जाना तो कहा था, 'हमहु नाथ सब अवगुन मोरे" और उसे ज्ञात हुआ कि वे राम थे; असुरकुल-कलंकहर राम, सत्यधम-प्रवर्त्तक राम। जलधिराज वरुण ने वह पौराणिक दृश्य देखा और पुनः अपनी प्रतिज्ञा का स्मरण किया, 'हमहुं नाथ एब अवगुन मोरे' सम्भवत वहा दिग्विजयी आज भी कुछ और परीक्षा न करे। वायु ने वरुण के सन्देशो को देवो की सभा मे प्रत्युन्चरित किया। देवो के आनन्द का पारावार न रहा। आज का दिन सचमुच उनके लिए महादिन था, जब कि वे विश्वातीत की पूजा कर सकते थे। अतः मेघदूत भेजे गए। चपला को देवनृत्य की आज्ञा हुई। वरुण ने विश्वात्मक-मृदंग मे लहरें उत्पन्न कीं। मेघराज तथा चपला के नृत्य ने सुदूर दक्षिण कीं भूमि मे अपने आराध्यदेव का अभिनन्दन किया।

पिछले कई सालो से दक्षिण की भूमि पर महाराज इन्द्र का प्रकोप था। समस्त दक्षिण-भूमि जल के लिए आतुर, आकुल तथा व्याकुल हो रही थी। विधाता का विधान अटल है। श्री स्वामी जी के नगर प्रवेश करते समय सुदूर दक्षिण से विलम्बित पर्जन्य राग का उदय हो रहा था। मधुर और सुगन्धित सिन्धु-समीर देवाभिनन्दन का सन्देश ला रहा था। सुदूर ग्रामो मे अति सुन्दर जनपद वांछित जल बरस रहा था। परन्तु मद्रास नगर मे कौतुकवश मेघमण्डल स्तम्भित हो गया और विस्मय-मुग्ध हो, मद्रास नगर के विशाल पथो पर हस्तारूढ़ महात्मा

और उसके पीछे जाती हुई मत्त जनता को देखता रहा। अतः मद्रास में सूर्यमंडल मेघाच्छन्न अवश्य रहा, किन्तु जल न बरसा। दूसरे दिन मन्थर-मन्थर गति से जल-बिन्दु पुरवासियों की आशाओं को शीतल करने लगे और जनता के हर्ष का पार न रहा। उन्हें उस आकस्मिक दैवी कृपा के कारण को जानने की चेष्टा नहीं करनी पड़ी। उन्होंने दैवी कृपा के श्रेय से श्री स्वामी जी महाराज का अभिनन्दन किया। हमें यह कहना पड़ेगा कि यह केवल स्वामी जी ही थे, जिनके पदपद्मों के प्रवेश होते ही आतप्त दक्षिणमण्डल इन्द्र के वरद-हस्त का भागी हो गया।

× × × ×

लहराता हुआ रथ नगर में प्रवेश कर रहा था। अटारियों से गृहस्थों ने देखा और फूल बरसाये। स्थान-स्थान पर पूर्ण-कुम्भ से महाराज को दिग्विजयी का सम्मान दिया गया। सामने उत्तुङ्ग देवालय को देखते ही हमारे आनन्द का पार न रहा। श्री पार्थसारथी का सुविशाल मन्दिर हमारे महात्मा के अभिनन्दन के लिए अपने विशाल कपाट खोले खड़ा था। देवालय के अर्चक-मण्डल ने वैदिक-पद्धति के अनुसार स्वामी जी का स्वागत कर, देवता का प्रसाद समर्पित किया।

श्री स्वामी जी ने देवालय की प्राण-प्रतिष्ठा के दर्शन किए और अपने हाथों आरति उतारी। देवालय के प्रमुख-अधिष्ठाता की पूजा के उपरान्त स्वामी जी ने अन्यान्य देवताओं का पूजन

किया। तदनुरूप देवालय की परिक्रमा करते हुए श्री स्वामी जी 'रामानुज कूटम्' में आये, जहा उनके निवास का प्रबन्ध किया हुआ था।

ज्यों ही महाराज 'रामानुज कूटम्' की सीमा मे प्रविष्ट हुये, त्यों ही पुरवासियो ने उनका सम्मान किया और महाराज पर फूल बरसाए। मद्रास की तप्त दोपहरी मे भी महाराज की कृपा को प्राप्त करने और केवलमात्र उनके दर्शनो की आकांक्षा मे, सहस्रों नागरिक नंगे पाँव और नंगे सिर और आस्वेद शरीर खड़े थे।

झरोखे से स्वामी जी के दर्शनो को प्राप्त कर नर-नारियो ने अपने को धन्य जाना; सचमुच अपने परमार्थ को सराहा। महाराज की दैवी छटा अखण्ड स्वर्ण किरण के विस्तार के समान थी, जिसके आलोक मे समस्त अन्धकार का निवारण हो जाता है, सभी क्लेशों का भय जाता रहता है और आवागमन का चक्र थम जाता है।

इस प्रकार स्वामी जी के प्रति समस्त मद्रास नगर की भावना थी। वहां के नागरिको ने स्वामी जी मे अपने इष्टदेव का भान किया, अपने सुखी जीवन का भविष्य-दर्शन देखा और अपने अज्ञान का निवारण अनुभूत किया। इस प्रकार जनपद ने कई शताब्दियों की अस्फुट-निराशा की उपत्यका के पार, बीसवीं शताब्दि के मध्य मे हमारे स्वामी जी के दर्शन कर, अपने जीवन की सफलता को सराहा। उनका अहोभाग्य जो था; इसीलिये तो

स्वामी जी किसी और शताब्दि में न होकर, उन्हीं की शताब्दि में अवतरित हुए थे।

× × × ×

अभी दिन के दो भी नहीं बजे थे कि मद्रास जनपदीय 'दिव्य जीवन मण्डल' के सन्निधान में श्री स्वामी जी के प्रवचन और दर्शनों की संपूर्ति का आयोजन हो रहा था। समयानुकूल श्री स्वामी जी ने वहां पदार्पण कर, सब की हार्दिक-अभिलाषा पूरी की। सहस्रों भक्तों ने अपने देव की पादपूजा की। प्रसाद-रूप-आशीर्वाद की प्राप्ति तो की ही और साथ-साथ अपने नश्वर जीवन में शाश्वत-संस्कारों का उपार्जन भी किया; जिसकी अभिलाषा में अन्य तिरासी लाख, निन्यानवे हजार, नौ सौ निन्यानवे योनियां उत्कंठित रहा करती हैं।'

सायंकाल के ४ बजे श्री स्वामी जी मद्रास 'जन परिषद्' के कार्य-केन्द्र 'रिपन बिल्डिंग्स' में पहुंच ही पाये थे कि नगर-शासक माननीय डा० चेरियन् ने प्रवेश-द्वार पर ही स्वामी जी का स्वागत किया। तदुपरान्त माननीय नगर-शासक ने नगराधीश को स्वामी जी का परिचय दिया और परिषद् भवन में सभासदों और अधिकारियों के समक्ष महाराज को ले गये।

प्रीतिभोज के अवसर पर नगर के प्रमुख अधिकारियों ने भाग लिया, जिनमें चीफ् जस्टिस श्री विश्वनाथ जी भी सम्मिलित थे। माननीय मेयर डाक्टर चेरियन ने कहा—

"हमारी नगरपालिका सभा को अत्यन्त गौरव है, जो उसे स्वामी जी सदृश युग-प्रवर्तक के सम्मान का सुयोग मिला है। आज का युग धन्य है, श्री स्वामी जी सदृश महापुरुष को पाकर, जिनकी गोद में सभी धर्म, मत तथा सम्प्रदायों को मातृप्रेम का अनुभूत अनुभव हुआ है ... क्या मैं स्वामी जी से मद्रास-प्रान्तीय 'जन-परिषद्' की ओर से प्रार्थना कर सकता हूं कि वे मद्रासी जनता के प्रतिनिधियों को अपना सन्देश दें ?" (हर्षनाद के साथ समर्थन)

उत्तर में श्री स्वामी जी ने परम-रमणीयमान अंशुमाली की आभा से परिषद्-भवन को आलोकित कर, अपना सन्देश दिया। वह भौतिक-विज्ञान को चुनौती थी या साम्राज्यवाद को सावधान रहने का संदेश ? सभासद तटस्थ हो गए। उनकी आंखें स्वामी जी की पारलौकिक भाव-भंगियों के आनन्त्य में उलझती रहीं। उनके वाह्य इन्द्रियों की चेष्टा स्थगित सी हो गई। वे मन्त्र-मुग्ध हो गये थे; जिसका उच्चारण श्री महाराज के प्रज्ञान्वित, सविद्-व्यक्तित्व से प्रस्फुटित हो रहा था।

परिषद् के अध्यक्ष डा० चेरियन तथा अन्य अधिकारियों को संप्रसाद की प्राप्ति हो चुकी थी। उन्होंने प्रवचन के उपरान्त श्री स्वामी जी के चरणों का स्पर्श किया और जब स्वामी जी सभा के विसर्जित होने के उपरान्त 'परिषद् भवन' से बाहर आए तो सभी सभासदों और सदस्यों ने भक्ति, श्रद्धा और आदर के साथ उनको प्रणाम किया; साथ-साथ महाराज के मुख पर उस

प्राचीरों के अन्दर तो वे आदिनाथ हैं, जिन्हें मानव ने अपना पूज्य जाना, पूजा की और फूल चढ़ाए। जिनके अनन्त-सौन्दर्य की अनुभूति में विश्व अपने को सुन्दरतर देखता है; जिनके जीवन-संचरण के आधार पर विश्व अपने को सप्राणित जानता है तथा जिनकी क्षणिक-निद्रा में अखिल-ब्रह्माण्डों का कल्पान्त-प्रलय भी हो जाता है।

पूजन के उपरान्त स्वामी जी रामानुजकूटम् में लौट आये।

अपराह्न काल के लगभग ४ बजे मयलापुरस्थित 'गान्धी निलयम्' नामक बालिका-संस्था ने स्वामी जी को राष्ट्रीय सम्मान दिया और गुरुदेव की महिमा को गाथा। प्रसिद्ध लेखक श्री के० ऐस० रामास्वामी शास्त्री जी भी इस अवसर पर उपस्थित थे।

श्री स्वामी जी ने व्याख्यान दिया, जो धाराप्रवाहिक सन्देश की नाईं किसी अतीत के स्वप्न की सत्यता का प्रतिरूप हो, स्रोतस्विनी की गति के समान निर्बाध और अप्रतिहत था। उन्होंने बालिकाओं को सदाचार की ओर संकेत किया। स्पष्टवादी तो थे ही, अतः नारी-जीवन की समस्याओं पर प्रकाश डाला। बालिकाओं से उन्होंने अनुरोध किया कि वे आज से ही चरित्र-निर्माण का विशिष्ट-प्रकाश आलोकित कर दें; जिसके फलस्वरूप भविष्य का भारत सत्य के आदर्श के परम-पवित्र शिखर पर अपनी सार्वभौम पताका का उत्तोलन करे।

अध्यापिकाओं ने तन्मय हो, उत्तरापथ के तपस्वी की वाणी' सुनी। उनके जीवन में आज नवीन अध्याय का श्री गणेश हुआ। नायनारों की सन्तानें आज अपने खोए हुए वैभव की प्राप्ति के लिए तत्पर थीं। ऋषिकन्याओं को अपने गौरवमय उपवनों की याद आई और उनके नेत्रों में प्राचीन भारत के आश्रम सजग हुए। उनकी इच्छा हुई कि एक बार वे पुनः अपनी वैदिक-सभ्यता के शिखर की ओर प्रयाण करें।

सायंकाल को 'गवर्नमेंट हाउस' में नगर के विद्वान् महानुभाव एकत्रित हो चुके थे। मद्रास की 'अन्तर्राष्ट्रीय सभा' में श्री स्वामी जी का भाषण होने वाला था। इसी अवसर पर माननीय श्री टी० एम० पी० महादेव जी ने उपस्थित जनता की ओर से स्वामी जी का स्वागत करते हुए कहा—" · श्री स्वामी जी आज सत्य और धर्म की दिग्विजय करते हुए यहां पधारे हैं। उनकी दिग्विजय मानव-कल्याण का सामूहिक अभ्युदय है, क्योंकि इस दिग्विजय में उन्होंने जनता के सोए हुए भावों को जाग्रत कर दिया है · ··· ··· ।"

स्वामी जी ने उठकर वचन कहे। वे सत्य थे। अहो! महान् सत्य थे। "एकं सत् विप्रा. बहुधा वदन्ति" उन्होंने जनता के कानों में धर्म की एकता का मन्त्र स्वरित किया, "धर्म की ही छाया में मानव सुखी रहता है। धर्म की अवहेलना ही विश्व के आतंकों का कारण है। धर्म की ग्लानि ही भय के नाटक की भूमिका है और इसी भय के विकास में मानव नाश का विकास सूचित होते रहता है। धर्म ईश्वर-

प्रणिधान का पर्याय है। ईश्वर की महिमा का सर्वत्र अनुभव करना ही धर्म का आचरण करना है। समस्त विश्व में ईश्वर की सत्ता का प्रतिष्ठित देखने वाला ही सच्चा वीर है, सच्चा ज्ञानवान् है। वही धर्म का सच्चा ज्ञाता और अभिभावक है।"

लगभग एक घन्टे तक स्वामी जी ने व्याख्यान दिया। किसी अश्रुतपूर्व संगीत के सौन्दर्य की अनुभूति में तन्मय जनता को ज्ञान भी नहीं हो पाया कि कब स्वामी जी का व्याख्यान समाप्त हुआ। जब उनकी तन्मयता में प्रापंचिक-जागृति आई तो हमारे गुरुदेव मंच पर से उतर रहे थे।

× × × ×

लगभग १५,००० जनता होगी। 'म्यूजियम थियेटर' का विशाल प्रांगण जन-कलरव से प्रति निनादित हो रहा था। "...हम मद्रास के नागरिक श्री स्वामी जी महाराज का स्वागत करते हैं......।" हाईकोर्ट के सम्मान्य न्यायाधीश श्री विश्वनाथ शास्त्री जी ने सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए कहा। प्रहर्षित-जनता ने करतल ध्वनि से विजयनाद किया।

विशाल परिषद् भवन में सहस्रों मूर्त्तियां स्थानासीन थीं। सबके सामने श्री स्वामी जी विराजमान थे। सभी नागरिकों के सम्मुख महाराज के दिग्विजय की घोषणा करते हुए, मद्रास की जनता के प्रतिनिधि श्री विश्वनाथ शास्त्री जी ने 'रजताभिनन्दन पत्र' [Silver Casket] स्वामी जी महाराज के समर्पण किया

और उनके चरण-स्पर्श किए। जनता ने भी विजय-संगीत को महाशून्य में प्रतिनिनादित किया। तदुपरान्त ....

उसी दिग्प्रोज्ज्वल नीरवता ने महात्मा की वेदवाणी को निस्सीम में जागते देखा। इसी वाणी को कुमारिल भट्ट ने जगाया तो कर्मकाण्ड का संगीत विश्व में तन्मय हो गया था। इसी वाणी को ज्ञानसम्बन्धर ने भक्ति की मृदुल वीणा में गाया तो एक बार पुनः भक्ति के गीत प्रतिगुंजित हो गए। और आज दक्षिण-भारत की राज्यस्थली में वही विश्वात्मक-संगीत प्रतिश्रुत हो रहा था, जिसको आनन्द-विभोर हो सुन्दरेश्वर ने, माणिक्य-वासक्कर और तिरसठ नायनारों ने कई शताब्दियों के अस्फुट इतिहास में गाया था। वे गीत स्वामी जी के थे। वे गीत लोकप्रिय थे, जिनकी वाणी मंजुल थी और जिनका स्वरूप दिव्य था। उनको गाने वाला सत्य-धर्म के इतिहास का प्रवर्त्तक था, जिसकी प्रतीक्षा में मानव बैठे-बैठे सो गया था।

(३)

२ अक्तूबर को प्रातःकाल के निर्वात व्योम की विशालता में, सूर्य की किरणों के समुदय होते ही 'शिवाजी व्यायाम मण्डल' की विस्तृत-भूमि में अनुमानतः १०,००० व्यक्तियों के समक्ष स्वामी जी को मण्डल की ओर से मानपत्र समर्पित किया गया। 'व्यायाम मण्डल' की ओर से श्रीयुत् कामथ ने महाराज को स्वागत-भारती पहिनाई। तदुपरान्त श्री गुरुदेव ने अपनी वाणी का प्रसाद दिया।

१० बजे प्रात काल 'हिन्दू थियॉलॉजिकल विद्यापीठ' में लगभग ५,००० विद्यार्थियों ने अपने शिक्षकों के नेतृत्व मे दिग्विजयी को विजयपत्र समर्पित किया ।

३ बजे दिन को 'राष्ट्रीय बालिका विद्यापीठ' की ६,००० सदस्याओं ने स्वामी जी को अपनी संस्था की ओर से मानपत्र समर्पित किया तथा अभिनन्दन गीत गाए ।

'गाधी जयन्ती' के अवसर पर 'गोखले हॉल' में गाँधी जी के जीवन पर प्रकाश डालते हुए, सायंकाल के ५ बजे स्वामी जी ने ५० मिनट तक व्याख्यान दिया । महात्मा जी के आदर्श और त्यागमय जीवन की अभिव्यक्ति करते हुए, स्वामी जी ने जनता को उनके उपदेशों के पालन के लिए उत्साहित किया ।

८ बजे रात को 'मद्रास प्रान्तीय दार्शनिक परिषद्' की बैठक में १०,००० पुरवासी स्वामी जी की प्रतीक्षा कर रहे थे। परिषद की ओर से श्रीयुत् टी० एम्० पी० महादेवन् ने श्री स्वामी जी का अभिवादन किया । व्यावहारिक-वेदान्त पर भाषण देते हुए स्वामी जी ने कहा, "मानव को आवश्यक है कि वह जीवन में ही सच्चे वेदान्त का अभ्यास करे।"

अर्द्ध रात्रि समीप थी । हमारे स्वामी जी गान्धी-नगरस्थ 'आरोग्य आश्रम' मे अपना सन्देश दे रहे थे । श्री के० एस० रामस्वामी शास्त्री जी हमारे महाराज की अनवरत क्रियाशक्ति पर अवाक् थे। पिछले दो दिनों से उन्होंने प्रकाण्ड कर्मयोगी को

देखने का अवसर प्राप्त किया था। वे सोच रहे थे, "ये महात्मा थकते क्यों नहीं! व्याख्यान देते हैं, गाते हैं और नृत्य भी करते हैं और उस पर भी रात भर जागते ही रहते हैं।" उनको स्वामी जी में केवल आदर्शवाद ही दिखाई दिया। सम्भवतः अवतारवाद को खोजने का अवसर ही नहीं मिला। किन्तु वे एक सोपान ऊपर पहुँच पाते तो उनको दृष्टि आते वे परम-रम्य अगोचर दृश्य, जिनकी अनुभूति ही योगी को समाधि के आनन्द में समाश्रित कर देती है और जिनकी केवलमात्र एक झलक के लिए मन्वन्तर पर मन्वतर अपनी गोद में अगणित महात्माओं को लेकर तड़िद्वेग से उस सामने और ऊपर के अनन्त-विस्तार में लवलीन हो जाते हैं।

(४)

३ अक्तूबर। पुण्यश्लोक स्वामी जी ने प्रसिद्ध 'कलाक्षेत्र' में प्रवेश किया, जहां श्रीमती रुक्मिणी अरुण्डेल ने उनका स्वागत किया। श्री स्वामी जी के बैठते ही कलाक्षेत्र की छात्राओं ने रंगमंच पर 'भरत नाट्य' की विभिन्न मुद्राओं का प्रदर्शन किया। उन बालिकाओं के नृत्य में अतुलित सौन्दर्य था, स्रष्टा की अपूर्व कलात्मकता थी और उनके सुकोमल बाल्य-शरीर में अभिनय-चातुर्य था। वह सत्यतः भरत नाट्य था।

नाट्य समाप्त हुआ और कुछ क्षणों में हमने स्वामी जी को मंच की ओर जागृत होते देखा। ऐसा प्रतीत होता था, मानो

महाशिव विश्व के उदयकाल में प्रकृति को वरदान देने उठे हों, चराचर को जीवनदान देने उठे हों। 'कला मन्दिर' की सुन्दरता को अतितर सुन्दर करते हुए, नृत्य-भूमि मे आज स्वयं नृत्य के आदिगुरु नटराज ने अवतरण किया। 'कलाक्षेत्र' में स्वयं कला के नाथ पधारे थे। माता जी और ब्रह्मचारिणी कन्यायें मुक्तकंठ हो सुन रही थीं, स्वामी जी के गीत, उनकी वाणी और उनके कीर्त्तन।

स्वामी जी का ताण्डव-नृत्य उन्मुक्त हो चुका था। सम्पूर्ण मंच सिहर-सिहर कर रह जाता था। जिस ताण्डव नृत्य के प्रगतिमय होने पर ब्रह्माण्डव्यापी प्रलय का सूत्रपात् होता है, उसी ताण्डव-नृत्य की प्रगति का भार एक साधारण मंच सह रहा था ......

"खप्पर ले कर काली नाचे, नाचे आदि देव ... ..."

गाया जा रहा था। मृदंग पर चोटें पड़ रही थीं। वीणा के तार उन्मुक्त हो, नृत्य की ही प्रगति का अनुसरण कर रहे थे। श्री स्वामी जी नटराज की विभूतिमत्ता के आदर्शों को सजीव कर रहे थे। भरत नाट्य नहीं, कथाकल्ली नृत्य नहीं, मनीपुरी नृत्य भी नहीं, अपितु ताण्डव-नृत्य ... ... महादेव का ताण्डव-नृत्य था वह; जिसकी गति अपार है, जिसके भाव भावातीत हैं, जिसका अभिनय कलातीत है और जिसका माधुर्य महाताण्डव का ही माधुर्य है।

उनके नृत्य ने कलाक्षेत्र को स्पष्ट संदेश दिया कि नृत्य लौकिक नहीं, वरंच परमार्थसाधन है। नृत्य केवलमात्र कला का चातुर्य-प्रदर्शन नहीं, प्रत्युत् आत्मा में देखे गए द्वैत तत्त्वों का केन्द्रीयकरण है। उन्होंने अपने आनन्द-प्रपूरित नृत्य से कला के नामधारी अहंकार को क्षत-विक्षत कर दिया। वर्तमान काल में नृत्य मनुष्य-जीवन के विकास का अंग नहीं रहा। नृत्य की ओट में, कला की छाया में, अनैतिक नृत्य तथा कलाहीनता का विभत्स-ताण्डव होता है, जिसके निर्मूलन के लिए ही कलाक्षेत्र में स्वामी जी ने अपने विचारों को प्रकाशित किया। फलतः कलाक्षेत्र ने जाना कि केवल कला, अभिनय, मुद्रा, भाव और माधुर्य के बल पर ही मानव अपने देवत्व की प्राप्ति नहीं करता, प्रत्युत् भक्ति के महान् समन्वय से ही कला चमक उठती है, अभिनय सफल होता है, मुद्राऐं गतिशीला होती हैं, भावों में ईश्वरीयता आती है और माधुर्य में अमरत्व का संयोग होता है।

× × × ×

ताण्डव नृत्य की प्रतिक्रिया स्वामी जी के शरीर पर क्रियात्मक हो रही थी। उनका शरीर शिथिल हो गया था। जिस महापुरुष की उन्मुक्त वाणी पर्वतों को कम्पित सी कर देती, वायु की प्रगति को भी चुनौती देती; जिस महात्मा ने सम्वत्सर

पर-सम्वत्सर ध्यान और समाधि और सेवा में विता दिए, वही महापुरुष आज दैहिक-शिथिलता को प्राप्त होता जा रहा था।

कौन नहीं जानते कि स्वामी जी विश्वविख्यात महर्षि थे? अतः उनकी उपस्थिति में जनमण्डल अपनी मानवीय-चेतना से परे अतिमानवीय चेतना के प्रदेश में प्रतिष्ठित हो जाता था। उन को केवल स्वामी-ही-स्वामी दृष्टि आते थे। उनके अपलक नेत्र स्वामी जी के पारमात्मिक-सौंदर्य-सुधा का पान करते। उन को और चाहिए ही क्या था? महात्मा के दर्शन ही तो.......! जिसकी प्राप्ति परात्परीय अपरिमित-वैभव का स्वामित्व प्रदान करती है तथा आत्म-विकास की दीक्षा से मानवता को 'यद्गत्वा न निवर्तन्ते' के परम धाम"की ओर अभिप्रेरित करती है।

सुना नहीं? कृष्ण भगवान को देखते ही व्रजांगनाऐं अपने अपने काम छोड़कर दौड़ पड़ती थीं। ओखली में अन्न पड़ा रहता। मथानी दही में डूबी रह जाती। गागर पनघट पर पड़ी रहती। अंग-परिधान बिखर जाते। गोद के बालक बिलखते रहते और ग्वालिनें सहसा ही अपने-अपने कामों को छोड़, अपने व्रजकुमार की पारमात्मिक-छवि देखने, गिरती, पड़ती, कूदती और नाचती हुई, व्रज की गलियों में लज्जा को तिलांजलि देकर, दौड़ पड़ती थीं तो उनके पथ पर कांटे भी फूल हो जाया करते और पत्थर भी राह दे देते थे।

इसी प्रकार स्वामी जी के दर्शन करने भर के लिए शतसहस्र स्वरूपों में मिट्टी का पुतला मानव घन्टों खड़ा रहता—स्वेद शरीर; परन्तु सन्तुष्ट नहीं हो पाता था। देवदर्शन की लौ लग गई थी तो फिर मन की तृप्ति होने तक क्या करे ? महात्मा का साक्षात्कार भी तो एक विशिष्ट चेतना का जन्मदाता है, जिसके गर्भ से आत्मज्ञान की सृष्टि होती है। तभी वे नागरिक धन्यतम हो जाते हैं, अनुगृहीत हो जाते हैं, पवित्र हो जाते हैं।

श्री स्वामी जी यह भली भांति जानते थे। अत: यह स्वाभाविक ही था कि वे किसी भी अवस्था में विचलित नहीं हुए। उनका शरीर शिथिल हो चुका था; दैहिक शक्ति ने असमर्थता भी प्रकट कर दी थी। पर हमारे स्वामी जी अपनी लगन के पक्के थे। जब उन्होंने सुना कि 'वाणी महल' में जनता उनकी प्रतीक्षा कर रही है तो उनका कर्तव्य उनको जाने के लिए अभिप्रेरित करने लगा।

माननीय श्री विश्वनाथ शास्त्री तथा सभी ने आग्रह किया कि स्वामी जी इस अवस्था में कहीं न जाऐं। पर स्वामी जी कब मानने वाले थे। समुद्र से रत्नों को निकालने वाला क्या कभी तरंगो के थमने की प्रतीक्षा करता है ? और विशेषता यह थी कि आज रात्रि को स्वामी जी सुदूर दक्षिण की ओर प्रयाण करने वाले थे। मद्रास नगर का अन्तिम कार्य-क्रम भंग करना उनको इष्ट नहीं था।

तत्फलत 'वाणी महल' में संगठित हुई ६०,००० जनता ने धीरे-धीरे बोलते हुए स्वामी जी का व्याख्यान सुना और जी भरकर दर्शन किए। जनता को यह सूचित करने की आवश्यकता नहीं थी कि महाराज अस्वस्थ है। चपल-गति से स्वामी जी की शारीरिक-अवस्था का समाचार नगर के कोने-कोने मे प्रतिध्वनित हो उठा। जन-समाज मे चिन्ता का आवेग उर्मित हो गया। सायंकाल होते-होते देवालय के पूजको ने अपने आराध्य की सन्निधि मे महाराज के शारीरिक-क्षेम का संकल्प कर पूजा और अर्चना की; जिसकी प्रतिध्वनि 'वाणी महल' से 'एग्मोर स्टेशन' की ओर जाते हुए दिग्विजयी क कानो मे शंख-ध्वनियो द्वारा प्रतिशब्दित हुई।

× × × ×

३ अक्तूबर। निशा का प्रथम प्रहर व्यतीत हो चुका था। मद्रास की छोटी लाइन का 'एग्मोर स्टेशन' जन-कलरव से समाकीर्ण था। हमारी प्रथम 'दिग्विजयिनी कार' (Tourist Car) मद्रास के सेन्ट्रल स्टेशन पर ही थी और हमे सीधे जाकर पूने मे स्वामी जी की प्रतीक्षा का आदेश मिला था। अत हमारे पाठक अपनी पूर्व परिचित दिग्विजयिनी के दर्शन १५ दिनो के उपरान्त पूने मे करेंगे। सुदूर दक्षिण की विजय यात्रा के लिए छोटी लाइन की 'टूरिस्ट कार' एग्मोर स्टेशन मे दिग्विजयी के लिए प्रस्तुत थी।

१० बजने को थे। मद्रास जनपदवासी नागरिकों ने महाराज को विदाई दी। जिस मद्रास की कल्पना करते ही संन्यासी या कोई धर्म-प्रचारक स्तब्ध हो जाता है, उसी मद्रास के शिखर पर विजय-वैजन्ती लहराते हुए, हिमशैल के तपस्वी-जीवन, दिग्विजयिनी के प्रवेश-द्वार पर कृपा-कटाक्ष-वीक्षण-लहरी से समायुक्त मुस्कान में परिवेष्टित हो, सबको कृतकृत्य कर रहे थे; जब कि विजय-सुमन बरसाये गए, विजय-भाव लहराए गए, विजयी चरण पखारे गए, विजय-वेष सराहे गए और विजय-गीत गाए..........

"जनगण-पथ-परिचायक जय हे, भारत भाग्य-विधाता"

और कुछ ही क्षणों में सीटी देती, धूम्र उड़ाती, प्रणवात्मक शब्द करती रेलगाड़ी, तमस्विनी का वक्ष चीरती हुई, द्राविड़-भूमि के अंक में विभीषिकामय अट्टाहास करती, विजय-पताका फहराती, वीरभद्र-संचालित महारुद्रों की सेना के समान मानो दक्ष-यज्ञ विध्वंस करने प्रकाण्ड-गति से अग्रसर हो रही थी। गगन-मण्डल चमक उठता। तारे उज्ज्वल हो जाते। बादलों की ओट से नक्षत्रावलि उस प्रगति पर आश्चर्य प्रकट करती थी।

(५)

अर्द्धरात्रि बीत चुकी थी। सुगन्धित दाक्षिणात्य वायु बह रही थी। 'शिवानन्द दिग्विजय मण्डल' योजन-पर-योजन पार कर रहा था। हम

विल्लुपुरम्

लोग मद्रास के अनुभवों की पुनरावृत्ति कर रहे थे। स्वामी परमानन्द जी अपनी बीती सुना रहे थे। किस प्रकार जनता स्वामी जी को अपनी ओर खींचती और किस प्रकार वे मंडल के संचालक की हैसियत से उनका निवारण करते थे।

आज वे कुछ चिन्तित जान पड़ते थे। स्वामी जी के अस्वस्थ रहने से आगामी कार्य-क्रम की क्या अवस्था होगी ? विभिन्न केन्द्रों मे नागरिक उनकी प्रतीक्षा कर रहे होंगे। यही विचार बार-बार हमारे मन में केन्द्रित हो रहा था। "यदि कहीं दो दिन अज्ञातरूप से ठहर कर स्वामी जी को विश्राम दें तो उत्तम होगा। क्या यह योजना सफल हो सकेगी ?" क्योंकि केवल १ या २ मिनट के लिए गाड़ी किसी स्टेशन पर ठहरती तो हमें जनसमूह कार की ओर अग्रसर होते दिखलाई देता था। बहुधा उनके आ पहुंचने के पूर्व ही गाड़ी चल देती थी। ऐसी अवस्था में अज्ञातरूपेण विश्राम की योजना कैसे सफल होगी ? यही हम विचार कर रहे थे। अन्त में संकल्प-विकल्प और विचार-विमर्श करते किसी तरह तन्द्रात्मक-निद्रा ने हमें स्वप्नों के साम्राज्य में समाश्रित कर दिया।

× × × ×

विल्लुपुरम् ४ अक्तूबर। पुरवासियों का समूह स्टेशन की ओर पावसकालीन वायु की नाईं अग्रसर हो रहा था तो मेघमंडल भी उदित हुआ चाहते थे।

"न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशु"

दिग्विजयी को मन्त्र पुष्पाञ्जलि दी गई और रथ समारोह नगर में प्रविष्ट हुआ। स्थान-स्थान पर स्वामी जी के दर्शनों के लिए सहस्रों स्त्री-पुरुष समुल्लसित हृदय हो, एकटक उनका पन्थ निहार रहे थे। स्वामी जी की मुखाकृति सदा के समान सौम्य और स्निग्ध थी। केवल अन्तर इतना ही था कि वे आज नेत्र मूंदे किसी गम्भीर विषय पर मनन कर रहे थे।

स्थानीय सचालक डा० मणि ने सुव्यवस्था की थी, जिसके फलस्वरूप कोई भी दर्शनार्थी स्वामी जी के दर्शनों से वंचित नहीं रहा। सहस्रों जनपदवासी आए तो उन्हें महाराज के दर्शनों को यथेष्ट प्राप्ति हुई। नेत्रोन्मीलित प्रखर प्रतिभावान् पौराणिक महर्षि की मधुर मुस्कराहट में उन्होंने अपने जीवन के सुख का विभूतिसम्मित दर्शन किया, क्योंकि महर्षि के दमकते हुए शरीर में स्वर्ण की कान्ति, रजत की छवि, हीरे का आलोक, मणि की छटा और रत्नों की शोभा थी तो अंशुमाली का जीवन प्रकाश, शशि की स्निग्ध-कला तथा व्योम की विशालता भी थी और थी आत्मा की अमर-चेतना। उन्होंने स्वामी जी के दर्शनों से और क्या सम्प्राप्त किया, इसकी साक्षी तो उनका भविष्य ही देगा। हम तो अब नटराज की नृत्यभूमि चिदम्बरनगर की ओर प्रस्थान कर रहे हैं।

(६)

चिदम्बरम्

आज ४ अक्तुबर है। हम लोग चिदम्बरनगर पहुंच चुके हैं। सायंकाल के लगभग ४ बजे स्थानीय मण्डली के व्यवस्थापक डाक्टर के० सी० राय की अध्यक्षता में स्थानीय महानुभावों ने स्टेशन पर ही स्वामी जी का स्वागत किया। सुप्रसिद्ध नटराज मन्दिर के अध्यक्षवर्ग ने वेदपारायण द्वारा स्वामी जी की अभिवन्दना की तथा विश्वविद्यालय की ओर से स्वामी जी को आमन्त्रित किया।

स्टेशन से सीधे हम लोग श्री स्वामी जी के साथ विश्वविद्यालय की ओर गए, जहां उप-कुलपति तथान्य विश्वविद्यालयाधिकारियों द्वारा प्रीतिभोज का आयोजन किया हुआ था। श्री स्वामी जी की अवस्था अभी भी असन्तोषप्रद ही थी; अतः वे विश्रामगृह में ही रह गए। हम लोगों ने अधिकारीवर्ग से परामर्श किया कि स्वामी जी की शारीरिक अवस्था विद्यार्थियों को सन्देश देने योग्य नहीं है। अधिकारीवर्ग ने भी यह स्वीकार किया और बतलाया कि "यह कोई आवश्यक नहीं कि स्वामी जी व्याख्यान दें। स्वामी जी के दर्शनों से ही उनका सन्देश प्राप्त हो सकता है।"

निश्चय हुआ कि स्वामी जी को विश्राम करने दिया जाय। पर जब हम ठीक ५ बजे विश्वविद्यालय के 'परिषद् भवन' में पहुंचे तो हमारे आश्चर्य का पारावार न रहा। हमने देखा कि

स्वामी जी ठीक उसी समय 'परिषद् भवन' में प्रवेश कर रहे थे। अत हमारी योजना विफल हो गई।

सबके यथास्थान बैठने पर विश्वविद्यालय के उप कुलपति श्री मानवलु रामानुजम् ने वि० विद्यालय की ओर से महाराज को अभिवन्दना की और कहा—

"हमारे अतीव सौभाग्य हैं कि आज विश्व-पूजनीय महर्षि अपने चरणों की छाया में हमारे आतप्त-जीवन को सुशीतल कर रहे हैं। हमारे धन्यभाग्य हैं जो हम आज के भौतिक युग में परात्पर आध्यात्मिक-शिरोमणि का इन चर्म चक्षुओं से अवलोकन कर रहे हैं "

तदुपरान्त उन्होंने स्वामी जी की दिग्विजय के महत्वपूर्ण कार्य की प्रशंसा की। अन्तत माननीय उप-कुलपति ने प्रस्ताव किया श्री स्वामीजी व्याख्यान न दें। विश्वविद्यालय के पीठ-स्थविर (Registrar) ने प्रस्ताव का अनुमोदन किया।

किन्तु इन सब प्रस्तावों के बावजूद भी स्वामी जी ने व्याख्यान दिया , लगभग ७५ मिनट तक। विषय था 'हमारा कर्तव्य'। वे धीरे-धीरे बोल रहे थे। विद्यार्थियों ने स्वामी जी के प्रवचन को तन्मय होकर सुना। उनके हित की बात जो कही जा रही थी। शरीर के अस्वस्थ होने पर भी स्वामी जी ने धीरे धीरे अत्यन्त प्रेम से अपना सन्देश दिया और उपदेशप्रद गीत गाए। और, जब व्याख्यान समाप्त हुआ तो हमने देखा कि उनके मुखमण्डल पर रक्तवर्णिमता का सचार परिव्याप्त था।

तद्पश्चात् मंडली ने योगासनो का प्रदर्शन किया और चलचित्रो द्वारा यौगिक-मुद्राओ तथा बन्धो का दिग्दर्शन कराया।

रात के ८॥ बजने को थे। हमारा 'दिग्विजय मण्डल' परिषद्-भवन से 'पएमुख-विलास' की ओर चला; जहा अन्नमलयनगर तथा चिदम्बरम् के निवासी-महानुभावो की ओर से स्वामी जी को विजय-पत्र अर्पित किया गया। सम्मान के उत्तर मे श्री स्वामी जी ने सबको धन्यवाद दिया और उनके अनुग्रह को स्वीकार किया।

तद्पश्चात् प्रसिद्ध 'नटराज मन्दिर' की स्तम्भावलियो की सुन्दर पंक्ति के मध्य मे सहस्रो भक्तो से परिवृत्त स्वामी जी ने पूर्ण-कुम्भाभिनन्दित हो, उस पवित्र-भूमि मे पद-प्रवेश किया, जहा आदिदेव ने नाट्य-कलाधर नटराज की विभूतिमत्ता में अवतरण किया था। स्वामी जी के आते ही मन्दिर के अधिकारियों ने "चिदम्बर रहस्य' के द्वार का उत्पाटन किया तो हमे केवलमात्र दहराकाश का दृश्य दृष्टि मे आया; जिसके वक्ष भाग में दो स्वर्ण-बिल्वपत्रो द्वारा अरुन्धनी-न्यायेन दहराकाश के निर्गुण तथा अरूप-तत्वों की दीक्षा दी जाती है।

इसी पवित्र अवसर पर पाँडिचेरी से स्वामी जी के दर्शनों के लिये आये हुए योगीराज श्री शुद्धानन्द भारती जी ने हमारे महर्षि के सन्निधान मे अपने दीर्घ-जीवन के मौनव्रत को भंग किया और प्रथम वचन कहे, "श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज की जै।"

समस्त देवप्रासाद शब्दायमान् हो उठा; जयनाद की व्यापिनी ध्वनि से। इसी समय डाक्टरों ने सूचित किया कि स्वामी जी के शरीर का तापमान् १०३° डिग्री का अतिक्रमण कर रहा है। सबके हृदय प्रकम्पित हो उठे। समस्त भवन नीरव-समाधि में समधितिष्ठित हो गया।

"·········मैं श्री स्वामी जी महाराज की अस्वस्थता में उनके प्रतिनिधि की हैसियत से आप लोगों को धन्यवाद देता हूं, जो आप लोगों ने हमारे सत्संग को कृतकृत्य किया·········।" योगी श्री शुद्धानन्द भारती जी ने स्वामी जी को नहीं बोलने दिया तथा स्वयमेव अपने कर्तव्यपालन में तत्पर हो गये।

रात्रि के १२ बजने को थे।

(७)

मायावरम्

४ अक्तूबर। दिन के १० बज चुके थे। पर्जन्यमण्डल वर्षा की सूचना दे रहे थे। विद्युत्-कड़क रह-रह कर घटाटोप-अम्बर के वक्ष को चीरती हुई, हमारी 'दृष्टिकार' को चमत्कृत कर रही थी। श्री स्वामी जी चिदम्बर नगर के उपरान्त 'मायावरम्' की भूमि में प्रवेश कर रहे थे। मायावरम् में ही 'धर्मपुर सन्निधान' के शैव-मठ की जन्म भूमि है। शैवों की गुरु-परम्परा के कमल-दिवाकर, शैव-सिद्धान्त-शिरोमणि श्री सुब्रह्मण्य देशिक महाराज ने 'धर्मपुर मठ' की कीर्ति को सजीव बनाए

रखा है। विद्वत्ता में इनकी होड लगाने वाला और कोई शैव-सिद्धान्ताचार्य भारत में नहीं, यह सर्व-विदित है। परन्तु साथ-साथ यह भी कहना पड़ेगा कि लक्ष्मी की असहद-कृपा इनके चरणों में प्रणिपात करती रहती है।

प्रायः समस्त मठ स्टेशन पर स्वामी जी की अगवानी के लिए पूर्ववत सन्नद्ध था। नागस्वरम् और मृदंग ने स्वागत-गीत गाए। दो वज्र-दन्ती रथ-यात्रा के आगे-आगे प्रयाण कर रहे थे। तदुपरान्त ध्वजा, निशान, छत्र और चामरों की पंक्ति रथोत्सव को अंत-सम्पन्न कर रही थी। निस्तब्ध राजपथ पर, पनद्रुमों की छाया में, पद-पद-निःसृत वेद-ध्वनि से प्रपूरित वायु के अंक में, महर्षि का रथ प्रचलित हो रहा था। रथ का अनुसरण करती हुई योजनार्द्धव्यापिनी जनता थी, द्राविड़ी भाषा में गीत गाती हुई।

स्थान-स्थान पर भस्म चर्चित पुरवासी रथयात्रा में सम्मिलित होते जा रहे थे। मायावरम् का 'जनपालिका सभा' की ओर से मानपत्र समर्पित किया गया। दोपहर होते ही समारोह 'धर्मपुर मठ' के पुरद्वार में प्रवेश कर रहा था। विजय-पयोधि-अभिसिंचित स्वामी जी ने दिव्लोक के वैभव की भी वञ्चना करते हुए राज-संन्यासी के मठ की पुण्यगन्धा मनोरम भूमि में प्रवेश किया। धवलोत्पल से धवलित धरा ने धर्मार्य के चरणों का चुम्बन किया और मठाधिकारी ने प्रशस्तभाल हमारे स्वामी जी के साथ

राजप्रासादोपम भवन मे प्रवेश किया, जहा उनके विश्राम का अति सुन्दर आयोजन किया हुआ था।

स्वामी जी की अवस्था मठाधिपति को भी सुविदित थी। अतः स्वामी जी के निवास का प्रबन्ध प्रासादान्तर्भाग मे किया गया। यही कारण था कि कोई भी व्यक्ति स्वामी जी के विश्राम को खण्डित नहीं कर सका। मुझे भी स्मरण है कि हिमालय के भू-भाग को छोडने के उपरान्त आज ही स्वामी जी का विश्राम निर्विघ्न सम्पन्न हुआ। मनुष्य की तो बात ही क्या, पक्षियो का प्रवेश भी वहा असाध्य था। मठाधिपति के आदेश को उल्लंघन करने की शक्ति किसी मे नहीं थी, जो स्वामी जी के स्वास्थ्य के लिए वरदान-सी सिद्ध हुई।

×   ×   ×   ×

उसी दिन सायकाल के ६ बजे धर्मपुर-मठान्तर्गत प्रशस्त पंडाल रग-बिरंगो मे इठला रहा था। इसी समय देवालयो से शखध्वनि उठी। दीपको मे दामिनी दमकी। प्रासाद के अन्तर-भाग के द्वार खुल गए और हमने महासन्निधान की पवित्र-मूर्ति को सहज भाव से अपने चरणक्षेपण करते हुए, रंगमंच की ओर जाते हुए देखा; जहां स्वामी जी कृतविद्य को भी पराकाष्ठा कर, महासन्निधान के प्रति प्रणाम करते हुए, साष्टाग दडवत् कर रहे थे। महासन्निधान के जीवन मे यही प्रथम अवसर होगा, जब कि वे स्तम्भित हुए थे। वे मडलेश्वर परम्परा के अनु-

यायी थे; अतः इन्हें अवश्यमेव उनका ही अनुकरण करना पड़ता था। थोड़ा सिर हिला देना उनके सत्कार की सीमा थी। साष्टाग दंडवत् का प्रश्न तो परात्पर ही था।

स्वामी जी के इस आकस्मिक आचरण पर जनता स्तम्भित हो गई। दक्षिणी जनता थी; हाहाकार कर उठी। वह हाहाकार जनता के आश्चय का ही द्योतक था। साथ-साथ महासन्निधान के हाथ से छड़ी दूर गिर पड़ी और उन्होने झुक कर, स्वामी जी को उठाया। जनता में हलचल मची हुई थी।

अपरंच स्वामी जी के अभिनन्दन में गीत गाए गए, नाटक अभिनीत हुए और मान-पत्र समर्पित किये गए। महासन्निधान की ओर से स्वामी जी का स्वागत अपूर्व था और उसमें उनकी सच्ची भक्ति झलकती थी।

आज रात स्वामी जी को पूर्ण-विश्राम मिला।

× × × ×

६ अक्तुबर का उद्योतित प्रभात.........। गगनमंडल पर्जन्याच्छन्न था। कभी दामिनी दमकती थी तो स्मरण आता था; मानो इन्द्र का वज्र वृत्रवध का अनुष्ठान कर रहा हो। यही हमारे इतिहास का विशिष्ट मुहूर्त था, जब शैवागम और वेदान्त का सम्मिलन होने वाला था। मठान्तर्गत-देवस्थान में मठाधिपति ने नित्य-नियमानुसार देवपूजन किया। आराधनादि के पश्चात् उन्होंने प्रतिमार्चित बिल्व-पत्र की माला को स्वामी जी के

मुकुट भाग में प्रशोभित किया। शैवागम बतलाते हैं कि शिव के अनन्य भक्त—दक्षिण के प्रसिद्ध नायनार भी इसी प्रकार अपने मुकुट भाग में रुद्राक्ष माला का वहन करते थे। यह मठ भी शैव-सिद्धान्तो की जन्म-भूमि है। अतः कोई भी वेदान्ती इस शैवागम-प्रचलित-विधान को स्वीकार नहीं करेगा। परन्तु स्वामी जी इन लौकिक-शृङ्खलाओं में आबद्ध हो कहां थे? वे तो ऐहिक और आमुष्मिक-प्राचीरो के उस पार "सर्व ब्रह्ममयम् शिवमयम् विष्णुमयम्, शक्तिमयम्" के अनन्त-विस्तार में परात्पर की ओर से विश्व को उस सुन्दर, सौम्य, प्रज्ञान्वित सत्ता के प्रदेश की महिमा का सन्देश देने आए थे। वे उस परम-विज्ञानमय साम्राज्य से आये थे; जहा मनुष्य परम-शान्ति को प्राप्त होता है, जहां उसे भूख-प्यासादि क्लेशों का तथा इस प्रपंच की लीला का ज्ञान ही नहीं रहता।

दिन के बारह बजे अभूतपूर्व सम्मेलन हुआ, जब कि स्वामी जी के निवासस्थान में त्रिमूर्तियां विराजमान् थीं। श्री स्वामी जी, महासन्निधानम् और योगी श्री शुद्धानन्द जी महाराज। मठाधिपति तो स्वामी जी की महिमा के गीत गा रहे थे और श्री शुद्धानन्द भारती स्वामी जी के योग का अपूर्व-वर्णन कर रहे थे।

सायंकाल को पुनः उसी पंडाल में तीनों महर्षि समाश्रित थे। ऐसा भान होता था मानो गिरिमाला के अंकिम में त्रिमूर्ति का

साक्षात् अवतार हुआ हो; किंवा देवसभा में ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर का सम्मिलन हो रहा हो; किंवा लोकत्रयों के प्रतिनिधि मेरु-शिखर पर 'विश्व-शान्ति-परिषद्' का उद्घाटन कर रहे हों।

पंचाक्षर की महिमा का वर्णन करते हुए तीनों महर्षियों ने अपना सन्देश दिया। मायावरम् की समस्त जनता के भाग्य जागे। आज के जगत में तो एक ही महात्मा के दर्शन दुर्लभ हैं। तीनों के दर्शनों का होना उनके सौभाग्य का सूचक नहीं तो और क्या है?

रात को जब हमने विदाई ली तो मठाधिपति के नेत्र भर आए। स्वर्णजटित रुद्राक्ष भेंट करते हुए, उन्होंने स्वामी जी को गले लगाया। पुराचीन प्रथानुसारेण उपहार देते हुए उन्होंने स्वामी जी से आग्रह किया कि स्वामी जी इस उपहार को यथा-शक्ति संरक्षा करें; क्योंकि यह उन दो समकालीन ऋषियों का पारस्परिक प्रेम-प्रतीक था; जिससे विश्व का इतिहास उनके विषय में मतभेदों को स्थान न दे तथा कालान्तर में भी दो विराट्-सम्प्रदाय इस बात पर विश्वास करें कि हमारे आचार्य ने आपके आचार्य के सहवास में रह कर, उनके सम्प्रदाय का आदर ही किया था। अतः धर्मपुर सन्निधानम् के सुविधाजनक सन्निधान में महाराज का आगमन युगोत्तर-इतिहास में, शैवागम-कल्पों और वेदान्त-भाष्यों में अक्षुण्ण बना रहेगा। कभी-न-कभी कोई आचार्य इस देव-सम्मेलन की पुनरुक्ति करेगा और उस पर अपनी टीका करते हुए अवश्य कहेगा—एकं सद्विप्राः बहुधा वदन्ति।

(८)

थोडी देर मे शस्याभरण-भूषिता क्षेत्रावलिया दृगोचर हो रही थीं। समस्त भू-खण्ड हरे परिधान पहिने था। मौसमी नाले वहते हुए दिखाई दे रहे थे। दूर-दूर तक दक्षिण की तप्त भूमि जलपूरित हो चुकी थी। वृक्षो मे कुसुमाकर की मजुलता नाच रही थी तो कहीं पुष्पवल्लरियो मे सुहाग की लाली का आवेश दमक रहा था। हमारी 'टूरिस्ट कार' अपने निर्दिष्ट पथ पर निर्भीक दौडी जा रही थी।

तन्जावर

यथासमय 'टूरिस्ट कार' तन्जावर पहुँची तो हमने देखा—जन-प्रपूरित प्रकृति का सुरम्य क्षेत्र। उनको मालूम था कि स्वामी जी तन्जावर मे केवल २ घन्टे ही ठहरेंगे। अतः वे इस सीमित काल मे ही महात्मा के दर्शनो से अपने मन, कर्म और वचनो को तप पूत करने की भरसक चेष्टा कर रहे थे। उनकी भावुकता नियन्त्रणातीत ही थी। उन्हे मालूम था कि स्वामी जी अस्वस्थ हैं. वे प्रवचन की अपेक्षा भी नहीं कर रहे थे। उनको केवल एक अभीप्सा थी कि वे किसी प्रकार उस पवित्र तीर्थ के दर्शन करें।

प्लेटफार्म की सीमा का अतिक्रमण करते हुए, जन-समारोह अकथनीय गति से ऊर्मित हो रहा था। संकीर्तन-मण्डलिया भावाविष्ट होकर नाचती और गाती थीं। ताल, मृदंग, नागस्वरम्, शंख, भेरी, तुरही तथा विविध-वाद्य विजयनाद कर रहे थे।

समारोह स्थानीय 'शंकर मठ' में अवतरण कर चुका था, जहां अर्घ्य-पाद्यादि से स्वामी जी की पूजा हुई। नगर की विभिन्न संस्थाओं ने स्वामी जी को अभिनन्दन-पत्र समर्पण कर, उनकी विजय-गीतिका गाई। न जाने कितनी शताब्दियों ने दिवा-नक्षत्र को उदय तथा अस्त होते देखा—केवल आज के अभूतपूर्व दृश्य का पर्यवेक्षण करने।

तदुपरान्त: पादपूजा का श्रीगणेश हुआ। नारायणादि गुरु-परम्परा का स्मरण करते हुए, महाराज के चरणों का अभिषेक सम्पन्न हुआ तथा विश्वकुल-कमल-दिवाकर-मंडल ने गाया·······

"वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगाद्यतयः शुद्धसत्वाः।
ते ब्रह्मलोके तु परान्तकाले परामृतात्परिमुच्यन्ति सर्वे ॥"

इसी कार्य-क्रम में दो घन्टे दो क्षण के समान बीत गए। पुनः प्लेटफार्म की भूमि तन्जावर की जनता से प्राच्छादित हो गई। पावसकालीन जलधाराओं के समान उनका समुदाय था, जो नदी के रूप में सागर से मिलने जा रहा था। तूफान के समान उसकी प्रगति थी, जो विश्वात्मा के गीत गाने भूर्भुवस्सुवर्लोक के आदिमध्यान्त-विहीन साम्राज्य की ओर जा रहा था—उस अदृष्ट को देखने, अश्रुत को सुनने, अमन्ता को मानने, अज्ञात को जानने और उस अगोचर का साक्षात्कार करने।

करबद्ध वे अपने गुरुदेव को विदाई दे रहे थे, प्रणाम रहे थे, आशीर्वाद की अभियाचना कर रहे थे और कह रहे थे "पुनः दर्शन देना, देव !"

(६)

७ अक्तूबर। हम त्रिचिनापल्ली पहुँच चुके हैं। जनता हमारे आने का समाचार नहीं मिला वे सोच रहे हैं कि हमारी मण्डली निश्चित कार्यक्रम के अनुसार ८ तारी को ही त्रिचिनापल्ली पहुँचेगी। अतः वे ७ तारीख को स्टे पर नहीं आए। किन्तु कुछ भाग्यवान भी थे, जो स्वामी जी अविज्ञापित आगमन का संकेत पा चुके थे। अतः जब हम त्रि पहुँचे तो हमने स्टेशन को उन भाग्यवान् पुरुषों समृद्ध देखा।

त्रिचिनापल्ली

कुछ ही देर में—त्रिची के रास्तों पर जाते हुए स्वामी जी पूर्व-स्मृतियां लहलहा उठीं। इसी भूमि में हमारे दिग्विजयी आज से कई साल पूर्व कुप्पू स्वामी के रूप में, एक नवयुवक इन्हीं रास्तों पर जाते देखा था। यही वे मार्ग थे जिन पर साल पहिले कुप्पू स्वामी दौड़ते हुए, विद्यालय की ओर जाते और आज यही वे मार्ग हैं, जिन पर अपनी विजय-पत लहराते हुए, स्वामी शिवानन्द जी जा रहे हैं।

× × × ×

८ अक्तुबर। त्रिचिनापल्ली में स्वामी जी 'डबल माल स्ट्रीट' में श्री नटेश अय्यर के यहां ठहरे थे। यह समस्त पत्तन का व्यावसायिक केन्द्र है। कोई यहा हँसता है तो कोई टेलीफोन के पास हाथ धरे, बाजार-भाव के चढ़ने की आशा मे बैठा है। आशा, दुराशा, निराशा और प्रतीक्षा के बल, चुरुट मुंह मे दाबे, पान का बीड़ा ठोसे, अर्द्ध-स्वच्छ-परिधान पहिने, बाबा आदम के जमाने की चप्पलो के सहारे मानव यहाँ चलता है। पर आज दृश्य-परिवर्त्तन हो गया। व्यावसायिक-केन्द्र उषा के उदय होने से पूर्व ही झांझ और करताल और मजीरो के रव से तथा पतितपावन भगवन्नाम के संकीर्तन से दमक उठा। जब आदित्यदुहिता उषा अन्धकार का निवारण करने और पुण्य-प्रकाश का यश दान देने, अपने शुभ्रालंकृत अंगों में बल खाती हुई आई तो उसने अपने नीरव-वातावरण मे महा-सुयश के गीतों को जागते देखा।

लगभग एक घन्टे तक संकीर्त्तन होता रहा। तद्पश्चात् अट्टालिका की अटारी से उदित-प्रकाश की छविमय-किरणों की धारा से परिमार्जित, अव्यावृत स्वामी जी ने नगरवासियों को निष्कृततया दर्शन दिए।

६ बज चुके थे। योजनव्यापिनी रथयात्रा त्रिची के विशाल मार्गों पर, रामनाम के अबीर-गुलाल से होली मनाती हुई, हरिनाम की पारसमणि से सब को स्वर्णिम करती, नगर के विशाल-अंक

में आनन्दोन्मत्त हो, कीर्तन कर रही थी। जिसने भी कीर्तन गाया, वही रोने लगा और कुछ न कर सका। वह देखो, वे नाच रहे हैं। अरे! तू स्त्री नहीं, अमर आत्मा है। भूल अपने को; गा और नाच। तू भी नवयुवती नहीं, लज्जित न हो! मस्त होकर गाले। अरे बुड्ढे! तू भी आजा, क्यों द्वार की ओट से झांकता है—वह लकड़ी है; उसके बल उतर। तुम पुण्यात्मा हो बालको! गाओ, जी भर कर गाओ; जब तक प्रपंचात्मक-वीणा टूट न पड़े। ओ इक्के वाले, आता क्यों नहीं? पुनः यह अमूल्य अवसर हाथ नहीं आएगा। हे एकवस्त्रे! किधर जा रही है? कपड़े पीछे बदल लेना; उसके लिए तेरे जीवन में और भी कई सम्वत्सर आयेंगे। परन्तु कभी नहीं आएगा यह दिन, वह समय, यह मुहूर्त, यह निमेष और यह पल।

रथोत्सव में हाथी थे, घोड़े थे, नन्दीगण थे, इक्के थे, तांगे थे, फिटन भी थे तो रिक्शे भी थे और कारें भी थीं, मोटरें थीं, साइकिलें थीं। पीछे थी लहराती हुई जनता, फहराती हुई जनता, उन्मत्त जनता, विश्व विस्मृत जनता ······ कुमारियां, नवोढ़ायें, युवतियां, गृहिणियां, गर्भिणी, एकवस्त्रा, असिन्दूरा, वृद्धायें और बालक; युवक, विद्यार्थीगण, मजदूर, व्यवसायी, आफीसर, अन्धे और बहरे भी। असंख्य की संख्या में देवासोहिणियां प्रयाण पर थीं। स्थान-स्थान पर स्वामी जी क्रमशः १०८ बार पूर्णकुम्भ-समर्चित हुए, जो किसी भी दिग्विजयी की सफलता का द्योतक हो सकता है। आदिगुरु शंकराचार्य के उपरान्त स्वामी जी को ही

तो दिग्विजयी माना गया था; जबकि ६ सितम्बर को हिमगिरि-माला के प्रदेशों से दिग्विजयार्थ प्रयाण कर, ८ अक्तूबर को त्रिची में, वे १०८ बार पूर्ण-कुम्भों से दिग्विजयी के रूप में समर्चित, समभिवन्दित और सम्मानित हुए थे।

आज समस्त त्रिचिनापल्ली का जनपद महत्तपोल्लासोल्लसित था। दोपहर की तप्त-भूमि पर जनता नंगे पांव श्री स्वामी जी के दर्शनों को जा रही थी। मुख्यद्वार के समक्ष अगणित-भक्त जनों का समूह किसी अरण्यस्थित विद्रुपावनी की नाईं लहरा रहा था। मुख्यद्वार खुला तो एक के बाद दूसरा और इसी प्रकार सहस्रों दर्शनार्थी विशाल भवन में प्रवेश करते गए; जहां आत्मतीर्थ के पुण्यदेव संपरिविराजित थे—सुखासन में चिन्मुद्रा के चित्स्वरूप। फल और फूलों की उनके शरीर पर वर्षा हो रही थी। उनके चरणों पर सहस्रों के प्रेमपुष्प तथा स्नेहफल विश्राम पाते थे।

पादपूजा के अनन्तर 'सावित्री कन्या विद्यापीठ' में छात्राओं को स्वामी जी के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उन्होंने अभिनन्दन में गीत गाए और सम्मान पत्र भेंट किया। स्वामी जी ने विद्यापीठ की अध्यापिकाओं और कन्याओं को आशीर्वाद दिया तथा 'नेशनल कालेज' के शिक्षण-केन्द्र की ओर प्रस्थान किया, जहां अनुमानतः लक्षाधिक- जनता उनकी प्रतीक्षा में थी।

त्रिची की विभिन्न संस्थाओं ने इसी अवसर पर स्वामी जी

के सम्मान में अभिनन्दन-पत्र भेंट किए । कई अभिनन्दन-पत्र तो पढ़े भी नहीं जा सके, क्योंकि समय कम था, तदुपरि अन्तरिक्ष में देवासुर-संग्राम प्रारम्भ हो गया था।

जिस समय स्वामी जी प्रवचन-मंडप की ओर आरोहित हुए, बिजली चमक रही थी, मेघ गरज रहे थे, जल के छींटे तीव्र-वेग से भू-पतित हो रहे थे। कुछ ही क्षणों में जब वर्षा का वेग तीव्र हुआ तो स्वामी जी के ज्ञानामृत की वर्षा का प्रवाह भी तीव्र से तीव्रतर और तीव्रतम होता गया । पुरवासी अचल थे और अडग थे, नीरव थे, निःशब्द थे और अवाक् थे। मां की गोद में बच्चा भीग रहा था तो रंग-बिरंगे वस्त्र पहिने २० वीं शती का जनमंडल अपने-अपने शरीर और परिधान की सुध-बुध भूले, वर्षा की तीव्र-धारा की वंचना कर, सुन रहा था; वेदों के गीतों की सुबोध गाथा, शास्त्रों का सुगम अर्थ और जीवन-तत्व का मनोहर-विवेचन।

वर्षा थमती ही नहीं थी; अतः सम्मेलन विसर्जित हुआ। समस्त जन-मंडल अपने अभिषिक्त शरीरों को लिए, अपनी-अपनी राह पर चल रहा था; अपने-अपने घरों की ओर— जहां वह अपने परिवार को आज की सुनी और अनुभूत आत्म-कहानी सुनाएगा—मुक्तकण्ठ हो कर, मुक्त-हृदय और आनन्द-गद्गद् हो कर।

× × × ×

रात्रि के ८ बजे 'गोल्डन रॉक' नामक स्थान मे, 'दिव्य जीवन मण्डल' की स्थानीय शाखा के अवधान में स्वामी जी का भाषण और संकीर्तन हुआ। श्री स्वामी जी ने आश्रम के कार्य की मुक्तकंठ से प्रशंसा की तथा तन्छात्रा-संचालक श्री मुनीस्वामी नायडू को इस दिव्य-कार्य की सफलता के लिए आशीर्वाद दिया।

मौसम अनुकूल था। अत स्वामी जी कई भक्तों के घरो को पवित्र करते हुए, विश्राम स्थल मे लौट आए।

दूसरे दिन ६ अक्टूबर। आज 'शिवानन्द दिग्विजय यात्रा' का प्रथम मासान्त है। ब्रह्म मुहूर्त से ही दर्शनार्थियों का ताँता लग गया। सभी को दर्शन देकर स्वामी जी ने "श्री उर्शिपाचलम् चेट्टियार अनाथालय" मे प्रवेश किया। भक्तों ने अत्यन्त प्रेम मे पादपूजा की। ६ बजे तक दर्शन, पादपूजा और मन्त्र-दीक्षा का क्रम चलता रहा।

दिन के पौने ग्यारह बजे स्वामी जी ने सभी भक्तो से विदाई ली और श्री रामेश्वर की ओर प्रस्थान किया।

(१०)

रामेश्वरम्

लगभग ११ बजे स्वामी जी 'पुदुकोटै' पहुंचे। नगर मे स्वामी जी के दर्शनो के लिए विराट् आयोजन किया हुआ था। स्वामी जी का रथ जब जनपद के रास्तो पर चल रहा था तो दोनो ओर अटारियों पर से फूल बरस रहे थे। मार्ग के दोनों

ओर पंक्तिबद्ध और पाणिबद्ध-जनमंडल स्वामी जी के आशीर्वाद की याचना कर रहा था। इतनी जनता की आशा करना किसी के लिए स्वप्न में भी असम्भव हो सकता है।' सचमुच स्वामी जी जन-जन के हृदय-सम्राट् थे।

सायंकाल के ३॥ बजे अनुमानतः ८०. सहस्र जनता को स्वामी जी ने अट्टालिका के उपरिभाग से दर्शन दिए। ४॥ बजे 'दिव्य जीवन मण्डल' की स्थानीय शाखा के सन्निधान में स्वामी जी ने आयोजित सम्मेलन का उद्घाटन किया और अपना आशीर्वाद दिया।

'जनपालिका सभा' की ओर से स्वामी जी को सार्वजनिक-सम्मान प्राप्त हुआ। अपने अभिवचन प्रकट करते हुए स्वामी जी ने जनता के योग, ऐश्वर्य, क्षेम, तुष्टि, पुष्टि, भक्ति और मुक्ति के लिए ईश्वर से प्रार्थना की और रामेश्वर क्षेत्र की ओर प्रस्थान किया।

रात्रि के गहनतम अन्धकार में भी 'कनड़कातान्' और 'चेट्टिनाड' की भावाभिलषिता-जनता को दर्शन देते हुए, उनको पुण्य-यशोमय आत्मपद पर दीक्षित कर, अपनी विजय-वैजयन्ती को भूमध्य-रेखा के पथ पर आकृष्टमान् करते हुए, स्वामी जी ने पाम्बन सेतु के नीचे लहरायमान् उच्छल- तरंगी सलिलेश के दर्शन किए और अपना मौन प्रणाम समभिवन्दित किया।

अब हम लोग दो सागरों के मध्य 'मण्डपम् शिवगगा' आदि भारत के अन्तिम-क्षेत्रभाग पर यात्रा कर रहे थे। एक ओर पूर्वीय सागर का हरा जल और दूसरी ओर अरब सागर का सुनील दृश्य। देखते ही किसका हृदय गद्गद् नहीं हो जायगा? बारम्बार प्रणाम करने पर भी जो नहीं अघाता था। सबका मन बाँसों उछल रहा था, क्योंकि पवित्र तीर्थ रामेश्वरम् के गोपुर की अस्पष्ट-छाया धूमिल क्षितिज की गोद से झांक रही थी।

× × × ×

१० अक्तुबर। हम रामेश्वरम् पहुँच चुके थे। सायंकाल के ५ बजते ही रामेश्वर क्षेत्र की जनता महात्मा के चरण छूने आई थी। देवस्थान के पुरोहितवर्ग ने जयमाला अर्पण कर, हिमालय के ऋषि का स्वागत किया।

सिन्धु-तटवर्ती रामेश्वर का सुरम्य क्षेत्र अपने माहात्म्य के लिए अद्वैत रहा है। भारत के प्रायः सभी नरेशों, सभी महात्माओं और सभी जातियो के शीश इस एक क्षेत्र के सम्मुख झुकते आए हैं। सभी चक्रवर्तियो के मणि-मुकुट यहीं महादेव के चरणो के आशीर्वाद से विश्वोज्ज्वल होते आए हैं। त्रेतायुग मे श्री रामचन्द्र जी समुद्रतरण करने तथा मा जानकी का उद्धार करने, जब इस सुरम्य भूमि पर आए तो उन्होंने स्वयं इस तीर्थ की प्रशंसा कर, इसे भारतीयो के हृदय को

सनातन-स्मृति का वरदान दिया था। तब से रामेश्वर क्षेत्र की महिमा केवलमात्र शैवों द्वारा ही मान्य नहीं, प्रत्युत रामभक्तों द्वारा भी उसी मात्रा में मान्य है। यह शिवलिंग धर्मस्थापना का प्रतीक और संस्कृति की भूमिका का अभिव्यंजन है। इसके व्याख्यान को हुए दो युग बीत चुके हैं; परन्तु रामेश्वर के लोक-संतारक लिंग की महिमा अभी भी चिरन्तन है। जिनमें विश्वास है, श्रद्धा है, अकैतव भक्ति है, परिमार्जित ज्ञान है, उनको रामेश्वर के गोपुर के दर्शन करने से ही परम शीतलता का अनुभव होता है। उनके क्लेश छिन्न हो जाते हैं और उन्हें तापत्रयों से मुक्ति भी मिलती है।

[११]

११ अक्तूबर। उस दिन महालय अमावास्या का पर्व था। देश के कोने-कोने से दर्शनार्थी आए हुए थे। प्रातःकाल के अरुण-रश्मि ने गोपुर को प्रकाशित किया। वीचिनिलय खिल उठा। रामेश्वर क्षेत्र में आज चहल-पहल मची हुई थी। रंग-बिरंगे स्वरूप में रथयात्रा देवस्थान की ओर अग्रसर हो रही थी। हाथी के ऊपर ध्वजायें फहरा रही थीं। स्वर्ण-जटित पालकी पर गंगाजल-संपूरित रजत-कलश प्रतिष्ठित था और थे यात्रादि में संदृश्यमान समाभिवन्दनीय महर्षि। उनके पीछे भक्तगण थे; शिवनाम संकीर्तन करते, तालियां बजाते और धूल उड़ाते हुए।

विशाल प्रवेशद्वार के गर्भ से हिमशैल का तीर्थमयी पवित्रता का प्रवेश हुआ। सहस्रस्तम्भों में मानो सजीवता का संचार हुआ।

देवताओं की आँखें खिल उठीं। नायनारों के अधरों में प्रसन्नता की मुस्कान थी। साक्षी विनायक आनन्दातिरेक थे। और सभी ने देखा स्वामी जी को; जो महामहिम वर्चस्व-तेजपुंजकर और स्वर्णशरीर के आलोक के समान गर्भगृह में प्रवेश कर रहे थे।

"बम् भोले ... हर हर महादेव" समस्त देवस्थान प्रतिनिनादित हो गया। किसी ने कहा, "जानकी-विनस्मरद् राम राम" गोपुर के शिखर को प्रतिध्वनित करती हुई विजयलहरी जागी। बस फिर क्या था, रुद्रिपाठ म गर्भगृह दमक उठा। महादेव का अभिषेक हो रहा था—पवित्र गंगोत्तरीय जल से। अनुवाक-पर-अनुवाक उच्चरित हो रहे थे। पूजकों के शरीरों से स्वेद-धारा की धारें प्रवाहित थीं। विश्व की एकता के सूत्र को परिपुष्ट बनाते, वेदोक्त 'चमक सूक्त' का पाठ हुआ और अर्चना हुई। स्वामी जी ने स्वयं १०८ बार 'स्वर्ण-विल्व के १०८ पत्रों' से श्री रामलिंगेश्वर का समर्चन किया। जयजयकार से स्तम्भ वांग्मय हो उठे।

× × × ×

स्वामी जी! आज आपने दिग्विजय का प्रथम अध्याय पूर्ण किया है। आपने विश्व की भावी-संस्कृति, एकता और उसके विकास के लिए पर्याप्त साधन जुटा दिए हैं। भारत तो आपका ऋणी है ही, समस्त विश्व भी आपको दिग्विजय के ऋण से उऋण तभी हो सकेगा,

जब वह आपके कहे मार्ग पर चल कर, अपने देश, अपने साम्राज्य और अपने घर मे अपनी आत्मा का साक्षात्कार कर लेगा । आज आप द्राविड़ी भूमि की अन्तिम-सीमा तक रामनाम के आदर्श को जाज्वल्यमान् कर, चिरन्तन और सनातन कर, उदधि-प्रक्षालिता स्वर्ण-भूमि लंका के लिए प्रस्थान कर रहे हैं—ठीक दो युगों के बाद; धर्म-रूपिणी सीता का उद्धार करने, भक्ति और प्रेमरूपिणी वैदेही (अशरीरी) को बन्धन-विरहित करने, मानव-चेतना की परात्परता को अन्ध-पदार्थवाद-रूप बहुमुखी रावण से मुक्त करने तथा असंस्कृत भौतिकवाद की जड़ता के असुर-सैन्य का संहार करने । आपके चरणों में बारम्बार प्रणाम !

ध्यान करने से आपकी विचार-शक्ति पवित्र होगी। *आपकी विचार-शक्ति में शक्ति आएगी; आपका निश्चय* सदा पवित्र और आदर्श ही होगा । आपकी भावनायें ही कालान्तर मे आपके जीवन का निर्माण कर पाएँगी। ईश्वर पर ही ध्यान इसलिए किया जाता है कि परमात्मा के अतिरिक्त किसी को भी सत्य-सत्ता नहीं और उनसे इतर और कोई पवित्र, आदर्श और दिव्य-चैतन्य नहीं । अनन्त, पूर्ण, चिरन्तन परमात्मा पर ध्यान करोगे, तो तुम भी अनन्त, चिरन्तन और परिपूर्ण बन सकोगे ।

शिवानन्द दिग्विजय

प्रथम विजय

लंका द्वीप में

सिन्धु-तरण

श्री रामचन्द्र जी ने 'रामेश्वर लिंग' की स्थापना की और उसकी पूजा कर सेतुबन्ध का संयोजन किया। उसी आदर्श की पुनरावृत्ति कर स्वामी जी ने भी दो युगों के पश्चात् सिन्धु-तरण के लिए 'धनुषकोटि सेतुबन्ध' की ओर प्रस्थान किया।

जलपोत उनकी प्रतीक्षा में तटस्थ था। ११ अक्तुबर को दिन के ३॥ बजे 'गोश्चेन' नामक जलपोत पर से भारत के गौरव ने तटस्थ भारतीयों से विदाई ली। तट पर से भारतीयों ने मंगल मनाया; संगीत की लहर उठी—

"जनगण मंगलदायक जय हे भारत भाग्य विधाता"

और उन्होंने प्रणाम किया। विजय के मंगल-स्वरूप उनके नेत्रों से जल वह निकला। जलपोत का लंगर खुला। पौने चार बजे ऋषिप्रवर ने सर्पाकार लहराते हुए, भारतीय तट के दर्शन किए, जो जलपोत के तीव्र-वेग के कारण अदृश्य होता जा रहा था। तरंगों को चीरता हुआ जलपोत 'तलैमनार पियर' की सीमा में प्रविष्ट हो रहा था। रात के ८॥ बजे हमने लंका की भूमि पर पदार्पण किया।

'तलैमनार सेतुबन्ध' सजग था। जलपोत से ही हमने तीरवर्ती लंकानिवासी नागरिकों की आकृतियों का अवलोकन किया। जलपोत के तटस्थ होते ही 'स्वामी शिवानन्द जी महाराज की जै' के जयगीत गाते हुए लंकावासियों ने दिग्विजयी का स्वागत किया। 'सीलोन गवर्नमेन्ट रेलवेज़' के जनरल मैनेजर श्री कनक सभय महोदय स्वामी जी की यात्रा-विषयक सुविधाओं का आयोजन करने आए थे। सहस्रों कण्ठों से लंका की आत्मा पुकार रही थी—"इरोहरा!"

रात के ८ बजे जनरल मैनेजर द्वारा व्यवस्थित 'सैलून' से स्वामी जी लंका की राजधानी कोलम्बो की ओर समण्डल

अग्रसर हुए। जनमंडल-संपूरित स्टेशनों को पवित्र करती हमारी तीनों सैलूनें लंका द्वीप की सिन्धु-चालिता भूमि में प्रविष्ट होती जा रही थीं। एकाध मिनट भी गाड़ी ठहरती तो जन-समूह उमड़ा हुआ आ जाता। भारत के उत्तरावर्त्तीय महर्षि की ख्याति से परिचित, लंका के भक्तजन आधी रात में भी स्टेशनों पर कीर्त्तन करते हुए, स्वामी जी के दर्शनों की प्रतीक्षा में खड़े थे। जनरल मैनेजर की आज्ञा के अनुसार गाड़ी तीव्रगत्या केन्द्र-पर केन्द्रों का अतिक्रमण करती, नारियल की कतारों और रबड़ के वृक्षों की चैत्रावलियों को दिग्विजयी का सन्देश सुनाती, सुदूर के ग्रामों को सजग करती हुई, प्रातःकाल ८ बजे कोलम्बो दुर्ग के स्टेशन पर आ धमकी।

[२]

कोलम्बो

'स्वामी शिवानन्द जी महाराज की जै' से संकल्लोलित कोलम्बो दुर्ग का स्टेशन अद्वितीय वेष में सजा हुआ था। जनसमाज में अपूर्व आनन्द और अमित उत्साह का अमृत-सागर लहरा रहा था। लंका राज्यस्थ-विदेशमन्त्री माननीय श्रीयुत कान्तीय वैद्यनाथन्, लंकानुगत 'दिग्विजय मण्डल' के संचालक श्री के० रामचन्द्रन तथा लंका के नगरशासक श्री कुमार रत्नम् महोदय स्वामी जी की अगवानी के लिए सर्वप्रथम थे। लगभग ८० सहस्र जनता रेलवे प्लेटफार्म की सीमा के अन्दर ही नंगे सिर और नंगे पांव थी। सारा प्लेटफार्म आज ही सुन्दर देवालय के रूप में सजा

था। माननीय नगरशासक ने कहा, "लंका के इतिहास में कोलम्बो फोर्ट का स्टेशन अपनी स्टेशन-संज्ञा को किनारे रख, आज ही प्रथम बार इस सुन्दर और पवित्र वेष में सजा है।"

जहां तक दृष्टि जाती थी, पुष्प ही पुष्प दृष्टि आते थे। विजय तोरणों के ही दर्शन होते थे। विजय-ध्वजाएँ फहरा रही थीं और सहस्रों नेत्र अपलक हो, आनन्द-स्वरूप ऋषि को निहार रहे थे। नेत्रों में याचना थी, "क्या आप हमें इस भव-संग्राम में विजयी होने का वरदान देंगे? क्या आप हमको आन्तरिक असुरों के संहार की शक्ति देंगे?"

स्वामी जी स्टेशन से बाहर जा रहे थे। दोनों ओर योजनान्त-व्याप्त मानवमाला प्रसरित थी। नगरशासक के साथ-साथ स्वामी जी ने श्रीमती शिवानन्दम् तन्मया के नवीन-गृह को अपने समावेश से पवित्र किया।

दिन के ठीक तीन बजे स्वामी जी 'सार्वजनिक भवन' में उतरे ही थे कि कोलम्बो नगर के युवक शासक माननीय श्रीयुत् डा० कुमार रत्नम् महोदय ने जनता की ओर से स्वामी जी का अभिनन्दन किया तथा स्वामी जी के मंचावस्थित होते ही घुटने टेक कर, सप्रेम प्रणाम किया। इसी अवसर पर 'परिषद् भवन' में लंका के प्रधान मन्त्री महामाननीय श्रीयुत सेनानायक जी तथा काण्डी और कुरुनेगल के शासक-द्वय श्रीयुत् ऐफ० ऐल० सेनानायक तथा श्रीयुत् पियादास से स्वामी जी का सम्मिलन

'परिषद् भवन' में इस पवित्र और युगानुस्मरणीय अवसर पर, लंका के प्रधान मन्त्री तथा दो अन्य प्रान्तों के शासकों की उपस्थिति में, कोलम्बो के शासक श्री डा० कुमार रत्नम् ने जनता की ओर से स्वामी जी के आशीर्वाद की अभियाचना की; ततः परिषद्-स्वीकृत 'रजताभिनन्दन पत्र' को चरणानुविन्दित करते हुए, १२ अक्तुबर को दिन के चार बज कर ३५ मिनट पर स्वामी जी का सार्वजनिक-सम्मान प्रतिपादित किया। इस अवसर पर 'वैदेशिक विभाग से अमरीकन दूतावास के प्रतिनिधि' श्रीयुत् पौलद्या तथा लंकानुगत 'मुक्ति सेनादल' के अध्यक्ष भी उपस्थित थे।

× × × ×

५ बजते ही स्वामी जी विश्वविद्यालय में पधारे और ४२ मिनट तक प्रवचन दिया। सर्वत्र शान्ति का साम्राज्य व्याप्त था। प्रवचन के उपरान्त पुनः 'सार्वजनिक भवन' से निमन्त्रण आया कि लंका-राज्यस्थ विदेशमन्त्री माननीय श्रीयुत् कान्तीय वैद्यनाथन के तत्वावधान में स्वामी जी के सार्वजनिक-सम्मान के कार्यक्रम को 'सीलोन रेडियो' से प्रसारित किया जाएगा। अतः सायंकाल ६ से ७ बजे तक सार्वजनिक सभा का कार्यक्रम 'रेडियो सीलोन' से प्रसारित किया गया। केन्द्रों-केन्द्रों में सहस्रों व्यक्ति प्रसारित-जनसम्मान के कार्यक्रम तथा स्वामी जी के उपदेशों को तन्मय होकर सुन रहे थे।

Chiruketheeswaram

Sri Swami Sivananda.

Revered Swami,

On behalf of the Hindus of Ceylon, we beg to express to Your Holiness our deep debt of gratitude for having graciously consented

to pay a brief visit to Colombo in spite of the numerous calls on your precious time and to offer you a hearty welcome to this fair isle Lanka hallowed by the footprints of ... Sri Rama and Gautama Buddha.

On this sacred and solemn occasion we recall to our minds another great day in recent times rendered memorable in the annals of Hinduism in Ceylon by the visit of Swami Vivekananda on his return home from his Mission in America and Europe as the hero of the Chicago Parliament of Religions

After half a century, we are again
privileged indeed to receive you from
the Himalayas, as the Leader of a
new era of Spiritual revival.

We have watched with joy, awe
and reverence the dazzling light of
your Self-realisation, the great
scholarship disclosed in your writings
and the success of your noble Mission
to renew and revivify in the life of
the common man all over the world,
irrespective of race, colour, caste or
creed, the Eternal Truths of Existence
enshrined in our scriptures.

We humbly seek for all

the inhabitants of this Island, the
benefits of your blessing the right
spiritual knowledge to enable us to
live in harmony with one another
and your spiritual guidance in
our journey towards Life Divine and
that Peace which passeth understanding.

We remain Revered Swami,

Yours Sincerely

[signature] Chairman

[signature] Secretary,

For and on behalf of the Ceylon Reception
Committee of Sri Sivananda Yatara Mandali

लंका की कलाकृति को उद्धृत करते हुए, सुकोमल और परिष्कृत ताड़ के पत्रों पर प्राचीन लिपि के अनुसार सम्मान-सूचक सुन्दर अक्षरों को अंकित कर, माननीय श्रीयुत् के० वैद्यनाथन् ने वह सम्मान-पत्र स्वामी जी के चरणों में भेंट किया।

(३)

१३ अक्तुबर। भगवान् दिनमाली के जागते ही श्रीमती शिवानन्दम् नम्बया के निवास-गृह में

लंका विजय

स्वामी जी की पादपूजा का कार्यक्रम समारम्भ हुआ। जन-साधारण के अतिरिक्त प्रायः सभी राज्याधिकारियों ने भाग लिया। पूर्वकथित राजवर्ग के अतिरिक्त 'लंका विश्वविद्यालय' के महामहोपाध्याय श्री रत्नसूर्य और उनकी विदेशी पत्नी श्रीमती रत्नसूर्या जी ने इस महोत्सवमय सु-अवसर पर अपने हाथों स्वामी जी के चरणों में पुष्प चढ़ाए और स्नेहाभिरंजित प्रणाम किया।

पादपूजा के अनन्तर स्वामी जी 'केलेनिया बुद्ध विहार' के दर्शनों को गए। विहार में वहां के राजपुरोहित स्वामी जी के सम्मान में प्रवेशद्वार पर खड़े थे। लंका के न्यायमन्त्री माननीय ऐल० ऐ० राजपक्ष महोदय ने श्री स्वामी जी को विहार के दर्शन कराए। कीर्तन करते हुए, हमारे स्वामी जी ने महासम्बुद्ध-बुद्ध की लंका-विजय के स्तूपाकार विशाल-स्मारक

के दर्शन किए और यह ज्ञात किया कि रावण के संहार के उपरान्त श्री रामचन्द्र जी ने यहीं विभीषण का राज्याभिषेक सम्पन्न किया था।

दिन के १ बजे श्री स्वामी जी श्रीमती शिवानन्दम् तम्बया के निवास-गृह में आए, जहां लंका के सम्भ्रान्त-नागरिकों ने उस दिन के भोज में स्वामी जी के साथ योग दिया। राजस्वार्थविभाग के सचालक श्रीयुत् आलवार पिल्लय् भी उपस्थित थे।

सायंकाल के ६ बजे 'विवेकानन्द सोसाइटी' की भूमि में, लंका का अनुश्रुतपूर्व जन-समूह संगठित हो रहा था। दैववशात् जो लोग अभी तक श्री स्वामी जी के दर्शनों को प्राप्त नहीं किए थे, उन्होंने भी इस सगठन में सम्मिलित होने का अवसर नहीं जाने दिया। जिन्होंने स्वामी जी के दर्शनो का आनन्द प्राप्त कर लिया था, वे भी पुन- अमृत बँटने के अवसर पर उसका स्वाद पाने के लिए न चूके। तद्फलतः दो लाख जनता 'विवेकानन्द सोसाइटी' की सीमा के अन्दर और बाहर लहरा रही थी। राजस्वार्थविभाग के संचालक श्रीयुत आलवार पिल्लय् ने स्वामी जी का स्वागत किया। दिग्विजय मंडल के स्थानीय सचालक श्री के० रामचन्द्र जी की दो कन्याओं ने स्वामी जी की महामहिमाशालिनी विरुदावलि के गीत गाए।

नगरपालों के भीष्म-नियन्त्रण की भी अवहेलना कर, स्वामी जी के चरणस्पर्श करने, दो लाख जनता मंच की ओर अग्रसर

हो रही थी। उसके प्रकाण्ड-वेग के आगे नगरपालों के कटिबद्ध-प्रयास भी धरती का चुम्बन कर रहे थे। किन्तु रंगमंच पर संन्यासी की मूर्ति यथावत् बैठी थी। कुछ देर तक सभी किंकर्तव्यमूढ़ हो गए। अन्ततः सभापति ने खड़े हो कर गर्जना की 'हरोहरा;' लाखों कण्ठों से लंका की आत्मा ने उसका साथ दिया 'हरोहरा' और प्रबल प्रवाह स्तम्भित हो गया। दो मिनट तक वह अपूर्व जन-संगठन आंखें बन्द किए ध्यान में समाश्रित रहा, जिसके सामने विश्व के महर्षि का उज्ज्वल प्रकाश था। हमने जाना कि आज भी पूर्व की जनता में संन्यासियों और महात्माओं के प्रति वैदिक-युगकालीन श्रद्धा और भक्ति अक्षुण्ण है। हमें एक आश्वासन तो मिला कि पूर्व के देशों से, जो हमारे भारत के भाई-बन्धु हैं, धर्म और धार्मिकता कभी अस्त नहीं हो सकती। उस के चिरन्तन-जीवन के लिए, जिन्होंने बलिदान दिया है, वे विश्व के कलंकित युगों में भी संपूजनीय ही रहेंगे और उस पूजा के प्रतिफल में वे कलंक की परिमार्जना करेंगे तथा उसका संपरिष्करण कर, उसे नव-संस्करण में दीक्षित भी करेंगे ही।

× × × ×

अपने दो दिनों की स्मृति लंका के पुराचीन अङ्क पर अमिट बना कर, रात्रि के ७॥ बजे स्वामी जी ने पुनः भारत की ओर प्रत्यागमन किया। आज से दो दिन पहिले, जिनमें अद्भुत उल्लास था, वे ही आज आंसू बहा रहे थे। जहां पहिले दिन

'हरोहरा' की गर्ज्जना से लोकमण्डल कम्पित होते थे, वहां आज क्षीण-शब्दाकृत-सिसकियां वायुमण्डल में कुछ कह रही थीं। अधिकारिवर्ग ने अपनत्व त्याग कर, उस नीरवता में योग दिया! रेलवे स्टेशन में एक लाख से अधिक जनता होने पर भी शान्ति का साम्राज्य व्याप्त था।

क्रमशः रेलगाड़ी चली तो अपने उद्रेकों को नियन्त्रित रखते हुए, जनमण्डल पुकार उठा, 'हरोहरा'। सैलून के विशाल द्वार से स्वामी जी ने प्रत्युत्तर दिया, 'हरोहरा' और द्रुत-गति से प्रचालित चक्रों ने भी कहा, 'हरोहरा'। इसी पवित्र मन्त्र का जप करती, सारी रात विभीषिकामय निशा के आंचलों में खेलती-कूदती हमारी रेलगाड़ी १४ अक्तुबर को प्रातःकाल 'तलैमनार' में पुनः आ धमकी और तत्क्षण ही तटस्थ-जलपोत द्वारा श्री स्वामी जी समण्डल भारत आगए।

परम सुखद चलि त्रिविध बयारी। सागर सर सरि निर्मल वारी॥
सगुन होहिं सुन्दर चहुँ पासा। मन प्रसन्न निर्मल नभ आसा॥

शिवानन्द दिग्विजय

सप्तम विजय

पुनः भारत में

पुनः हम धनुषकोटि में आ गए। १४ अक्तुबर को दिन के सवा नौ बजे हमने भारत-भूमि पर पदार्पण किया। उसी दिन सायंकाल के समय हमारी दिग्विजयवाहिनी ने ६॥ बजे मदुरा की ओर प्रस्थान किया।

× × × ×

१४ अक्तुबर। प्रातःकाल के चार बजे हमने विजय-वाहिनी के चारों ओर मंगल-गीत गाते हुए भक्तों के आने का आभास पाया। डा० सुब्रह्मण्यम् तथा मां जयलक्ष्मी ने नगर के सम्भ्रान्त सज्जनों तथा उच्च-कोटि के ऋत्विकों के साथ स्वामी जी के स्वागत का आयोजन किया हुआ था। वेद-विधानानुकूल स्वामी जी का अभिवादन सम्पन्न हुआ।

मद्रपुरी

विधिवत् अभिनन्दन के उपरान्त मंगल बाजे बजे; डंके पर चोट पड़ते ही स्वर्णवेष्टित दो वज्र-दन्तियों ने नागस्वरम् तथा मृदंग बजाते हुए मंगल-चारणों का अनुसरण किया। सप्त-श्वेताश्वसमायुक्त चतुश्चक्रीय रथ पर दिग्विजयी स्वामी जी समासीन थे।

रथयात्रा का वह समारोह योजन-त्रय मार्ग पर लाखों पुरवासियों को स्वामी जी के दर्शनों का भागी बनाता हुआ, लाखों की संख्या में विराट् के दर्शन करता हुआ, फूलों से आवर्णित मार्ग पर, अट्टालिकाओं के नीचे राजपथ पर, संकीर्तन-मण्डलियों के समुदाय से निःसृत हुए हरिनाम के अमृत-रस में ओत-प्रोत हो, ८॥ बजे 'सौराष्ट्र विद्यापीठ' के प्रकाण्ड-प्रांगण में प्रविष्ट हुआ; जहां अनुमानतः ७० सहस्र भक्त नर-नारियों ने दिगन्त-व्यापिनी शुभ्र कीर्ति के अक्षुण्ण भोक्ता—श्री स्वामी जी के दर्शन संप्राप्त किए तथा देवता का प्रसाद पाया।

पादपूजा के अनन्तर दिन के १२ बजे 'श्री मीनाक्षी मन्दिर' की सुरम्य-पद-पल्लव-पुंजित भूमि चमत्कृत हो उठी। धीर-वीर-गम्भीर महर्षि प्राकारों की सीमा में अनुप्रविष्ट हुए तो सहस्रों भक्त उस देव-मन्दिर में साक्षात्-देव के दर्शनों के लिए उपस्थित थे।

देवी मीनाक्षी की पूजा तथा सुन्दरेश्वर लिंग की आराधना के उपरान्त दिन के ३ बजे स्वामी जी ने 'सेतुपति विद्यापीठ' के विद्यार्थियों तथा उनके अभिभावकों को अपना सन्देश दिया।

× × × ×

रात के ८ बजे "मीनाक्षी देवालय" का विशाल प्रांगण मद्रपुरी के नागरिकों से सज रहा था*। परकोटे के एक ओर नारीमंडल और दूसरी ओर पुरुषमण्डल बैठा हुआ था। जनता के प्रतिनिधियों की ओर से स्वामी जी को सम्मान-पत्रों द्वारा आदर प्रदान किया गया। अपने व्याख्यान में स्वामी जी ने भक्ति का उपदेश दिया तथा लक्षानुमानिता जनता को कीर्त्तन करने पर विवश किया। थोड़ी देर में जन-गर्भ से उद्भूत हुई कीर्त्तन की स्वर-लहरी, गोपुरों से ऊपर असीम-आकाश और विस्तृत वायुमण्डल में तन्मय हो गई। अपनी मधुर-ध्वनि से हरिनाम के गुण गाते हुए, महात्मा ने मद्रपुरी की मातृस्वरूपा ईश्वरीय चेतना को पुनः एक बार जगाया और सबको यह सन्देश दिया कि "ईश्वर-साक्षात्कार विश्व की विराट्-

सम्पत्ति है। आत्मा की प्राप्ति किसी काल-विशेष पर निर्भर नहीं, किसी स्थान-विशेष में सीमित नहीं—किन्तु सब कालों, अवस्थाओं और सभी स्थानों में सम्प्राप्तनीय है। जिसका ज्ञान प्रत्यक्ष के हृदय में ही हो जाता है, निरन्तर शुद्ध कर्म करने से, अकैतव भक्ति के दृढ़ होने से, सत्कार-मेलित-योग तथा सद्वैराग्यनिष्ठ-ज्ञान से।"

दूसरे दिन प्रात काल के समय श्री स्वामी जी ने विरुधनगर होते हुए तिरुनेलवेली की ओर प्रस्थान किया। मा जयलक्ष्मी को सान्त्वना देते हुए स्वामी जी ने कहा कि "पुनः कभी ऋषिकेश आना।" वे रो रही थीं और पुरवासी भी तो सिसकियां भर कर रो रहे थे।

(२)

१६ अक्तूबर। ८ बजे हम विरुधनगर पहुँचे तो वर्षा हो रही थी। मंगल-गीत गाते हुए जनपदवासियों ने स्वामी जी की अभ्यर्थना की। रथयात्रा का श्रीगणेश हुआ। जल की तीव्र धारें महाराज और महाराज के अनुगामी भक्तों का अभिषेक कर रही थीं। रथयात्रा के आनन्द में तन्मय विरुधनगर की जनपदावली 'श्री स्वामी जी महाराज की जै' के जयजयकार की तुमुल ध्वनि को प्रदिशि निनादित कर रही थी। नगर के २५ स्थानों पर रथ रुका और पच्चीस संस्थाओं ने स्वामी को विजय भारती से अलंकृत कर, अभिनन्दित किया; सम्मान पत्र समर्पित किए।

× × × ×

१६ अक्तुबर। तिरुनेलवेली में स्वामी जी के शुभागमन की तैयारियाँ होने लगीं। स्वामी जी के **जन्मभूमि में** पधारते ही तिरुनेलवेली अनेकों शोभाओं से निर्मल हो उठी। यही वह पवित्र देश है, यही वह धन्य देश है, जहां इस पवित्र देह ने जन्म लिया।

विचित्र-विचित्र प्रकार के स्वागतोपकरणों से सब लोगों ने स्वामी जी का स्वागत किया। राजमार्ग पर नागस्वरम् की तानें गूंज रही थीं। सबको सनाथ करते हुए, सबको कृतार्थ और अहोभाग्य तथा कृतकृत्य करते हुए, सबका मंगल मनाते और सबको दर्शन देते हुए, श्री स्वामी जी हिमांचलीय वसन्तों के सुहावने प्राकृतिक-वैभव की समाधि के आनन्द में चालीस सम्वत्सर बीतने पर अपनी जन्मभूमि की सीमा में प्रविष्ट हो रहे थे।

ताम्रपर्णी के तटों पर बसी हुई उस नगरी ने अपने देव को पहिचाना। पट्टामडाई से पुराने सम्बन्धी भी आए थे, जिन्होंने ४० या ४५ साल पहिले स्वामी जी को सेवाप्रेमी डाक्टर के रूप में देखा था। उनके नेत्रों से आनन्द के मोती बरस रहे थे। स्वामी जी के समीप खड़े-खड़े वे अघाते नहीं थे।

×   ×   ×   ×

१७ अक्तुबर। हमने पावन मलय-प्रदेश की ओर प्रस्थान किया। मार्गानुवर्ती ग्रामीण स्थान-स्थान पर स्वामी जी के

दर्शनों के लिए खड़े दिखलाई देते थे। स्वामी जी के ग्राम-निवासियों ने भी स्वामी जी की पूजा की। उनके प्रेम की थाह पाना, उनकी भक्ति और श्रद्धा का वर्णन करना असम्भव है। स्वामी जी प्रत्येक ग्राम में केवलमात्र दो-चार मिनट ठहरते और दर्शन देते थे। परन्तु भक्तों के स्वागतायोजन से ऐसा जान पड़ता था मानो वे पिछले दो महीनों से स्वामी जी के स्वागत की व्यवस्था कर रहे हों। स्थान-स्थान पर तोरण-द्वार मिलते, ध्वजाएँ लहराती हुई दीखतीं और 'आनन्द मूर्ति श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज की जै' का जयनाद सुनाई देता था। उनकी श्रद्धा ने महात्मा के दिगन्तोज्ज्वल यश पर चार चाँद लगा दिए और उनकी भक्ति ने शबरी के बेरों तथा सुदामा के तण्डुलों को भी भुला दिया। हम मलय प्रदेश की ओर जा रहे थे " "।

"......द्राविड़ भूमि! अपनी ग्रामवासिनी वैदिक-सभ्यता के अमर-सौन्दर्य से अलंकृत हो कर, तू धन्य हुई। मातेश्वरी! तेरी कोख सफल हुई और तेरा यश पावन हुआ। तेरी ही गोद में नायनार पले; तेरी ही गोद में हमारे आचार्य और प्राचार्य आत्मज्ञान को सम्प्राप्त कर पाए। देवालयों की जननी! तुझे हमारा प्रणाम है; क्योंकि तेरे ही वक्षस्थल में हमारे आराध्य देव हैं। हे अम्बे! तू ही हमारी भारत माता है। तेरे दूध को पीकर हम तेरा यश यावच्चन्द्रदिवाकर अक्षुण्ण बनाएँ; यही हमें—अपने पुत्रों को वरदान दे!

एक छत्र हो धर्म-ध्वजा का, नीचे हम सब मिलें जुलें,
मन के भेद औ' भाव मिटा दे, शान्ति हमें दे, ज्ञान हमें मा!
जय जग जननी भारत माँ!!

शिवानन्द दिग्विजय

विजयाष्टमी

मलय क्षेत्र में

नागरकोविल

रात के १० बजे हम नागरकोविल पहुंचे। पुरवासियों का समूह हिलोरें ले रहा था। अत्यन्त सुन्दर मण्डपाकार रथ के चारों ओर दीपमालाएँ जगमगा रही थीं। उन के य श्री स्वामी जी प्रतिष्ठित थे। वेदपारायण और हरिनाम-

संकीर्तन से महत्तम उल्लास का अनुभव हो रहा था। रात भर दर्शनार्थियों का समागम अविच्छिन्न रहा।

१८ अक्तुबर को प्रातःकाल ६॥ बजे 'दिग्विजय-मण्डल' की कारें कन्याकुमारी अन्तरीप की ओर त्वरितवेग से उन्मुख हो रही थीं। स्थान-स्थान पर केरलदेशीय ग्राम मूर्तियां स्वामी जी के आगमन की प्रतीक्षा में थीं। यथाविधि दर्शन देते हुए स्वामी जी कन्याकुमारी में प्रविष्ट हुए और भारतीय सोमा के दर्शन किए। पारावारविहारी सलिल-निलय तरंगित हो रहा था। उस अगोचर की अपरम्पार माया का मानो वही साक्षात्कार था। तट पर शत-सहस्राधिक पुरवासियों की संख्या उसी सागर को चुनौती देती खड़ी थी। स्वामी जी ने कन्याकुमारी की शास्त्रानुकूल आराधना की।

तद्पश्चात् स्वामी जी ने स्थानीय देवालयों के दर्शन किए और "हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक" धर्मविजय या लोकोत्तर कार्य सम्पन्न किया। हम पुनः नागरकोविल लौट आए।

प्रशस्त पण्डाल में स्वामी जी को जन-सम्मान देने का आयोजन किया हुआ था। मलयालम् भाषानुबद्ध सर्वप्रथम अभिनन्दन-पत्र स्वामी जी को अर्पित किया गया। तदनुसरतः स्वामी जी के ओजस्वी-भाषण, मस्त-कीर्तन और तन्मय-भजन हुए। मलय प्रदेश में यही प्रथम प्रवचन था; क्योंकि केरल-देशीय जनता श्री स्वामी जी के दर्शनों से ही तृप्त हो जाती

थी। जब अपने देव के दर्शन ही मिल गए तो और क्या चाहिये ?

सायंकाल के छविमय होते ही धर्मधुरन्धर ट्रावंकोर नरेश की ओर से निमन्त्रण का सु-संदेश पा कर, स्वामी जी ने त्रिवेन्द्रम् राजधानी की ओर प्रस्थान किया।

[२]

त्रिवेन्द्रम्

विशाल जनपथ की सीमा का अतिक्रमण करती हुई राजकीय कार, हमारे दिग्विजयी को सुहावने और मनोरम-दृश्यों की अनूपम छटा में दृश्य-विमुग्ध करती हुई, श्री अनन्त पद्म नाभ की सु-ललिता, तपोमयी और वैभवै-सम्पन्ना भूमि के रमणीय-पृष्ठ को पावन करती, पुण्य-चर्चित और सप्राणित करती, ट्रावंकोर राज्य के प्रधान नगर त्रिवेन्द्रम् में पहुंची। स्वामी जी के प्रवेश करते ही राजाज्ञानुसरतः देवस्थान के अर्चकों ने यथाविध, यथाशास्त्र, यथानुकूल, यथाकाल, यथायोग्य, यथासम्भव तथा यथाप्रचलित-रीत्या हिमशैलागत विजयी महामंडलेश्वर को दिग्विजयी के सम्मान से समर्चित करते हुए, उनके दर्शनों का आयोजन सम्पन्न किया।

गोधूलि की छटा क विस्तीर्ण प्रागण में छिटकते ही त्रिवेन्द्रम का सार्वजनिक भवन' जनपद-संकुलित हो गया। गीर्वाण-भाषानुबद्ध विजय-पत्र द्वारा जन-सम्मान सम्पन्न हुआ तथा

हाथीदाँत से निर्मित 'श्री अनन्तपद्मनाभ' की प्रतिमा के आकार की पेटिका में विजयाभिनन्दन पत्र समर्पित किया गया। पश्चात् श्री स्वामी जी का भाषण हुआ।

× × × ×

रात्रि का प्रथम प्रहर बीत चुका था। सारा राजप्रासाद प्रकाश की किरणों में स्नान कर रहा था। इसी समय सिंहद्वार पर कोलाहल के उद्यत् होते ही राजपरिवार राजमार्ग की ओर अग्रसर हुआ। सबसे आगे थे ट्रावंकोर नरेश और उन का अनुसरण करते हुए महारानी तथान्य बन्धु-बान्धव।

श्री स्वामी जी के राजमहल में प्रवेश करते ही सबने साष्टांग प्रणिपात किया। समस्त राजपरिवार अपने जीवन को महात्मा के चरणों की स्वर्ण-धूलि के मधुरस से धन्यतम बनाने आया था। पवित्र-किरण हिमांशु की चन्द्रकला उन के जीवन को शान्त और शीतल बना चुकी थी। महाराजा ने भी जिस प्रेम को स्वामी जी के चरणों पर न्योछावर किया, वह राजोचित था और उसी राजोचित साधु-सम्मान की परिपाटी की स्वर्ण-किरण को भारतीय सभ्यता के प्रकाश-गृह में प्रतिष्ठापित करने के श्रेय का उत्तरदायित्व सम्पन्न करते हुए, ट्रावंकोर नरेश ने महात्मा का सम्मान किया।

राजदरबार की शोभा अपूर्व ही थी। श्री स्वामी जी आत्म-तन्मय-से आसन पर बैठे हुए थे। समस्त राजपरिषद् किसी

अपूर्व महोत्सव की रचना के कौतुक का पर्यावलोकन कर रहा था। चिन्मुद्रा धर और मौनावलम्बन कर स्वामी जी उस प्रशब्ध राजसभा को क्या सन्देश दे रहे थे ? सम्भवत: शान्ति का और परम-शान्ति का। महाराजा भी तटस्थ थे। उपदेशों की आवश्यकता नहीं थी; धर्म-चर्चा तो विषयान्तर ही हो गई। सभी एक प्रकार की विस्मृति का अनुभव करने लगे, जिस विस्मृत-भूमिका मे उन्हें उपदेश और धर्म-चर्चा, वेदान्त और दर्शन किसी अनन्त-गगन के प्रागण पर छिड़े नक्षत्रों के समान प्रतिभासित हुए। स्वामी जी की उपस्थिति मे सभी के पूर्व निश्चित विचार, अपनी-अपनी संज्ञा को भूल कर, तद्कालीन शान्ति की गोद मे चित्स्वरूप की अनुभूति करने लगे। तब शास्त्रो का मूल्य ही क्या रहा और दर्शनशास्त्रो की आवश्यकता ही ही क्या रही ?

(३)

१६ अक्तूबर। ब्रह्ममुहूर्त मे ही स्वामी जी ने सबको दर्शन देना प्रारम्भ कर दिया। उपरतः श्री अनन्तपद्मनाभ मन्दिर के प्राकार के दर्शन करते हुए स्वामी जी देवालयाधिकारी-वर्ग से सम्पूजित हुए। राज्य की पुलिस के सुव्यवस्थित-नियन्त्रण द्वारा स्वामी जी ने देवालय की परिक्रमा सम्पन्न की और स्तम्भो से परे खडी हुई जनता को दैवी उच्छ्वास के मन्त्र से अभिमन्त्रित किया; सम्भवतः इसी की अभिलाषा मे वे लोग खड़े-खड़े, महात्मा के चरणों की रज को निहार रहे थे।

हाथीदाँत से निर्मित 'श्री अनन्तपद्मनाभ' की प्रतिमा के आकार की पेटिका में विजयाभिनन्दन पत्र समर्पित किया गया। पश्चात् श्री स्वामी जी का भाषण हुआ।

× × × ×

रात्रि का प्रथम प्रहर बीत चुका था। सारा राजप्रासाद प्रकाश की किरणों में स्नान कर रहा था। इसी समय सिंहद्वार पर कोलाहल के उद्यत होते ही राजपरिवार राजमार्ग की ओर अग्रसर हुआ। सबसे आगे थे ट्रावंकोर नरेश और उन का अनुसरण करते हुए महारानी तथान्य बन्धु-बान्धव।

श्री स्वामी जी के राजमहल में प्रवेश करते ही सबने साष्टांग प्रणिपात किया। समस्त राजपरिवार अपने जीवन को महात्मा के चरणों की स्वर्ण-धूलि के मधुरस से धन्यतम बनाने आया था। पवित्र-किरण हिमांशु की चन्द्रकला उन के जीवन को शान्त और शीतल बना चुकी थी। महाराजा ने भी जिस प्रेम को स्वामी जी के चरणों पर न्योछावर किया, वह राजोचित था और उसी राजोचित साधु-सम्मान की परिपाटी की स्वर्ण-किरण को भारतीय सभ्यता के प्रकाश-गृह में प्रतिष्ठापित करने के श्रेय का उत्तरदायित्व सम्पन्न करते हुए, ट्रावंकोर नरेश ने महात्मा का सम्मान किया।

राजदरबार की शोभा अपूर्व ही थी। श्री स्वामी जी आत्म-तन्मय-से आसन पर बैठे हुए थे। समस्त राजपरिषद् किसी

अपूर्व महोत्सव की रचना के कौतुक का पर्यावलोकन कर रहा था। चिन्मुद्रा धर और मौनावलम्बन कर स्वामी जी उस प्रशस्त राजसभा को क्या सन्देश दे रहे थे ? सम्भवतः शान्ति का और परम-शान्ति का। महाराजा भी तटस्थ थे। उपदेशों की आवश्यकता नहीं थी; धर्म-चर्चा तो विषयान्तर ही हो गई। सभी एक प्रकार की विस्मृति का अनुभव करने लगे, जिस विस्मृत-भूमिका में उन्हें उपदेश और धर्म-चर्चा, वेदान्त और दर्शन किसी अनन्त-गगन के प्रांगण पर बिछे नक्षत्रों के समान प्रतिभासित हुए। स्वामी जी की उपस्थिति में सभी के पूर्व-निश्चित विचार, अपनी-अपनी संज्ञा को भूल कर, तद्कालीन शान्ति की गोद में चित्स्वरूप की अनुभूति करने लगे। तब शास्त्रों का मूल्य ही क्या रहा और दर्शनशास्त्रों की आवश्यकता ही ही क्या रही ?

(३)

१६ अक्तूबर। ब्रह्ममुहूर्त में ही स्वामी जी ने सबको दर्शन देना प्रारम्भ कर दिया। उपरतः श्री अनन्तपद्मनाभ मन्दिर के प्राकार के दर्शन करते हुए स्वामी जी देवालयाधिकारी-वर्ग से सम्पूजित हुए। राज्य की पुलिस के सुव्यवस्थित-नियन्त्रण द्वारा स्वामी जी ने देवालय की परिक्रमा सम्पन्न की और स्तम्भों से परे खड़ी हुई जनता को दैवी उच्छ्वास के मन्त्र से अभिमन्त्रित किया; सम्भवतः इसी की अभिलाषा में वे लोग खड़े-खड़े, महात्मा के चरणों की रज को निहार रहे थे।

शिवानन्द दिग्विजय

विजय नवमी

र्णाटक प्रदेश में

---

१६ अक्तुबर । 'शिवानन्द दिग्विजय मण्डल' वायुमार्ग
धर्म-ध्वजा को फहराते जा रहा है
मैसूर राज्य बादलों की गोद में, निस्सीम शून्य
त्वरित-गति से पार करते हुए वह विम
अपराह्नकाल की अरुणिम छटा में बंगलूर पहुंचा । विमा

केन्द्र पर ही मैसूर राज्य के प्रतिनिधियों ने मैसूर की राजमाता की ओर से स्वामी जी महाराज को राजप्रासाद में पधारने का निमन्त्रण दिया। अतः वायुयान से उतरते ही श्री स्वामी जी महाराज ने समंडल मैसूर की ओर प्रस्थान किया।

रात के ८ बज चुके थे। स्वामी जी राजमहलों में पहुँचे, जहां राजमाता से उनका साक्षात्कार हुआ। अपने हर्षावेग को न रोक सकने के कारण राजमाता का कंठ अवरुद्ध हो गया। वे कुछ क्षणों के उपरान्त बोलीं, " स्वामी जी! अन्ततः आपने हमारे राजप्रासाद को पवित्र कर ही दिया। हमें आपके दर्शनों से अनाहत आनन्द की संप्राप्ति हुई है।"

राजमाता तथा स्वामी जी का परिचय पुराना है। वे कई बार स्वामी जी के दर्शनों के लिए ऋषीकेश भी गई थीं। परन्तु यह सब होते हुए भी उन्हें स्वामी जी के दर्शनों में अतीव आह्लाद की अनुभूति हुई। बारम्बार वे आँखें बन्द कर ध्यानमग्न हो जाया करती थीं। लगभग तीन घंटे तक स्वामी जी राजमहलों में रहे और जब वे अपने आवास-गृह की ओर लौटे तो राजमाता ने प्रार्थना की कि कल को भी स्वामी जी राजमहलों को पवित्र कर, सिंहासनासीन नरेश को आशीर्वाद दें। 'तथास्तु' कह कर, स्वामी जी अर्द्धरात्रि के अवसान होने पर विश्रामागार में लौट आए।

× × × ×

२० अक्तुबर। दिन के १० बज चुके थे। स्वामी जी पुनः राजभवन में प्रविष्ट हुए। राजमाता के साथ अन्य बन्धु-बांधव भी खड़े थे। महाराजा की प्रसन्नता का पार न था, जब उन्होंने सुना कि आचार्यवर्य की दिग्विजयिनी यात्रा का सूत्रपात हो चुका है और वे स्वयं मैसूर के मार्ग से विजय-ध्वजा लहराते हुए जायेंगे। अंगुलियों में दिन गिनते-गिनते वह सु-दिन आया, जब कि वैभव के सम्राट् ने शान्ति के अवतार को देखा। महाराजा के आनन्द के वर्णन की शक्ति किस में है ? उनके प्रेम, उनकी श्रद्धा और धर्मप्रियता को साहित्य के मोल आँकना हमारा दुःसाहस ही होगा।

प्रणामादि के उपरान्त स्वामी जी तथा राजपरिवार का अन्तरिम-साक्षात्कार हुआ। तदन्यतर घटनाएँ अप्रकाशित ही हैं, क्योंकि स्वामी जी के अतिरिक्त और कोई भी अन्तरिम-प्रासाद के समाचार नहीं जान पाया। लगभग ६० मिनट तक आचार्यवर्य तथा राजपरिवार में क्या सम्वाद हुआ, हमारी जानकारी से परे है। किन्तु इतना तो मालूम है कि राजोचित मर्यादा से ऋषिवर का अपूर्व सम्मान हुआ और धर्मचर्चा भी हुई, सम्भवतः पादपूजा भी, जिसके चिह्न हमने स्वामी जी के शरीर पर देखे।

(२)

दिन के दो बज चुके थे। अतः स्वामी जी ने राजपरिवार की हितकामना करते हुए बंगलूर में प्रवेश किया। श्री स्वामी जी के बंगलूर आने का समाचार बिजली के समान नगर के कोने-कोने में फैल गया। तब फिर था ही क्या ? वही पुरानी परिपाटी क्रियात्मक हुई। नगर सज उठा।

बंगलूर

श्रीयुत् व्ही० एल० नागराजन् तथा उनके सहयोगियों का उल्लेख आवश्यकीय है। लौकिक-शक्तिमत्ता तथा वैभव के नाते वे साधारण कर्मचारी थे; परन्तु गुरु की असीम कृपा का जो अनिर्वचनीय प्रसाद उन्हें प्राप्त हुआ, वह दिव्यतम ही था। बंगलूर-सदृश विशाल तथा आधुनिक-शिक्षा में रंगे हुए नगर तथा नागरिकों के पदार्थवादी हृदयों को प्रभावित कर, उन पर दैवी आधिपत्य संस्थापित कर देना कोई साधारण बात नहीं। उसके लिए तो गुरुकृपा की ही आवश्यकता है, जिसकी प्राप्ति कर श्री० व्ही० एल० नागराजन् तथा उनके सहयोगियों ने बंगलूर में धर्मक्रान्ति को जन्म दिया।

नगर में कई सम्मेलनों का आयोजन किया गया था। बंगलूर-निवासियों ने हृदय खोल कर, स्वामी जी का स्वागत किया तथा उनके उपदेशों को सुना।

× × × ×

२१ अक्तुबर। श्री स्वामी जी को नगर की विभिन्न-संस्थाओं ने मानपत्र समर्पित किए। 'दिव्य जीवन मण्डल' की स्थानीय शाखा का निरीक्षण कर, विश्वेश्वरपुरस्थित 'अशक्त पोषक सभा' तथा बासवानगुडी में 'शंकर मठ' की परिक्रमा करते हुए स्वामी जी ने ईश्वर धर्म का संदेश दिया। 'पत्रकार परिषद्' की बैठक में सभी पत्रों के स्थानीय प्रतिनिधियों को उन्होने आध्यात्मिक साम्यवाद का संदेश दिया।

स्थानीय नाटक-मंडली द्वारा श्री स्वामी जी की दिग्विजय के उपलक्ष्य में 'भक्त अम्बरीष' नामक नाटक अभिनीत हुआ। नाटक के समाप्त होते ही स्वामी जी ने मंच परसे कीर्त्तन और नृत्य किया। अपूर्व-गति, अद्भुत-ताल, अलौकिक-अभिनय, अविस्मरणीय मुद्राऐं। दर्शकों के नेत्र स्तब्ध हो चुके थे। किसी अगोचर की झांकी का उनके सम्मुख दर्शन हो रहा था। सबके भावों में अप्रत्यक्ष आनन्द नाच रहा था।

× × × ×

२२ अक्तुबर को स्वामी जी ने प्रातःकाल ८॥ बजे जलहल्ली के सैनिक-केन्द्र में अपना संदेश दिया। सहस्रों भारतीय सैनिकों ने अपनी आनुशासनिक प्रथानुसार महाराज के संदेशों को शांति-पूर्वक और दत्त-चित्त होकर सुना। उन्होंने निरन्तर मामरिक अनुशासन के सिद्धान्तों का पालन करते हुए भी जीवन के मुख्य-दर्शन को अपना आधार बनाया; जिसके फलस्वरूप स्वामी जी के व्याख्यान को उन्होंने हृदयंगम तो किया

ही, एवं च मस्त होकर कीर्त्तन में योग भी दिया। केवल वे ही नहीं, उनके अनुशासकों ने भी उस सुनहरे अवसर पर अत्यन्त दत्त-चित्त हो स्वामी जी के उपदेशों को सुना तथा अन्त में सुबेदार श्री देशराज राघदेव ने स्वामी जी के स्वागत में अपनी मृदुतरंगिणी कविता को गाया। अन्यान्य अधिकारियों ने भी स्वामी जी के प्रति सम्मान प्रकट किया।

'जलहल्ली सैनिक सत्संग' के उपरान्त स्वामी जी निवास-स्थान में लौट आए, जहां उन्होंने सहस्रों भक्तों को भगवान् के पवित्र नाम में दीक्षित किया तथा उन्हें आत्मा का श्रुतिमधुर और जीवन-पावन संदेश दिया। इसी अवसर पर कर्णाटक-प्रदेश के कोने-कोने से आए हुए लोगों ने अपने गुरुदेव का वचनामृत-रूप-प्रसाद प्राप्त कर, संप्रसादिता का अनुभव किया। स्वामी जी के मधुर उपदेशों द्वारा उन्होंने अनासक्ति योग का जीवन से समन्वय करना सीखा। मन्त्र-दीक्षा लेते समय प्रायः सभी लोगों के जीवन-कष्टाक्रान्त मुखों पर प्रकाश की अदृश्य-रेखा उदित हो चुकी थी। उनके नेत्र सजल थे तथा उनकी भाव-भंगियां स्नेह के अमर-वरदान को पा कर, सन्तोष की वर्षा कर रही थीं।

इस प्रकार स्वामी जी ने समस्त भरतखण्ड में धर्म, संस्कृति और सभ्यता का पुनरभ्युदय किया, धर्म-विषयक जटिलताओं को सुन्दर और सुगम रूप दिया; जिससे भारतवासियों ने साक्षा-

स्कार किया कि धर्म प्रत्येक प्राणी के आचारों का वह सामूहिक सिद्धान्त है, जो उस को अभ्युदय तथा महद्-श्रेय के पद पर अवस्थित करेगा और अन्ततः धर्म के अधिष्ठान परमात्मा की सुषमामय गोद में विश्राम भी देगा।

× × × ×

२३ अक्तूबर। कर्णाटक प्रदेशानुवर्तिनी जनता में धर्म की भावना को अमर कर, दिग्विजयी ने 'निजाम राज्य' की ओर प्रस्थान किया। बंगलूर की जनता ने विमान-केन्द्र पर विदाई देते हुए, स्वामी जी को प्रणाम किया। मैसूर राज्याधिगत-मुख्य मन्त्री माननीय श्रीयुत् के०सी०रेड्डी जी मैसूर महाराजा की ओर से स्वामी जी के चरणों में राजपरिवार की श्रद्धा समर्पित करने आए थे। श्री स्वामी जी को प्रणाम कर इन्होंने अक्षय आशीर्वाद ग्रहण किया। भक्तों की आज्ञा प्राप्त कर, जयजयकार के तुमुल-घोष के व्योम-मंडल में जागृत होते ही, मरीचिमाली के स्वर्णमय-प्रकाश में, वह अहोभाग्य विमान प्रातः ७॥ बजे देवलोक के गर्भ में लहराते हुए 'निजाम राज्य' की ओर अगोचर हो गया।

शिवानन्द दिग्विजय

विजय दशमी

•

निज़ाम राज्य में

हैदराबाद

कालीदास के मेघदूतों की चिन्मय-विरुदावली सुनते हुए, हमारा दिग्विजयी द्युतिमान् पर्जन्य-मण्डल को विदीर्ण कर, पृथिवीमण्डल से दूर और अतिदूर, निरंजन आकाश की गोद में नारद के समान, लंका-विजयोपरान्त पुष्पकारोहित राम के

समान विजय-दुन्दुभि बजाता हुआ, विजय-वैजयन्ती लहराता हुआ, भरतखण्ड की सम्पन्नतम राज्यभूमि ...हैदराबाद की सीमा में प्रविष्ट हो रहा था।

वायुयान 'बगमपेट् विमान-केन्द्र' पर रुक गया और जयजयकार के गीत गाती हुई मानव-तरंगिणी अपने-अपने तटों को भूल कर इतस्ततः फैल गई। विमान के ऊपर से ही आचार्यवर्य के तपःप्रज्वलित-स्वरूप में परमोज्वल आत्मा के दर्शन करते ही प्रशान्त-निरब्धता ने महद्-शांति का संचार किया। कुछ क्षणों के लिए जो हाथ जहां था, वहीं रह गया—काष्ठवत् अचल हो गया। वे मन्त्र-मुग्ध हो गए थे, निर्वाक् और निश्चल हो गए थे। इसी अल्प-अवधि में उन नागरिकों के जन्म-जन्मान्तरों से अन्तर्हित ईश्वरीय-ज्ञान के अनुभव का उदय हुआ। चौरासी के चक्कर में भ्रमित हुए, जो कष्ट उन्होने पाए तथा जिन-जिन कटु-अनुभवों से वे आक्रान्त हुए, उनसे छुटकारा तो मिला तथा स्वतन्त्र-साम्राज्य का राजपथ भी तो दिखाई दिया।

उस समाहित-क्षण के उपरान्त जब स्वामी जी ने प्रणवोच्चारण कर सबको सजग किया तो ऐसा जान पड़ा, मानो वे किसी सचेतन निद्रा से जागे थे। कुछ ही क्षणों के बाद सबको दर्शन देते हुए, स्वामी जी नीचे उतरे तो निजाम राज्य के श्रम-मन्त्री माननीय श्रीयुत् व्ही० बी० राजू महोदय ने उनके गले में विजय-माला डाली और हैदराबाद की जनता की ओर से श्री स्वामी जी के चरण छुए। स्थानीय 'दिग्विजय मण्डल' को

व्यवस्थापिका सभा के स्वयं-सेवकों ने राष्ट्रीय-विधितया स्वामी जी को सम्मान दिया। इस प्रकार २३ अक्तुबर को स्वामी जी ने प्रथम प्रहर के उदय होते ही हैदराबाद में पदार्पण किया।

× × × ×

दिन के तीन बजते ही 'उस्मानिया विश्वविद्यालय' की भूमि जन-कलरव से प्राच्छादित हो उठी। विश्वविद्यालय का 'परिषद् भवन' विद्यार्थियों तथा शिक्षकों से अपनी परिधि को आवृत्त किए था। विश्वविद्यालय के प्रोफेसर श्री ऐम्० ऐम्० डोरै स्वामी ने अपने प्रास्ताविक शब्दों में स्वामी जी का परिचय दिया।

प्रस्तावना के उपरान्त लगभग १ घन्टे तक परिषद्-भवनस्थ प्रतिभामण्डल और भारत की भावी नागरिकता के संरक्षकों ने श्री स्वामी जी का सुन्दर, रोचक, ललित और आदर्श सन्देश सुना। विद्यार्थियों को सचेत करते बतलाया गया। "उन्हें अपने चरित्र को सुव्यवस्थित तथा सु-नियन्त्रित रखना चाहिए। यदि ऐसा न किया तो उनके जीवन का नैतिक-पतन तो होगा ही, तदुपरि उनके जीवन में कष्ट ही कष्ट घिर आयेंगे और वे अपने जीवन में कोई काम ऐसा नहीं कर पायेंगे, जिससे समाज उनको आदर्श जाने।" यही उनके आप्त-वाक्य थे।

'उस्मानिया विश्वविद्यालय' में कार्यक्रम समाप्त हुआ। 'निज़ाम महाविद्यालय' में नागरिकों के सम्मेलन में, विद्यार्थियों के मध्य, यमराज के चार पत्रों का उल्लेख करते हुए स्वामी जी ने कहा—

"यमराज का प्रथम पत्र साधारण बुकपोस्ट द्वारा आता है । वह है बालों का सफेद हो जाना । यमराज का दूसरा पत्र साधारण डाक से आता है । वह है दृष्टि का क्षीण हो जाना । यमराज का तीसरा पत्र रजिस्ट्री से आता है । फलत दांत गिर जाते हैं और यमराज की चौथी चेतावनी वी० पी० पी० से आती है । तब तो जीवन का मूल्य चुका कर वी० पी० पी० छुड़ानी ही पड़ेगी । कोई दूसरा बचाव नहीं । यदि पहिले ही तीनों पत्रों का विवेकपूर्ण उत्तर दिए जाते तो यह दशा क्यों आ खड़ी होती ? हमने विश्व-नियम की वंचना की । विधाता के विधान का अनादर किया । अब तो चौरासी के फेर में पड़ना ही पड़ेगा ।"

जो लोग अभी तक हँस रहे थे, वे अब गम्भीर हो गए । एक अज्ञात भय उनके हृदयों में प्रविष्ट हो गया । आज उनको नींद नहीं आएगी, जब तक वे उन पत्रों के विवेकपूर्ण उत्तर को नहीं सोच लेंगे । उनका चित्त तब तक उद्विग्न रहेगा, जब तक वे उन पत्रों के प्रतिकार का पारमार्थिक उपाय नहीं खोज लेंगे । अन्त में स्वामी जी ने कहा—

"यमराज के पत्रों का उत्तर है, सद्कर्मनिष्ठ हो कर चेतावनी का अर्थ समझना, धर्मनिष्ठ होकर तदनुसार कर्म करना तथा आत्मनिष्ठ हो कर यम के पाश से विमुक्त बनते हुए, आत्माराम में परमानन्दित हो विचरना ।"

(२)

लोक-प्रचलित सिद्धान्तों की वंचना कर पारसी, जैन तथान्य सभी धर्मावलम्बी भी महाराज के सामने उसी पवित्र-आदर भाव

से ओत-प्रोत होकर आते थे, जो आदर-भाव उन्हें अपने गिरजों या मसजिदों या विहारों या मन्दिरों या मूर्तियों के लिए होता है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी साम्प्रदायिक-प्रथाओं को भूल कर स्वामी जी के समक्ष दंडवत् करता, फूल चढ़ाता, चरण-स्पर्श करता और उनके शुद्ध-वेष पर बलि-बलि जाता था। यह इसीलिए कि स्वामी जी उस अलौकिक-धर्म के प्रतिपादन अथवा संरक्षण के लिए आए थे, जो विश्व के निखिल मतों, सम्प्रदायों, समाजों और समग्र विज्ञानों को अपनी विशाल शाखाओं में पुष्प के समान समानतया विकसित किए है और जो सभी विभिन्न-पथों का निर्दिष्ट लक्ष्य है; जहां सभी संसार अपनी विविधात्मक-प्रगति को भूल कर, सच्चे स्वरूप में शोभा पाता है; जहां मनुष्य अपनी मनुष्य संज्ञा को तिरोहित कर, नाम-रूपों में देखे जाने वाले विश्व का अखण्डित, अपरिच्छिन्न तथा अप्रतिहत रूप में अनुभव करता है।

इसका लोकोत्तर-दृश्य हमें 'महबूब महाविद्यालय, सिकन्दराबाद' में देखने को मिला। सभी पैगम्बर की सन्तान थे। सभी कलामे-पाक की शपथों पर न्यौछावर जाने वाले थे। सभी कुरान शरीफ की आयतों को ही ईश्वर के गीत समझते थे और मक्के-मदीने को पवित्र-गति देने वाले मानते थे तथा जिनका नारा था 'अल्ला हो अकबर!' परन्तु उन्होंने भी रटना प्रारम्भ किया 'प्रणव महा-मन्त्र' को। स्वामी जी अनवरत गति से कहते जा रहे थे। समस्त परिषद् मग्न तटस्थ था। सबके नेत्र निर्निमेष थे।

इसी अवसर पर दिग्विजयी के कीर्ति-चन्द्र की चारु चन्द्रिका को शरद् गगनमण्डल-मण्डित कर, महाविद्यालय की शिक्षक-मंडली द्वारा जनमण्डल की ओर से रजतमंडित मानपत्र महामंडलेश्वर के सकल-भुवनमंडल-मंडित चरण-मंडलो मे मण्डित किया गया और जब स्वामी जी मच पर से नीचे उतरे तो विजय-ध्वनि स्वैर-गति से अन्तरग वातावरण मे ध्वनित होती हुई उठी और क़ुरान की आयतो के पाठ करने वाले कई सहस्र कंठो ने तुमुल नाद किया, "श्री स्वामी जी महाराज की जै।" ऐसा प्रतिभासित होता था, मानो मसजिद के गलीचे पर मौलवी बैठे हुए गा रहे थे—

बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम। अलहम्दु लिल्लाहि रब्बिल् आलमीन्

\+ \+ \+ \+

एक ही दिन मे हैदराबाद की यह अवस्था हो गई कि नगर मे कोई ऐसा नही रहा, जिसने स्वामी जी के दर्शन नहीं किए थे। हम लोगों को यह पीछे मालूम हुआ।

श्री स्वामी जी 'महबूब विद्यालय' से लौट कर अपने निवास-स्थान की ओर आ रहे थे तो मंडल के स्थानीय व्यवस्थापक ने सोचा कि स्वामी जी को एक बोतल सोडे का देवें तो उत्तम होगा। अत. पार्श्ववर्ती दुकान के सामने कार रोक दी गई और दुकानदार से एक बोतल सोडा लाने के लिए कहा गया।

यह सब कुछ होने मे देर ही क्या लगती। परन्तु अभी सोडा आ भी नहीं पाया था कि कार के चारो ओर जनता संगठित

होने लगी और कुछ ही क्षणों में यह अवस्था हो गई कि समस्त मार्ग दर्शनार्थियों से प्राच्छन्न हो गया। अनवरत गति से "श्री स्वामी जी महाराज की जै" की विजय-ध्वनि से राजमार्ग शब्दालोकित हो रहा था।

हम दुकानदार को सोडे का मूल्य देने लगे तो वह लेता ही नहीं था और कह रहा था " अहोभाग्य हैं मेरे, जो आज साक्षात् भक्तवत्सल भगवान् विदुर के घर भोग लगाने आए। अब मुझे क्या चाहिए ? मेरे जन्म-जन्मान्तरों के पुण्य-उदय हुए, जो आपने मेरे द्वार पर भोग लगाया……।" और यह कह कर रोने लगा; सम्भवतः आनन्द के कारण उसके चिर-संचित-संताप द्रवीभूत हो कर बह रहे थे।

× × × ×

लाखों लोग थे, जो उनके चरणों की रज के प्रताप से पावन हुई भूमि पर माथा टेकते गए । सहस्रों लोग थे, जो उनके योगानुष्ठित रूप की माधुरी की कल्पना करते-करते समाहित-चित्त हो गए। न जाने कितने ऐसे भाग्यवान् रहे होंगे, जिन्होंने उनके स्पर्श से पवित्र हुई भूमि में, मिली हुई रजकण के ही ऊपर अपने जीवन की ऐहिकता का विसर्जन किया होगा। आज हम (उनके शिष्यगण) उनकी महिमा के साक्षी हैं, क्योंकि हमने अपनी आंखों से ही उनके प्रताप से प्रत्युज्ज्वल हुए, असंख्य जीवनों को देखा है; जो इस संघर्षमय जगत् में रहते हुए भी सद्कर्मपरायण तथा आत्मनिष्ठ हैं।

[३]

दूसरे दिन पौ फटने से पहले ही प्रतापगिरि भवन' मे भक्त लोगा ने आना प्रारम्भ कर दिया। राजकीय भवन के विशाल प्रागण मे प्रात कर्मों का दिग्दर्शन कराया गया। हम लोगो ने गुरुदेव की प्रथा के अनुसार मनुष्य जीवन की साधना का साक्षात अभिनय किया। स्वामी जी की इच्छा थी कि तदुक्त अभिनय मे जिन जिन साधनो का दिग्शन कराया जाय, उनका अनुपालन प्रत्येक व्यक्ति करे। पुन मण्डली ने बालोपयोगी ब्रह्मचर्योपयोगी, वृद्धोपयोगी तथा स्त्रायोपयोगी आसनो का पृथक् पृथक् निदर्शन और प्रदर्शन किया। इस प्रकार दैनिक जीवन की साधना का वह अभिनय कवल दो घट रहा। इसी अल्पकाल मे सभी गृहस्थो को योग की परम जटिल कल्पित समस्या का रहस्य प्रत्यक्ष कर दिखलाया गया। योग के विषय म जो जो शकाएँ साधारण जनता मे प्रचालत रहती है, उनका समाधान और निवारण हुआ और जो लोग योगाभ्यास को ससार से विरक्त साधकों, साधुओ तथा महात्माओं द्वारा ही अनुष्ठेय जानते थे, उनके मत का परिहार हुआ।

२४ अक्तुबर। दोपहर को "हैदराबाद रेडियो स्टेशन' से श्री स्वामी जी महाराज का सन्देश प्रसारित किया गया।

तदुपरान्त स्वामी जी ने 'दिव्य जीवन मण्डल' की स्थानीय शाखा का पर्यवेक्षण किया और 'शिवानन्द सरस्वती मन्दिर'

(पुस्तकालय) तथा 'शिवानन्द धर्मार्थ औषधालय' की प्रा
प्रतिष्ठा की। संस्था की सफलता के लिए कामना करते
स्वामी जी 'प्रतापगिरि भवन' में वापिस आ गए।

दिन के दो बजे प्रतापगिरि के महाराजा ने सपरिवार
स्वामी जी के दर्शन किए और उनका उपदेश लिया।

× × × ×

इस प्रकार राज्य-केन्द्र, दिग्विजयी की विरुदावली प्रत्ये
प्राणी के मुख से सकीर्तित हुई। लाखों की संख्या में विभि
मतावलम्बियों ने महाराज के उपदेश सुने, कीर्त्तन-ध्वनि
सुनी, दर्शन पाए और ईश्वरीय सप्रसाद की प्राप्ति की। त
तक उन्होंने महाराज के विश्वविख्यात यशःप्रताप के गीत
सुने थे, परन्तु आज उन्होंने एक अकल्पित विभूति को साक्षा
देखा तो उनके हृदय-सरोज खिल उठे। जब हृदय-गगन
चन्द्रिका छिटकी तो मोक्ष-कमल के अवगुण्ठित रूप को मान
ने खिलते देखा और जब मरीचिमाली जागे तो ज्ञान की किर
मानव के विवेक-क्षितिज से जाग रही थी।

२४ अक्तुबर को सायकाल के समय 'शिवानन्द दिग्विज
मण्डल' ने निजाम राज्य से महाराष्ट्र की ओर प्रस्थान किया।

शिवानन्द दिग्विजय

विजय एकादशी

महाराष्ट्र प्रदेश में

पूने में

अक्तुबर मास की २५ वीं तारीख को हम लोग महाराष्ट्र-प्रदेश की नैसर्गिक गोद से जागते स्वर्ण-रथी के विश्व-प्रकाशक प्रकाश में आनन्दित होते हुए, विजयनाद-समाकीर्ण पूने के वायुमंडल की श्री-राजिता छाया में संप्रविष्ट हुए।

पूने के निवासियों ने विश्व के सन्त का स्वागत किया और वेद विधानानुकूल पूजन कर, अपने भाग्य को अतितर सुतर कर दिया। पूने में स्वामी जी का जो स्वागत हुआ, वह यदि सच्चे शब्दों में कहा जाय तो अपूर्व ही था।

ज्यों ही स्वामी जी ने दर्शन दिए, त्यों ही एक कम्पन ने सबको चकित कर दिया। जनता का विराट्-स्वर कलरव नीरवता में समाधिस्थ हो गया। परन्तु कुछ ही क्षणों में सबने तुमुलनाद किया, "श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज की जै ." बस फिर क्या था। शृंगीनाद से दशों दिशाएँ दहल गईं। मृदगों पर नृत्य हुआ। मंगलाचरण उचरित हुए।

"स्वामी जी पूने में आज के दिन ठहरेंगे" यह समाचार पाते ही जनता ने उनके आशीर्वाद को पाने का भरसक प्रयत्न किया। स्थान स्थान पर स्वामी जी के व्याख्यान और प्रवचन हुए और पादपूजा भी हुई। स्वामी जी के दर्शन करते ही उन्हें हिम की-सी शीतलता का अनुभव होता था। समस्त पूना विद्युल्लहर से संयोजित हो चुका था। क्या बालक, क्या युवक और क्या वृद्ध—सभी के जिह्वाग्र में स्वामी जी का पवित्र नाम था।

और, स्वामी जी तो किसी ऐसे रंग में तरंगित थे कि जनता को उनकी छवि क्षण भर में दिखाई देती और दूसरे ही क्षण अदृश्य हो जाती थी। अभी 'सरस्वती विद्यालय' में उपदेश दे रहे हैं तो दूसरे क्षण 'बम्बई प्रान्तीय मलेरिया सत्र' में आप उन्हें

अधिकारियों और कर्मचारियों से आत्मचर्चा करते पायेंगे। उनके कंठ से रक्तस्राव हो रहा हो या नाक गिर रही हो""परन्तु किसी ने उनको कर्तव्यहीन नहीं देखा। समाज और समाजों से बने विश्व के प्रति उनकी भावना सदा सक्रिय रहती थी, जिसमें स्फूर्ति थी और आनन्द था। उन्होंने अमृतमय ज्ञान द्वारा विश्व के विकास पर सद्प्रकाश किया, जिसके फलस्वरूप जनता ने अपना दृष्टिकोण निश्चित कर पाया, समाज ने अपनी भूलें सुधारीं, धर्म ने अपनी कट्टरता के रंग को धोकर अपना सच्चा स्वरूप देख पाया और प्रत्येक व्यक्ति ने आत्म-विचार करना प्रारम्भ कर दिया। उनके जीवन में स्फूर्ति और क्रियात्मकता और पूर्ण ज्ञान का जो समन्वय था, वह आज की सर्वप्रथम आवश्यकता है। सभी राष्ट्र इसी समन्वय के लिए दृष्टि पसारे हुए थे और स्वामी जी उनके सभ्य जीवन के सूत्रधार बने।

× × × ×

जब स्वामी जी 'बम्बई प्रान्तीय मलेरिया संघ' से बाहर आए तो डाक्टर श्री विश्वनाथन् ने स्वामी जी से प्रार्थना की कि अब स्वामी जी कुछ भोजन और विश्राम करें। स्वामी जी ने कहा— "मीरा विद्यालय में जाने का समय समीप है। तद्पश्चात् आपके ही घर में, यदि आवश्यक हुआ तो प्रसाद प्राप्त कर लूंगा।"

विद्यालय के शिक्षकों और बालिकाओं ने स्वामी जी की

श्लोकों को गाती हुई, वे बालिकाएँ साक्षात् सरस्वती की अनुपम रचना के कला की परिचायिका प्रतीत हो रही थीं। उनके एक-एक शब्द में विश्व का अमर संगीत था, सत्य का मनमोहक अभिनय था और ब्रह्मज्ञान का सुन्दर मार्गशीर्ष विराज रहा था।

द्वादश अध्याय के पाठानन्तर 'मीरा विद्यालय' की ओर से श्रीयुत् गंगाराम सज्जनदास ने स्वामी जी को स्वागत-भारती समर्पित की। अब उठे स्वामी जी।

डाक्टर ने देखा, सुमधुर-वेष में रंजित स्वामी जी को। अनुभव करने का प्रयत्न किया। परन्तु पलकें नहीं उठ पाईं। विचार अवरुद्ध हो गए। बुद्धि समाहित-चित्त हो गई। जब उनकी पलकें जागीं तो उन्होंने देखा कि स्वामी जी उनकी बांह पकड़ कर, उनको इस सत्यावभास दृश्य से जगा रहे थे।

सब लोग 'मीरा विद्यालय' से बाहर आए। विद्यालय की छात्राओं ने सप्रेम-पुरस्सर प्रणाम किया।

'मीरा विद्यालय' में उपदेश देकर, स्वामी जी डाक्टर विश्वनाथ जी के घर आए। लगभग एक घन्टे तक स्वामी जी के कीर्त्तन और भजन हुए। उपरतः स्वामी जी ने भिक्षा ग्रहण की। दिन के दो बजने को थे।

(२)

अपराह्णोत्तरकालीन रम्य-आलोक में श्री स्वामी जी ने आलन्दी की ओर प्रस्थान किया। इन्द्रायणी तटस्थित सन्त

ज्ञानेश्वर के समाधि मन्दिर में पहुँच कर, हमारे स्वामी जी ने महाविभूति के नामों या संकीर्त्तन करते हुए, अपना प्रणाम समर्पित किया। जब हम आलन्दी से वापिस लौटे तो सायंकाल के दीपक जलने को थे।

× × × ×

आलन्दी से लौटते समय स्वामी जी स्थानीय 'दिव्य जीवन मण्डल, खड़की' मे गए। समय अधिक नहीं था। 'तिलक मन्दिर' मे बम्बई प्रान्त के माननीय मन्त्री श्रीयुत् बी० जी० खेर के सन्निधान मे स्वामी जी के सार्वजनिक-सम्मान का आयोजन किया गया था। तत्फलतः केवल १० मिनट की अवधि मे ही स्वामी जी ने उपस्थित भक्तों को आत्मज्ञान प्राप्त करने का सन्देश दिया और हरिनाम का पवित्र कीर्त्तन भी किया। 'दिव्य जीवन मण्डल' की स्थानीय शाखा के सदस्यों तथा सहयोगियों ने जनता की ओर से स्वामी जी के आशीर्वचन की याचना की। 'तथास्तु' कह कर स्वामी जी 'तिलक मन्दिर' की ओर प्रस्थित हुए।

× × × ×

'तिलक मन्दिर' मे पूने का सन्त-समागम हुआ। नगर के सभ्य-नागरिक तथा उच्च पदाधिकारी भी पधारे थे। ७ बजे ही थे कि माननीय मन्त्री की मार्गदर्शिका ने रंगीन-ज्योति से उनके आगमन का समाचार दिया। कुछ ही क्षणों मे माननीय खेर महोदय की कार और समंडल स्वामी जी की कारें यथाक्रम आ

खड़ी हुई। त्वरित-गति से श्रीयुत् खेर महोदय ने मंच की ओर प्रस्थान किया तथा यथास्थान पर से स्वामी जी की अभिवन्दना के हेतु कुछ क्षण प्रतीक्षा भी की। जन-समाज शान्ति की गोद से इस अभिनय-कौतुक का पर्यावलोकन कर रहा था। कुछ ही क्षण बीते होंगे कि वेदोच्चारण से मंगल श्रुति का पाठ हुआ और स्वामी जी भी गम्भीर-प्रगति से, जनता-जनार्दन को प्रणाम करते हुए, मंच की ओर अग्रसर हो रहे थे। मंचारोहण करते ही माननीय मन्त्री महोदय ने विजयमाला अर्पण कर, स्वामी जी का अभिनन्दन किया।

सब यथास्थान पर बैठ गए। माननीय मंत्री महोदय ने स्वामी जी के विषय में भूमिका का सूत्रपात करते हुए, उनके जीवन और उनके आदर्श का बखान किया।

प्रत्युत्तर में स्वामी जी ने अपना सदेश दिया, जो अज्ञान-अन्धकार को निवारण करने वाले प्रकाश के समान था, अज्ञान के बादलों को क्षत-विक्षत करने वाले का प्रबल-बवण्डर की नाईं था।

लगभग ८० मिनट तक स्वामी जी ने जीवन के प्रमुख कर्तव्य—आत्मज्ञान का ज्ञान कराया।

श्री स्वामी जी के सन्देश से मन्त्रमुग्ध होकर, जनता ने अतिदुर्लभ सन्त-समागम का आनन्द लूटा। उसका चित्त कुछ काल के लिए संसार-स्फूर्ति को त्याग कर, चित्स्वरूप का अनुभव करने लगा। जब सूर्यनारायण प्राची में आए तो संशय-रूप-

नक्षत्रों का अस्तकाल आ गया । वह अपने घरद्वार, पतिपुत्र, कामकाज, स्वजनसखा, धनधान्य तथादि सबको भूल गई। विषय सुख को भूल गई और इन्द्रसुख भी भूल गई।

'तिलक मन्दिर' के सत्सग के उपरान्त स्वामी जी पुन 'टूरिस्ट कार' पर आ गए तो रात के १० बजने को थे और हमारा मण्डल बम्बई-प्रस्थान की तैयारी मे लगा था; जब कि पुरवासी पावसकाल के पर्जन्य मंडल के समान प्लेटफार्म की ओर उमड-घुमड़ कर आ रहे थे।

(३)

२६ अक्तुबर। प्रात-काल के ८ बजे स्वामी जी बम्बई पहुँचे। जनता उनका स्वागत करने प्लेटफार्म को आच्छन्न किए खड़ी थी । सम्मान्य सोलीसिटर श्री हीरालाल मेहता सपरिवार पधारे थे। यहा तक कि 'शान्ता कुज' से पुरोहित-परिवार भी पधारा था।

बम्बई

अब बम्बई मे दिग्विजयिनी को सुविशाल मार्गों पर फहराया जाने लगा। सार्वजनिक सम्मेलनो का उद्घाटन हुआ। नगर के कोने-कोने मे व्याख्यानों के आयोजन हुए। कभी कभी एक साथ शतसख्यक कारें 'शिवानन्द दिग्विजय' के सूत्रधार तपस्वी के काषाय स्वरूप से जनपद को धन्यनेत्र करती, तीव्रगति से, हरिनामरग की होली में तन्मय हो, सुविशाल नगर को चिर-

दूसरे दिन प्रान्तीय-समाचार पत्रों ने अपने शीर्षभाग पर स्वामी जी के धर्म-समन्वय अथवा विश्व के मूलभूत मौलिक धर्म का व्याख्यान प्रकाशित किया था।

इस प्रकार स्वामी जी ने बम्बई मे हरिनाम का पांचजन्य सुघोषित किया। यह तो प्रथम दिन है ······!

(४)

२७ अक्तुबर। प्रात काल होते-न-होते दिग्विजयी तीर्थ की यात्रा करने सहस्रों पुरवासी पधारे। कोई दीन थे तो कोई लक्ष्मी को करतल पर नचाने में समर्थ थे। कोई व्यवसायी थे तो कोई शासन-विभाग के कर्मचारी। सूर्योदय होते ही ट्रामगाड़ियां, मोटरें, किराये की कारें, इक्के, तांगे, फिटन क्रम-क्रम से एक निश्चित स्थान के लिए जनमंडल को लेकर अग्रसर हो रहे थे। इस प्रकार नगर का जनमंडल 'लक्ष्मी बाग' मे जाता और अपने जीवन के अज्ञान का निराकरण कराता था। साथ-साथ समधिगत-विरक्तिरंजित आत्मा के अविनश्वर यश को प्राप्त करते हुए, विश्व की वृत्तियो के दासत्व से विमुक्त हो, पर्वत कन्दरा में दृढ़नियमी तथा ध्रुव-आचरणपरायण योगियों के समान ही मुदितमनस्वी बन, अपने गार्हस्थ्य-जीवन में ही तपोमहिमा के महत्प्रसाद की प्राप्ति करता था।

× × × ×

सायंकाल के ६ बज चुके थे। 'माधव बाग' में बम्बई का जनमंडल लहरा रहा था। उसके महत्प्रशस्त प्रांगण मे शुचि-

समाधिस्थ महात्मागण, पूर्णचन्द्राननश्रीपूर्णा महिलाएँ, सर्वलोकाभिवन्द्य राज्याधिकारी, पूर्वपुण्योपार्जित सत्फल को प्राप्त किए भक्तगण विराजमान थे। महामंडलेश्वरादिसंगीत-प्रकीर्तित श्री महेश्वरानन्द जी महाराज तथा श्री-ल-श्री प्रेमपुरी जी महाराज और हमारे स्वामी जी महाराज 'माधव बाग' में शुद्ध समाराधित महात्माओं के मध्य प्रशोभित हो रहे थे।

'माधव बाग' का वह अपूर्व जनसम्मेलन, हमने सुना, लोग कहते थे, बम्बई के धार्मिक-इतिहास में प्रथम दृश्य ही था। उन लोगों का कहना था कि कभी ऐसा जमघट नहीं हुआ। सबसे विचित्र बात तो यह थी कि सभी शान्त और दत्तचित्त हो, स्वामी जी की श्रुतिपावनी वाणी सुन रहे थे। गीताधर्म और मानव-जीवन का अनन्य-सम्बन्ध सूत्रित किया जा रहा था। साथ-साथ स्वामी जी का व्याख्यान ताम्रतन्त्री में स्वरांकित भी किया जा रहा था। जिस समय उन्होंने गीतोक्त-वैराग्य पर अपना मन्त्र सन्धाना तो ऐसा ज्ञात हुआ, मानो वैराग्य ही सबके नेत्रों के सम्मुख नृत्य कर रहा था। उन वैराग्याभिरंजित नेत्रों से सभी ने विश्व की कंकालवत् पदार्थवादिता को पहिचाना। वह दृश्य, हम समझते हैं, दृश्य नहीं था, अपितु अनुभूति थी; जिसका संयोग नेत्रों के स्पन्दन से हो रहा था।

इसी अवसर पर बम्बई की जनता की ओर से स्वामी जी के प्रति कई भाषाओं में अभिनन्दन पत्रों का पाठ हुआ। करतलध्वनि से सबने अभिनन्दन की पुनरुक्ति की। और, जय

हम माधव बाग' के उपरान्त मच पर से उतरे तो ऐसा प्रतीत होता था, मानो पूर्णिमा का सिन्धु उद्वेलित होने वाला हो। लाखों की इच्छा हुई कि महाराज के चरणस्पर्श-रूप आशीर्वाद के भागी बनें। किन्तु हम लोगों ने चपल-तडित् दिग्विजयी को उस उद्वेलित-सिन्धु की सीमा से बाहर कर दिया।

एक कार के पास आते ही हमने देखा कि उसके सचालक ड्राइवर ने कार का द्वार खोलकर, स्वामी जी से बैठने की प्रार्थना की। परन्तु वह तो किसी अन्य की थी। हमें क्यों कर बैठना चाहिए? यदि कार का मालिक कार-सचालक पर अप्रसन्न होवे तो? किन्तु सचालक ने कहा कि वह तथा उस के मालिक के अहोभाग्य, यदि स्वामी जी ने कार में बैठने की कृपा की तो। उसने पुन. कहा कि उसके मालिक भी अन्दर गए हैं। परन्तु उन्हें जब ज्ञात होगा कि श्री स्वामी जी ने उनकी कार को धन्य जीवन किया, उनको अतीव प्रसन्नता और परितोष का ही अनुभव होगा। अत· हमारे स्वामी जी ने आसन ग्रहण किया और कुछ ही क्षणों में हम वायुवेग से 'आस्तिक समाज, मातु गा' में व्यवस्थित आयोजनों में सम्मिलित होने के लिए अग्रसर हो रहे थे, जहा हमारी दुस्तर-समस्या का एक दृश्य अभिनीत हुआ।

यहा पर स्वामी जी की उक्ति चरितार्थ हुई। "सन्यासी की कोई स्वकीय वस्तु नहीं होती, परन्तु उसे विश्व के अणु-परमाणु के उपयोग का अधिकार है।" लोकोक्ति तो यह कि सन्यासी का

स्वकीय अधिकोष भी नहीं, परन्तु वह विश्व के समस्त अधिकोषों के उपयोग का स्वामी है। इसी प्रकार सन्यासी का कोई स्वायत्त गृह या भवन या प्रासाद नहीं होता, परन्तु कोई भी गृह विश्व में नहीं, जिसमें निवास करने का संन्यासी को अधिकार न हो; क्योंकि संन्यासी अपनत्व और ममत्व के परिच्छिन्न-व्यवहार को निर्मूल कर चुका है। उसके लिए विश्व केवल एक परिवार ही नहीं, अपि च अद्वैत-स्वरूप है।

समाज का जीवन, समाज की संस्कृति, समाज की लोक-सभ्यता, समाज की बृहत्तर शान्ति और उसके साधारण और दैवी-धर्म उसकी विशाल-शक्तिपरायणता पर अधिष्ठित हैं। सन्यासी ही समाज का प्रथम सभ्य व्यक्ति है। संन्यासी ही समाज को जीवन की समस्याओं से परिचित कराता रहता है और उन समस्याओं के हल करने में वरदहस्त भी सिद्ध होता है। वह विश्वात्मकता का सर्वव्यापक विकास और सर्वतोमुख अभ्युदय है, जो समय-समय पर जनता को सजग करता और उसे अमरत्व, सत्य और ज्योति की ओर जाने की अभिमन्त्रणा और अभिप्रेरणा देते रहता है।

[५]

नक्षत्रमालिका उदित हो चुकी थी। हम लोगों की कार मातुंगा की घनी बस्तियों के मार्गों को पार करती जा रही थी। मार्ग पर जनमंडल प्रबल प्रभंजन के समान एक ही ओर

को उन्मुख हो रहा था। जनता 'शंकर मठ' के चारों ओर योजनाकार-वृत्त बनाए, कई मार्गों को रोक कर खड़ी थी। हमारी कार को गेरू-संशोभित देख, उनको यह जानने में देर नहीं लगी कि स्वामी जी आ रहे हैं। 'शंकर मठ' के अधिकारियों ने बहुत प्रयत्न किया कि जनता मार्ग दे और स्वामी जी अटारी पर से यथायोजित कार्यक्रम सम्पन्न करें। परन्तु यह कब सम्भव था कि योजनाकार-परिवृत्त-जनता अलौकिक महात्मा की सान्निधि में लोक-व्यवहार के नियन्त्रण को स्वीकार करती। यह तो नहीं हो सकता कि कहीं धन-वितरण हो रहा हो और आप सोचें कि धैर्यसहित प्रतीक्षा करनी चाहिए।

हमें साहस नहीं हुआ कि स्वामी जी को स्वतन्त्र छोड़ दें। हमने जान लिया कि किसी भी अवस्था में न तो जनता ही रास्ता दे सकेगी और न कोई अन्य आयोजन ही हो सकेगा। अतः हम 'भजन समाज' की ओर चले। परन्तु वहां का सम्मेलन और भी गहनतम था। दुकानें बन्द हो चुकी थीं। कार के जाने का कोई भी मार्ग नहीं था।

हमारे शरीर से स्वेद की अनवरत धारें प्रवाहित थीं। कार के अन्दर बैठे बैठे हमारी स्पन्दन-शक्ति में उष्णता का संचार हो चुका था और स्वामी जी तो किसी अदृश्य अभिनय को देख रहे थे। उनकी पलकें पूर्णतः स्थिर थीं, जिसमें बाहर के दृश्य प्रतिबिम्बित हो रहे थे।

'भजन समाज' के अधिकारीवर्ग ने अनुभव किया कि स्वामी जी के लिए एक पग भूमि को नापना भी दुस्तर होगा। उन्होंने निवेदन किया कि स्वामी जी कार से न उतरें। परन्तु स्वामी जी ने एक न सुनी और घटना का सूत्रपात यहां तक हो गया कि स्वामी जी स्वयं कार के द्वार को खोलने लगे। किन्तु जनता ने द्वार की तिल-तिल भूमि को समाकीर्ण कर, द्वार खोलने का अवसर ही नहीं दिया। हमारे आश्चर्य का पारावार नहीं रहा, जब हमने देखा कि तृणावर्त पवन-संतुल्य भक्त-समाज के के वेग से हमारी कार अयन्त्रगति से पीछे की ओर प्रचलित हो रही थी, जो कुछ ही देर में चौराहे पर भी पहुंच गई। क्षण भर की देर थी कि कार के संचालक ने कुशलतापूर्वक कार को तीव्रगति से पीछे हटा कर, 'आस्तिक समाज' की ओर प्रयाण किया, जब लाखों वाणियां तुमुल-घोष कर रही थीं। हमने सुना वह तांडव गर्जन, "स्वामी शिवानन्द जी महाराज की जै" और सुनते गए, जब तक वे विजय ध्वनियां 'आस्तिक समाज' की दूरी में अन्तर्हित नहीं हो गईं।

कुछ ही देर में 'आस्तिक समाज' का मनोहर जनसमागम दृष्टिगोचर हुआ। वहां विशेषता यह थी कि सभी कीर्त्तन में दत्तचित्त थे। ज्यों ही स्वामी जी कार से उतरे, त्यों ही *'स्वामी जी आ गए' का यह वाक्य एक बालिका के मुख से प्रस्फुरित होता* हुआ, तड़ित्पल में ही कई सहस्र भक्तों की वाणी का सुमन्त्र-सा हो गया। तो फिर क्या कहना ? सिन्धुपति का उदय और

साहौदर्य और विश्वात्मकता ने सूत्रपात करना था; क्योंकि लाखों हृदयों की शान्तिप्रियता ही कोटिशः हृदयों की शान्ति है। जिसमें प्रत्येक व्यक्ति का अपना-अपना व्यक्तिगत, परन्तु अनवरत तथा कठोर कर्तव्य है और यही व्यक्तिगत शान्ति ही कालान्तर में विराट्-शान्ति का अभ्युदय करती है। ऐसी शास्त्र की वाणी है।

(६)

२८ अक्तुबर। विगत रात्रि के अथक परिश्रम के कारण हमारे नेत्रों में अग्नि-ज्वाला की भीषणता सी व्याप रही थी। नेत्र खोले नहीं खुलते थे। परन्तु स्वामी जी पूर्ण स्वस्थ थे। उनमें वही स्फूर्ति थी। अतः "वनिता विश्राम कन्या विद्यापीठ" तथा 'सुनिता विद्यालय' में क्या-क्या हुआ, हमें प्रत्यक्ष ज्ञात नहीं। परन्तु श्रुतिप्रमाण से प्रतीत हुआ कि अत्यन्त आनन्ददायी तथा हार्दिक-स्वागत का आयोजन हुआ था और स्वामी जी ने भी अत्यन्त मधुर स्वरों में कन्याओं को अपना सन्देश दिया।

जब स्वामी जी लौट कर 'लक्ष्मी बाग' में आए तो रविरथी आकाश की आधी सीमा नाप चुका था।

सायंकाल को ६॥ बजे तक स्वामी जी ने भक्तों के आवास-गृहों को पवित्र किया। उन्हें जीवन को सफल तथा संस्कृत बनाने का उपदेश दिया। "संसार के प्रत्येक कर्म को कुशलतापूर्वक करते हुए, प्रत्येक प्राणी आत्म-सिद्धि को प्राप्त कर सकता है।" स्वामी जी ने कीर्त्तन और भजन द्वारा सबको यही उपदेश

दिया कि "मनुष्य कभी भी ईश्वर-नाम को न भूले, क्योंकि जीवन की सच्ची सफलता ईश्वर-भक्ति पर निर्भर रहती है।" साधारण श्रेणियों के व्यापारियों के परिवारों को मितव्ययिता का उपदेश देते हुए आपने कहा कि "वैभव-विलास में रत्ती भर द्रव्य भी व्यय नहीं करना चाहिए।"

इस प्रकार स्वामी जी ने द्वार द्वार पर जा कर, धर्म और संस्कृति में छिपे लोकधर्म तथा मानव कर्तव्य के पवित्र-मन्त्र का उच्चारण करते हुए, सायंकाल के ६॥ बजे "आल इण्डिया रेडियो" के बम्बई स्टेशन में प्रवेश किया और अपना सन्देश दिया। तदुपरान्त महाराज ने महामण्डलेश्वर श्री महेश्वरानन्द जी के आश्रम में आयोजित सत्संग में कीर्त्तन करने और आशीर्वाद देने के हेतु प्रयाण किया। रात्रि का प्रथम प्रहर व्यतीत हो रहा था।

× × × ×

अश्वत्थ-विटप के नीचे सत्संग प्रारम्भ हुआ। वेदस्वर के पर्जन्यनाद ने हृदय-प्रदेश के दानव पर कुलिशाघात किया। महिलाओं और बालकों, कन्याओं और वृद्धों, युवक और महिलाओं का अहोपुण्य तीर्थीकरण था यह।

सत्संग के उपरांत स्वामी जी ने 'लक्ष्मी बाग' में प्रवेश किया तो अर्धिवनोदयकाल का समारम्भ होने वाला था।

(७)

२६ अक्तुबर। हमारे बम्बई-निवास का अन्तिम दिन था। अत प्रात काल होते ही नगर के महोच्चपदस्थ नागरिको का आना प्रारम्भ हो गया। स्वामी जी से यह प्रार्थना की गई कि वे अनाच्छादित रथ पर नगर भ्रमण करें, अन्यथा जन-पवन का वेग 'लक्ष्मी बाग' मे सहन नहीं हो सकेगा। अतः अनाच्छादित रथ के ऊपर स्वामी जी विराजे। नगर में सहसा ही यह समाचार प्रसारित हो गया कि स्वामी जी सबको दर्शन देने आ रहे है। दामिनी के समान सबके हृदय स्पन्दित होने लगे। अटारिया कुलवधुओं से सजने लगीं। मार्ग के दोनो ओर पुरवासियो की पक्तिया शोभित होने लगीं।

ऊपर से पुष्पवर्षा हो रही थी। सिदूर की लाली वायुमडल मे नृत्य कर रही थी। स्थान-स्थान पर कीर्त न और भजन का उपक्रम प्रचलित हो रहा था। झाझ और करतालें, मृदग और शहनाइया और मँजीरे बज रहे थे। वह शान्ति का शुभ मुहूर्त था, जब जनता ने शान्तिपूर्वक शान्ति के अवतार को देखा, जब जन जन की वाणियों से रामनाम प्रस्फुरित हो रहा था, प्रणव की ध्वनि जाग रही थी, वेद के गीत गूँज रहे थे और हरिनाम की पयस्विनी उदित हो रही थी। मूक भी गाते थे और अशक्तगण भी नाचते थे।

यह था हमारी बम्बई नगरी का दृश्य, जिसे लक्षशः नागरिको ने देखा और अपने हृदय मे अंकित कर लिया।

उन्हें ज्ञान हो गया कि किसलिए उनको स्वामी जी के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। बम्बई पवित्रतीर्थ सन्तों की भूमि है। तत्फलत: उनके हृदयों में सन्त-परम्परा के संस्कार सजीव हैं; जिन्हें अपने जीवन से निर्मूल करना किसी भी प्राणी के लिए सम्भव नहीं और जो समय पाते ही अंकुरित हो जाते हैं और दर्शनमात्र से ही पनपने लगते हैं तथा स्तुतिपरायण होने से फल भी जाते हैं!

× × × ×

तदुपरान्त हम 'शान्ता क्रूज विमान केन्द्र' के पास पहुँचे, जहां बम्बई प्रान्तीय 'दिव्य जीवन मंडल' की आधार-शिला को स्वामी जी ने अपने करकमलों से प्रतिष्ठित करना था। श्रीयुत् स्वामी कृष्ण चैतन्य जी महाराज के उद्योग से दिव्य जीवन मंडलान्तर्गत इस शाखा के शिलान्यास के लिए, नगर-कोलाहल से अतिदूर, वह सुन्दर क्षेत्र निश्चित किया हुआ था।

बम्बई-प्रान्तीय 'दिव्य जीवन मंडल' की आधार-शिला को संप्राणित कर, स्वामी जी शान्ता क्रूज (उप-नगर) में प्रविष्ट हुए। प्रवेश करते ही हमने अपूर्व जन-समारोह देखा। कह नहीं सकते कि कहां तक वह जनक्षेत्र विस्तृत था। हमने तो मार्गों और उपमार्गों, झरोखों और अटारियों, छतों तथापि तिल-तिल भर भूमि को जनपदसमाकीर्ण देखा। अपने सुन्दर भारतीय वेष में जनता महासौन्दर्यान्वित दृष्टिगत हो रही थी; जिसने सत्वप्रधान शान्ति के महारथी का अभिनन्दन किया।

१५ मिनट तक स्वामी जी ने उन्हें हरिनाम का माहात्म्य और महद् पुण्य प्रदान किया । तत्फलत व नागरिक आध्यात्मिक रीति का ही अनुपालन करते हुए, अपने गृहमग की ओर शान्तिपूर्वक पग धरते हुए, प्रस्थित हुए । जनता व विसारित हो जाने पर स्वामी जी श्री पुरोहित परिवार को दर्शन देने उनके आवास-गृह में प्रविष्ट हुए। महामण्डलेश्वर श्री महेश्वरानन्द जी महाराज भी वहां विद्यमान थे तथा दिग्विजय मण्डल के अन्यान्य स्थानीय सचालक सहयोगी भी।

पादपूजा का उपक्रम प्रारम्भ हुआ तथा सभी उपस्थित महानुभावों ने बम्बई के नागरिकों का प्रतिनिधित्व करते हुए स्वामी जी की पादपूजा की । दिन के दो बज चुके थे।

सायकाल के ४ बजते ही स्वामी जी ने सुविख्यात "भारती विद्या भवन' में पदार्पण किया । बम्बई विश्वविद्यालय के उप-कुलपति जस्टिस् श्री भगवती जी ने स्वामी जी का अभिनन्दन सम्पन्न किया । 'भारती विद्या भवन' नगर के विद्वानों से आपूर्ण था ।

माननीय कुलपति महोदय ने अपने विवरण में स्वामी जी का पूर्ण परिचय दिया और उनके लोकोत्तर ज्ञानयज्ञ की प्रशंसा की "स्वामी जी बीसवीं शताब्दि के महान् दार्शनिक, योगी, सन्त तथा कर्मयोगपरायण महात्मा हैं !" इस प्रकार के वाक्यों के निःसृत होते ही जनता ने करतल-ध्वनि द्वारा माननीय उप कुलपति के विचारों का अनुमोदन किया ।

अपने संदेश में स्वामी जी महाराज ने योग की प्रणाली का व्यावहारिक-विश्लेषण करते हुए, सूचित किया कि "वायुमार्ग से जाना, अदृश्य हो जाना तथा मनोनुकूल-शरीरों की प्राप्ति करना तथा तथाविध सभी सिद्धियां योग की मनोवैज्ञानिक शाखायें हैं, किन्तु सच्चा और कल्याणकारी योग तो अपने जीवन को पतन से उत्थान की ओर ले जाना है। अन्धकार से प्रकाश की ओर, दुराचरण से सदाचरण तथा स्वार्थपरता से विश्वकल्याण की ओर अपनी बौद्धिकता तथा कर्मपरायणता को जाग्रत करना ही योग है। भौतिकता, नास्तिकता, हिंसा, असत्यता, कामुकता, धूर्तता से विरत होकर पारमात्मिकता, ईश्वरीयता, अहिंसा, सदाचरण, इन्द्रिय-संयम तथा शीलपरायणता के मार्ग की ओर अपनी बुद्धि, अपने कर्म तथा अपनी वाणी को अभ्युदित करना ही योग है। योग यदि अपने अन्दर नहीं प्राप्त होता तो और कहीं भी प्राप्त नहीं हो सकता।"

इस प्रकार ५ बजे तक उपस्थित महानुभावों ने स्वामी जी का व्याख्यान दत्त-चित्त होकर सुना। जिस योग को उन्होंने इन्द्र-जाल के समान एक विज्ञान माना था; जिस योग की प्राप्ति करने के लिए अरण्यों मे जाना ही उनका विचार था; उसी योग का सारगर्भित परन्तु सरल तथा समुचित-विश्लेषण समझते ही उन्होंने निश्चय कर लिया कि यदि योग का मार्ग हमारे समीप ही है तो हम निश्चयतः उसको अपने दैनिक-जीवन मे व्यवहृत करेंगे और अपने पूर्वजों तथा आचार्यों के सद्-उत्तराधिकार

(२)

३० अक्तूबर। चन्द्रवासर के उदय होने से पहिले ही दिग्विजय-मण्डल अमलसाद के ग्राम केन्द्र मे प्रविष्ट हुआ। स्टेशन पर पहुचते ही हमने जब टूरिस्ट कार के विशाल द्वारो को खोला तो हमारी आखें किसी अलौकिक-विस्मय में लवलीन हो गईं। श्वेत वस्त्रधारी सौराष्ट्रीय जनमण्डल करताल, मंजीरे, झाझ तथान्य वाद्यो के स्वर-मे-स्वर मिलाता हुआ, देवता के शुभ्र गीतो की मन्दाकिनी मे अनन्त सागर की ओर बहता जा रहा था।

अमलसाद

गलियो मे ग्रामदेवता दौड़ रहे थे। जन-कलरव से विटप-दल रह-रह कर काप उठते थे। आज ही न जाने कितने दिनो के उपरान्त ध्वजाओं ने अपने मस्तक ऊंचे किए। ग्रामस्थ ग्वाल बालों के समुदाय ग्राम मे प्रविष्ट होती हुई रथयात्रा की अधिकाधिक संख्या को अधिकतम करते, विजय मन्त्रोचारण कर रहे थे। ज्यो ज्यो विजय-रथानुगामी विजय-सेना अग्रसर होती, त्यो-त्यो धूल के बादल, भूमिधरो के पथ पर से जागते हुए, आदित्य के रथ को भी आवर्णित कर देते थे।

अमलसाद की इस विजय-यात्रा का श्रेय जितना श्रीयुत् भद्रशकर भट्‌जी को है, उतना ही श्रीयुत् मगनलाल वैद्य जी तथा 'गगेश्वर स्मरण कार्यालय' के सदस्यो को भी है, जिन्होने उस ग्राम मे पार्थिव-स्वर्ग की सृष्टि की थी।

स्थानीय सुविशाल भवन में श्री स्वामी जी ने ग्राम्य-संस्कृति की कीर्ति को समुच्चरित करते हुए, उपस्थित भक्त-समागम को सन्देश दिया। उन्होंने आचार्य के उपदेशों को सुना और नेत्रों को मूंद कर उनको अपने हृदय में समवर्तित कर लिया। जब कीर्त्तन का समारम्भ हुआ तो जनता ने जो कुछ भी अपना था, सब लुटा दिया और वे अपने-अपने आश्रमों को लौटे तो उनके विशाल-हृदयों से नवजीवन का संगीत जाग रहा था, क्योंकि उन्होंने अपने को खाली कर दिया था। अन्यथा आत्मदेव मुरली में स्वर भर ही कैसे पाते ?

अपराह्नकाल के अस्त होने के संप्रतिपूर्व अमलसाद के वृक्षों की छाया के नीचे, लगभग शतार्द्ध सहस्राधिक ग्रामप्रभु संगठित हो चुके थे। उस दिन उनके जीवन का अपूर्व त्यौहार था, जबकि उन्हें गुरुकृपा का वरदान प्राप्त होने वाला था।

स्वामी जी ने भी अपना संदेश देते हुए, ठीक वही वचन उच्चरित किए, जिनकी आशा में तीसों मील दूर से ग्राम्य प्रभुता आई थी। ज्ञानगंगा निरन्तर प्रवाहित थी और तीर्थयात्री उसमें स्नान कर रहा था। अपने जीवन को अमृत जल से अभिषिक्त करता हुआ, परम दिव्यतम यश का भागी बन रहा था। पुजारी के मन्दिर में दीपक जल रहा था, जिसके प्राचीर्य-आलोक ने उसे निज इष्टदेव की महिमामयी छवि के दर्शन कराए।

स्वामी जी के सन्देश के उपरान्त श्री नलिन भट्ट तथा श्री भद्रशंकर भट्‌ जी ने महाराज के सम्प्रति जनता की ओर से

अभिवन्दना समर्चित की। श्रीयुत् मगनलाल जी ने जनता की ओर से 'रजताङ्कित अभिनन्दन पत्र' को पूज्य गुरुदेव के चरणों में समर्पित करते हुए, आशीर्वाद की अभियाचना की। अन्तत सभी भक्तों की ओर मे शुभ-कामनाएँ प्रत्यक्त की गई।

दूसरे दिन 'शिवानन्द दिग्विजय मण्डल' ने पौ फटते ही बड़ौदा के लिए प्रस्थान किया।

(२)

३१ अक्तुबर। दिग्विजयवाहिनी ने बड़ौदा में प्रवेश किया।

बड़ौदा

'शिवानन्द दिग्विजय मण्डल' की स्थानीय स्वागत-समिति ने विश्वविश्रुत-यशस्वी को अभिवन्दना की। पुरवासीगण फूलों की मालाओं और धूपदीपादि से सम्पन्न होकर आये थे।

सर्वसम्मति से स्वामी जी महाराज के ठहरने का प्रबन्ध 'विठ्ठल मन्दिर' में किया गया, क्योंकि सार्वजनिक सम्मेलनो की सुविधाओं के उपयुक्त यह प्रसिद्ध स्थान किसी भी नगरवासी के लिए अज्ञात न था।

स्वामी जी ने यथासमय विट्ठल मूर्ति के पवित्र सन्निधान में सत्संग समारम्भ किया। उन्होंने गाया·······

"बुद्धि नहीं औ' देह नहीं हो, नहीं कभी तुम चंचल प्राण,
तीन गुणों से परम परात्पर, आत्मा हो तुम अमर महान्।

मानव-सेना प्रभु की सेवा, ऐसा दृढ़-विश्वास करो,
कर्म-करण की ममता त्यागो, रामचरण-रज-दास बनो ।
सरल, सुलभ-अति, प्रभु-पद दायक, सर्व सुगम है, भक्ति महान्,
कलियुग में केवल योग यही है, गावो हरिहर केशव राम।"

यही स्वामी जी का योग था, जिसकी छत्र-च्छाया में केवल वीतराग संन्यासी ही नहीं, किन्तु पुत्र धनादि-सम्पन्न गृहस्थी, मणिमुकुटरंजित राजवर्ग, दरिद्र, तथा अनाथ मानववर्ग समान रूप से स्थान पाते थे। अपने धर्मचक्र प्रवर्त्तन द्वारा स्वामी जी ने जनता के हृदयों में यह सन्तोषजनक भावना भर दी कि योग प्रत्येक प्राणी के लिए सम्भव है। अपने अपने नियत कर्मों को करते हुए भी, मनुष्य कर्मफल-त्याग द्वारा कर्मजनित-वासना का क्षय कर आवागमन की विश्रान्ति की भूमिका का सूत्रपात् करता है।

'विट्ठल मन्दिर' के दीर्घकालीन सत्संग के उपरान्त स्वामी जी ने दर्शनार्थी तथा मन्त्र-दीक्षाभिलाषी भक्तों की कामनापूर्ति की। घण्टों यही उपक्रम चलता रहा। गुरु और शिष्यों का मेला लगा हुआ था।

सायंकाल को 'गायकवाड़ विश्वविद्यालय' की उप-कुलाध्यक्ष महोदया श्रीमती हंसा मेहता के सभापतित्व में, बड़ौदा के नागरिकों की ओर से 'न्याय मन्दिर' में स्वामी जी का सार्वजनिक सम्मान सम्पन्न हुआ।

बड़ौदा महाविद्यालय के संस्कृताध्यापक श्री गोविन्दलाल ह० भट्ट जी महोदय ने अपनी स्वभावसुलभ काव्य-सलिला वाणी से स्वामी जी महाराज का यथायोग्य परिचय दिया। तद्पश्चात् श्रीयुत् टोडरमल चिमनलाल सावल बिहारी सेठ जी ने अपने प्राक्कथन में यह स्पष्ट बतलाया कि "स्वामी जी जनतन्त्र भारत के सर्वप्रथम धर्मचक्र-प्रवर्त्तक तथा आचार्य हैं।"

माननीय सेठ जी प्राक्कथन के उपरान्त श्री गो० ह० भट्ट जी ने स्वामी जी की यात्रा के माहात्म्य को आध्यात्मिक-पुनरुत्थान के रूप में सबके समक्ष प्रकट किया। उन्होंने सभापति की ओर से निवेदन भी किया कि स्वामी जी पवित्र-सन्देश देने की कृपा करें।

जनता के प्रतिनिधियों के सम्मान का प्रत्युत्तर देते हुए, स्वामी जी ने सर्वप्रथम आत्म-तत्व की मीमांसा की और क्रमशः यह परिज्ञान कराया कि "एक ही आत्मा में लोक लोकान्तर प्रतिष्ठित हैं। आत्मा सभी प्राणियों के हृदयों में भिन्न-भिन्न प्रतीत होता हुआ भी एक ही है। एक ही आत्मा के सर्वव्यापी होने से हमारे पारस्परिक भेदभाव की समस्या का कोई भी मूल्य नहीं तथैव हमारे सामाजिक तथा पारिवारिक-वैमनस्य की कोई सत्कारिता नहीं। एक ही तत्व की विभिन्न नामरूपात्मक-प्रतीति निःसार है और असत्य है। सत्य एक है और उसी का ज्ञान श्रेयस्कर है।"

लगभग ७० मिनट तक आचार्य का व्याख्यान प्रगतिमय रहा। तदुपरान्त श्रीमती हंसा मेहता ने जनता की ओर से

महाराज के चरणारविन्दों में अनेकों मानपत्र समर्पित किये। जनता ने जयध्वनि से हर्ष और उल्लास का प्रकाशन किया।

सभाविसर्जन के प्रतिपूर्व श्रीमती माता जी ने अपने दो शब्दों में हमारे उपरोक्त प्रसंग की ही पुनरावृत्ति की तथा स्वामी जी महाराज को जनता की ओर से प्रणाम किया।

(२)

१ नवम्बर। द्वितीय प्रहरोदय होते ही 'दिव्य जीवन मण्डल' की स्थानीय शाखा के सहयोगियों ने विराट् आयोजन किया हुआ था। श्रीयुत् के० पी० पाण्ड्या जी के अध्यक्षत्व में, मण्डल का दीक्षा-संस्कार सम्पन्न करने के लिए श्री स्वामी जी महाराज ने विराट् जनसम्मेलन के समक्ष सत्संग का उद्घाटन किया।

'दिव्य जीवन मण्डल' की शाखा को दीक्षित करते हुए, श्री स्वामी जी महाराज ने कीर्तन और भजन किए। दिन के १२ बज चुके थे।

दिग्विजयी स्वामी जी समण्डल अहमदाबाद की ओर प्रस्थान कर रहे थे।

\+ + + +

आनन्द, नाडियाड, मोहम्मदाबाद आदि स्थानो मे उत्सुक जनता को महातपस्वी की दिव्य-छवि के दर्शन कराती हुई, दिग्विजयिनी जब अहमदाबाद पहुंची तो हमने मानव-सागर को हिलोरें लेते देखा। मानो विशाल गगन मे रजत गंगा प्रवाहित हो रही थी।

अहमदाबाद

अभ्यर्थकों मे सर्वाग्रणी थे—श्री हरिदास अमृतलाल, श्री शान्तिलाल मेहता, श्री एन० बी० ठाकोर, श्रीमती केवलराम चेलारामणी, श्रीयुत् स्वामी माधवतीर्थ जी और गीता मन्दिर के अन्यान्य महात्मागण। गुजराती दैनिक 'सन्देश' के सम्पादक श्री एन० सी० बोदीवाला अशक्त होते हुए भी महाराज के स्वागत के लिए आए थे। उनका जर्ज्जर शरीर भी अपने कष्टो की परवाह न कर, महाराज के चरणो मे आ गिरा था। भक्ति की यह पराकाष्ठा थी; मानवता का यही स्वरूप दर्शन था; देवत्व की यह भूमिका थी और आत्मरत्न की ओर यही सकेत था · · सम्भवत राजपथ भी।

स्टेशन से विजयरथ चला, प्रसिद्ध 'गीता-मन्दिर' की ओर। गीताव्यास महामण्डलेश्वर श्री स्वामी विद्यानन्द जी महाराज ने यहीं मां गीता की पावन-प्रतिष्ठा की है। मन्दिर अति-भव्य और परम-पवित्र है। गीता के महानायक का संस्मरण तो है ही; साथ साथ भारतीय-संस्कृति की सार्वभौम सिद्धान्तपरायणता का उज्ज्वल रत्न भी है।

'गीता मन्दिर' में समारोहित भक्त-जनसमाज को दर्शन देकर, श्री स्वामी जी ने पुनः 'माणिक भवन' की ओर पदार्पण किया। वहां विराट् समारोह सम्पन्न होने वाला था। श्रीयुत स्वामी माधवतीर्थ जी महाराज भी वहां उपस्थित थे।

पुनः शिव जी की मस्ती आरम्भ हुई। कीर्तन-पर-कीर्तन; उपदेशों-पर-उपदेश। जनता में भक्ति का रंग गहरा होता गया। केवलमात्र सिर ही तो हिल रहे थे। कभी-कभी तालियां बज उठतीं तो कभी निर्जीव प्रतिमा के समान उपस्थित भक्त-समाज आत्मतन्मय-सा हो जाता। भक्ति और कीर्तन की सोमरसवती गंगा बह रही थी और मनुष्य जी भर कर अपनी प्यास मिटा रहा था। श्रीयुत माणिकलाल जी, जिनके भवन में सत्संग हो रहा था, किसी नवीन-चेतना में समाश्रित थे।

× × × ×

'माणिक भवन' में सत्संग के उपरान्त जनता 'गीता मन्दिर' की ओर दौड़ी आई। भक्तों की हलचल से मां का अंक लह-लहाने लगा और गोद भरने लगी। अबोध था बालक। अतः रोते और खिलखिलाते, गिरते और पड़ते स्नेहमयी के अंक में विश्राम पाने, ज्ञान और शरण-त्राण पाने आ रहा था।

रात्रि के मध्यप्रहर तक सत्संग का नशा गहरा रहा। सभी लोग भोजनादि की सुध-बुध खोए हुए, श्री स्वामी जी महाराज के

कीर्त्तन को सुनते रहे, गाते रहे और गाते ही रहे। कुमारी हरिबाला भी उसी सत्संग में थीं। उन्होंने अपनी कौमार्य-सुलभ वाणी द्वारा भगवान् की महिमा का उच्चारण किया और सुनने वालों के कानों में अमृत लहरी संप्रसारित कर दी।

(४)

२ नवम्बर। ब्रह्ममुहूर्त में ही 'गीता मन्दिर' पवित्र-विजयनाद से आपूरित हो उठा। मन्दिर के अध्यक्ष श्री स्वामी शिवानन्द जी ने हमारे महाराज को मन्दिरान्तर्गत सभी खण्डों और उपखण्डों का परिचय दिया। मन्दिर के नीचे भूगर्भखण्ड भी दिखलाए।

मन्दिर के पवित्र भागों की परिचयावलियां पाते-पाते लगभग ६ बज चुके थे। अतः स्वामी जी विशाल भवन में आए, जहां सत्संग का आयोजन किया हुआ था। महाराज ने ज्यों ही भवन-खण्ड में प्रवेश किया, त्योंही वहां पर उपस्थित नर-नारियों ने जयजयकार से गुरुदेव के प्रति अपने प्रणाम समर्पित किए। कुमारी हरिबाला ने कर्णामृतलहरी से सम्प्रोल्लसित हरिनाम-संकीर्त्तन की रसगंगा बहाई। उत्साहपूर्वक जनता ने भजन और कीर्त्तन में योग दिया। वे सब जीवन की कुटिलताओं को किनारे रख, आत्मिक-जीवन के महिमामय-स्तर पर आसीन थे।

'हिन्दी तत्वज्ञान प्रचार समिति' के मन्त्री श्री शान्तिलाल मेहता ने जनपदवासियों की ओर से श्री स्वामी जी के प्रति अभिनन्दन-

वचन संप्रकाशित किए। श्री रामलक्ष्मणाचार्य जी ने ओजस्वी वक्तृता में महाविभूति के प्रति जनता के प्रेम की अभिव्यक्ति की। तदुपरान्त श्री स्वामी आत्मानन्द जी महाराज ने श्री गुरुदेव के चरणों में नतमस्तक हो, पुनः सबके समक्ष महाराज के जीवन-विषयक अभिवचन प्रकट किए और महाराज के महिमामय जीवन का सम्प्रति-विशाल उद्देश्य प्रकाशित किया। "विशाल मानव समाज को सांसारिक-जीवन की संकीर्णताओं से जगा कर, उसे परमार्थ की अनुभूति कराना महाराज का प्रथम उद्देश्य है, जहां प्रत्येक मनुष्य मनुष्य-देह और मनुष्य-जीवन में ही आत्ममय सुन्दर और चिरन्तन-पद की प्राप्ति कर पाता है.........।"

अब स्वामी जी उपदेश देने उठे,—आनन्द और करुणा के विशाल-सागर के समान; जिसमें अनन्त-मोतियों का भण्डार निहित रहा करता है। उन्होंने गीत गाए और उपदेश दिए। जनता ने आनन्दातिरेक होकर, कीर्त्तन में योग दिया। तभी तो वह घन्टों तन्मय हो, अवतार-पुरुष के सान्निध्य में विमुग्ध रही।

व्याख्यान के अनन्तर श्री शान्तिलाल मेहता जी ने अपनी ओर से कहा—"श्री स्वामी जी महाराज वैदिक-संस्कृति के विशाल ज्ञान के पुनरभ्युदय और पुनर्प्रचार के लिए अवतरित हुए हैं। महाराज ने इस दिग्पर्यटन द्वारा वैदिक-महर्षियों की सन्तानों के अस्फुटभावों को विकास के पथ पर ला दिया है............।"

उसी दिन दोपहर के उपरान्त तीन बजे 'पत्रकार परिषद्' के अधिवेशन में अपना सन्देश देते हुए, श्री स्वामी जी महाराज ने स्पष्टतः और संक्षेप में कहा—

'सेवा, दया, मैत्री, आत्मशुद्धि और ध्यान द्वारा प्रत्येक मनुष्य सच्चे जीवन की प्राप्ति कर सकता है। सदा अच्छे बनो और अच्छे ही कामों को करो। जहां हो और जहां रहते हो, अच्छाई के अतिरिक्त सब कुछ को निःसार, मिथ्याचार तथा भ्रम समझ कर, त्याज्य जानो। अपमान और निन्दा के आक्रमणों को सहन करने की अपूर्व शक्ति धारण करो तथा 'मैं कौन हूँ' इस वाक्य पर सदैव विचारपरायण रहो। यही साधना है और यही एकमात्र साधना है ·····।"

परिषद् के सदस्यों ने चुपचाप सब कुछ अंकित कर लिया—विमुग्ध और विभोर हो, निर्वाक् और चकित हो।

× × × ×

,साबरमती की ओर। यही परम रम्यमाण साबरमती है; युगजनरंजन महात्मा गांधी जी का सर्वप्रथम आश्रम, जहां से उन्होंने महात्मा बुद्ध के त्याग की पुनरावृति करते हुए डाँडी यात्रा का श्रीगणेश किया था और जहां उनके चरणारविन्दो की अवशेष विभूति आज भी मानव-समाज को सत्य, अहिंसा और ब्रह्मचर्य का उपदेश देती आ रही है तथा उसे परमार्थ का पथ दिखला रही है। साबरमती की रत्ती रत्ती भर भूमि भी युगस्मरणीय आत्मवाद के गीतों की पुनरावृत्तियां करती रहती है।

आश्रम में पहुंच ही पाए थे कि श्रीयुत् प्रतापभाई ने आश्रम-वासियों के साथ महाराज का स्वागत किया। आश्रमवासी बालकों के साथ जब श्री स्वामी जी ने कीर्तन प्रारम्भ किया तो सम्पूर्ण वायुमण्डल प्रतिगुञ्जरित सा हो उठा; मानो आत्मविस्मृत हो नाच रहा था।

कुछ देर तक वहां रह कर, श्री स्वामी जी पुण्यतोया साबरमती के किनारों पर से होते हुए, 'प्रेमबाई हाल' की ओर अग्रसर हुए, जहां श्रीयुत् एन० वी० ठाकोर और श्रीयुत् सेठ हरिदास अक्षरतलाल उत्कण्ठित होकर, महाराज की प्रतीक्षा कर रहे थे।

'प्रेमबाई हाल' में श्री स्वामी जी के प्रवचन हुए। प्रवचनोप-देशोपरान्त प्रोफेसर दावर ने जनता को सम्बोधित कर, महाराज के जीवन पर व्याख्यान दिया। अन्तत. आशीर्वाद की याचना करते हुये, उन्होंने महाराज के दीर्घ-जीवन के लिये शुभेच्छाएँ प्रकट की। जयजयकार के साथ समागत भक्तसमाज ने भी उसका समर्थन किया।

× × × ×

इस प्रकार जन जन के मनों में पवित्र रामनाम की अमृतस्वा पयस्विनी को लोलायमान् करते हुये, प्रत्येक व्यक्ति को उन्नततर स्तर की ओर निरत करते हुए, तथा सदाचार,

सद्विचार, सर्वात्मभाव और सर्वभूतहित की गीता का सप्रतिप्रचार करते हुए, दिग्विजयी महाराज ने—युगविभूति और अवतार पुरुष ने विशालतम मण्डलों, मन्दिरों और विद्यालयों में, आश्रमों और भवनों में आदिदेव की प्राचीन गीता को दिग्यशस्वी किया; परम-परिमार्जित विचारधारा को जन्म दिया और धर्मस्थापन कर, एकदम नवीनतर योगप्रणाली पर जनता की बहुधाकार रुचियों को एकस्थापित किया।

उसी दिन हमने अहमदाबाद से जनतन्त्र भारत की राज्य-स्थली देहली की ओर प्रस्थान किया। गुजरात की मनोरमा भूमि पीछे रह गई। निशा के प्रगाढ़ अन्धकार में वायुमंडल से संघर्ष करती हुई, दिग्विजयिनी केन्द्र-पर-केन्द्रों का अतिक्रमण करती, वृक्षों, मार्गों, पर्वतों; अरण्यों और मरुस्थलों को पार करती हुई, त्वरित्-वेग से भारतीय-शासन की केन्द्रभूमि देहली की ओर प्रचक्रित हो रही थी। शीतोष्ण-कटिबन्ध की वनस्पतियाँ अपने-अपने सौन्दर्य प्रकाशित कर रही थीं। क्रमशः उत्तरापथीय शीतल वायु ने हमारा स्पर्श किया। अहो ! हम आनन्द-पुलकित हो उठे; हिमरञ्जित-शैलमाला से आती हुई मलयवायु का सुखद स्पर्श पा कर..........।

शिवानन्द दिग्विजय

विजय त्रयोदशी

राजधानी में

राजधानी में

४ नवम्बर। भारत की राज्यभूमि पूर्णतः सजग थी। लाखों की संख्या में जनपदवासी तिल-तिल भर भूमि को प्राच्छादित किए हुए थे। सबके हृदयों में उल्लास और नेत्रों में प्रतीक्षा थी। हिमालयानुवर्ती शिवगिरि अंचल के अवतार की धर्मध्वजा के नीचे लाखों प्राणियों को विश्राम देने, जनतन्त्र भारत की

अहोपुण्य राजधानी पूर्णत सन्नद्व थी, जबकि निशान वायु में फहरा रहे थे, शखो की ध्वनिथा वृक्षो के शिखरों तक जाग जाग कर, किसी के आगमन का निश्चय कर रही थीं।

अरुणोदय हुआ और ७॥ बजे ही थ कि यथापूर्व गति से वायु को चुनौती देती, दिशाओ और प्रदिशाओं को कम्पित करती, हमारी दिग्विजयिनी अपने दिगन्तोज्ज्वल शुभ्र कीर्ति के गौरव ललाट महाराज को लेकर, नई दिल्ली क स्टेशन पर आ खडी हुई। अभिनन्दन के लिए आए हुए नागरिको के नेत्रो मे अमित शीतलता का आविर्भाव हुआ, जब प्रथम बार महाराज ने 'टूरिस्ट कार' के विशाल द्वारो से उनको दर्शन दिए। सहसा ही आनन्दोद्रिक्त होकर, तालिया बज उठीं और रामनाम की ध्वनि से समस्त जनमण्डल पावन हो गया।

नगर के जन शिरोमणियो ने जनपद की ओर से स्वामी जी का स्वागत किया। माननीय गोस्वामी गणेशदत्त जी के तत्वावधान मे सयोजित 'महावीर दल' के स्वयसेवको तथा बाल-चरो ने महामन्त्र कीर्तन की स्वर्लहरी जगा कर, स्वामी जी का अभिनन्दन सम्पन्न किया और 'दिव्य जीवन मण्डल' की धर्म ध्वजा को लहराया।

'स्थानीय स्वागत समिति' के सचालको और सहयोगियो ने बारी-बारी से महाराज की वन्दना की। उनमे प्रमुख थे—श्री मोहनलाल सक्सेना (भूतपूर्व पुनर्वास मन्त्री), धर्मप्रचारधुरन्धर

श्रीयुत् गोस्वामी गणेशदत्त जी (अखिल भारत सनातन धर्म सभा के मुख्य-मंत्री), रायबहादुर श्री नारायणदास जी ('श्री विरला मन्दिर ट्रस्ट के मन्त्री), श्री एम० सी० दावर, भारतीय सेना के लेफ्टिनेन्ट कर्नल श्री ए० एन० एस० मूर्त्ति, नई दिल्ली कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष श्री ऋषि, रावसाहब श्री बी० एल० याद्रा, रावसाहब श्री ए० व्ही० रामन्, 'वैदिक संघ' के प्रचालक श्री वैद्यनाथन, दिल्ली की 'स्वागत समिति' के संचालक श्री डी० नारायण स्वामी चेट्टी तथान्य राज्याधिवर्ग एवं च पारावारविहारी जनसमुदाय ।

स्वागत-आयोजन यथानुकूल और यथाविधि सम्पन्न हुआ । श्री स्वामी जी सुप्रसिद्ध 'बिरला मन्दिर' की सीमाओं में संप्रविष्ट हुए''''जहां उनके स्थानीय-निवास का आयोजन श्रीयुत् बिरला जी की इच्छा के अनुसार किया हुआ था ।

× × × ×

दिनभर दर्शनार्थियों का समागम तैलधारावत् अविच्छिन्न रहा । सहस्रों को मन्त्रदीक्षा दी गई, उनकी समस्याओं का उत्तर दिया गया और उनके जीवन-पथ की आध्यात्मिक-कठिनाइयों के परिहार का मार्ग भी बताया गया । उस जनसमागम में राज्याधिकारीवर्ग तथा साधारण जनता तो थी ही, साथ-साथ अनेकों मतों के अनुयायी भी सम्मिलित थे; जिन्होंने धार्मिक

भेदभाव को तिलांजलि देकर, महात्मा के आशीर्वाद का महत्प्रसाद ग्रहण करते हुए, अपने पूर्वजों की परिपाटी को जीवन-दान दिया और अपने जीवन को सफल तथा तीर्थरूप बनाया।

गोस्वामी श्री गणेशदत्त जी की अहैतुकी कृपा का वर्णन किस प्रकार किया जाय ? श्री स्वामी जी की निवास-विषयक सुविधाओं का उन्होंने अतितर सुन्दर आयोजन किया हुआ था। सब कुछ होने पर भी वे बारम्बार महाराज के कुशल-समाचार पूछते रहते थे। उनकी धर्म-भावना को कोटिशः प्रणाम !

उसी दिन सायंकाल की नीरव वेला में स्वामी जी से श्रीयुत्जुगलकिशोरबिरलाजी का सम्मिलन हुआ। धर्मधुरन्ध सेठ जी तथा धर्मचक्रप्रवर्तक स्वामी जी के बीच विचारों का विनिमय हुआ। अनेकानेक विचारों की पृष्ठभूमि में आधार रूप से ईश्वर-कृपा को ही सर्वशक्तिमती बतलाते हुए, स्वामी जी ने जटिल राजनैतिक प्रश्नों का यही उत्तर दिया, "परमपिता की इच्छा ही सर्वशक्तिमती है। वे यथायोग्य कार्य सम्पन्न करते रहते हैं। मनुष्य उनके सामने केवलमात्र अस्तित्वहीन तत्व है; जिसका भूत, वर्तमान और भविष्य केवलमात्र माया की कपोल कल्पना है।"

लगभग ४५ मिनट तक यह साक्षात्कार हुआ, जिसमें विभिन्न परिस्थितियों का समाधान आचरणनिष्ठा में सन्निहित माना गया और यह बतलाया गया कि आध्यात्मिक-आचरण के उदय

होते ही सभी क्लेशों और सभी दुःखों की इति-श्री हो जाती है, परिस्थितियों के अन्धकार का निवारण हो जाता है और ज्ञानोदय की प्रभा में मानव-पथ स्वच्छ एवं च निर्मल बन जाता है।

रात को 'श्री विरला मन्दिर' के सामने प्रशस्त पण्डाल के नीचे 'सनातन धर्म प्रतिनिधि सभा' के तत्वावधान में श्री स्वामी जी का स्वागत हुआ। विशाल जन-प्रांगण में उत्सव की भूमिका को जन्म देते हुए, मुख्यमन्त्री श्री गोस्वामी गणेशदत्त जी ने महाराज के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकाशित की। अनन्तर जनता ने श्री गोस्वामी जी के मुखारविन्दों से 'शिवगिरि अञ्चल' के तपस्वी की महिमा के मन्त्र सुने और अपने जीवन को पवित्र माना। "धर्म प्राण हमारे स्वामी जी महाराज परात्पर ज्ञान की परम महनीय भूमिका में समधितिष्ठित रहते हुए भी जन-कल्याण के प्रशस्त कार्य को सुस्थिररूपेण संचालित कर रहे हैं; जिसका सूत्र विराट्-मानव समुदाय को एकता के विचारों में ग्रथित करता जा रहा है ...." प्रवचन देते हुए श्रीयुत् गोस्वामी जी ने यही कहा था।

तत्परतः हर्षनाद से विजयान्वित-स्वरूप के तेज को प्राप्त हुए स्वामी जी मंच पर उदित हुए हिरण्यगर्भ की स्वर्णप्रभा के समान; मानो वेदों की ऋचाओं का उच्चारण कर रहे थे। सनातन धर्म पर व्याख्यान दिया और उस धर्म की व्यावहारिकता का [illegible]

"किन्तु धर्म आपके जीवन का आत्मप्राण है, जिसका व्यवहार करने से ही मनुष्य-संज्ञा निर्धारित की जा सकती है। जीवन का प्रत्येक कर्म धर्म की कसौटी है। जीवन की भावनाएँ ही धर्म का निर्णय करती हैं। सदाचार ही धर्म है और ईश्वर-प्रणिधान ही धर्म है। आध्यात्मिक-भावना में अपने जीवन का निर्माण करना ही धर्म का व्यवहार है और परहितपरायणता ही धर्म की भूमिका है; जहा प्रत्येक मनुष्य मनुष्यत्व से परे देवत्व और उससे भी परे आत्मत्व की विभूति के प्रोज्ज्वल दर्शन करता है·······" इस प्रकार प्रवचन-प्रवाह प्रतिप्रवाहित रहा। दूर-दूर से आए हुए यात्री उसमें स्नान कर रहे थे, प्यास बुझा रहे थे और उसकी पूजा कर रहे थे।

तदुपरान्त श्रीयुत् एन्० व्ही० गडगिल् महोदय तथा श्रीयुत् दीनानाथ 'दिनेश' जी के व्याख्यान हुए। जब सभा विसर्जित हुई तो मध्यप्रहरीय अन्धकार प्रगाढ़ होता जा रहा था।

(२)

५ नवम्बर। प्रातः काल 'योगाश्रम' में श्री स्वामी जी का भाषण हुआ। इस अवसर पर श्री बृजलाल नेहरू भी उपस्थित थे। 'योगाश्रम' के संचालक श्रीयुत् आत्माराम जी ने, जो पूर्व-लाहौर के प्रसिद्ध योगनिष्ठ प्रकाशदेव जी के अनुयायी हैं, स्वामी जी का सप्रेम अभिवादन किया।

भूमिका वा सूत्रपात करते हुए श्रीयुत् बृजलाल नेहरू ने कहा, "स्वामी जी का परिचय अनावश्यक है, क्योंकि सारा संसार उनको भली भाँति जानता है" लाहौर के दिनों की याद दिलाते हुये आपने कहा, "मुझे स्वामी जो के दर्शनों का प्रथम सौभाग्य पूर्व-लाहौर मे हुआ, जहा महाराज जी ने हरिकीर्तन की लहर जगाई थी।"

श्री बृजलाल नेहरू की प्रस्तावना के उपरान्त स्वामी जी का योग-विषयक भाषण हुआ। आपने कहा "प्रत्येक को चाहिये कि वह नित्यप्रति योगासनों का अभ्यास करे। योगासनों के अभ्यास से न केवल शरीर की पुष्टि होती है, अपि च मानसिक शक्ति के बन्द द्वार भी खुल जाते हैं और आत्मज्ञान का प्रकाश प्रदिशि जाग्रत होता है।"

श्री स्वामी जी के उपदेशों के उपरान्त श्रीयुत् प्रकाशदेव जी ने अपने पुराने लाहौर के दिनों की पुनरावृत्ति की, जब कि उन्होंने स्वामी जी के दर्शनों का प्रथम सौभाग्य प्राप्त किया था।

अन्त में 'विधान-परिषद्' के सदस्य पंडित ठाकुरदास भार्गव ने, जो उस सभा के अध्यक्ष थे, स्वामी जी के प्रति अपना प्रणाम समर्पित किया और आशीर्वाद का आग्रह भी।

'योगाश्रम' के उपरान्त श्रीयुत् जुगलकिशोर बिरला जी के निवास-गृह में श्री स्वामी के पदप्रवेश हुये और 'बिरला गृह' पवित्रतम हुआ। इसी अवसर पर महात्मा गान्धी जी के 'प्रार्थना-भवन' के दर्शन भी सम्पन्न हुये।

दोपहर को १२ बजे तक 'बिरला मन्दिर' के सामने प्रशस्त पंडाल के नीचे जनता की ओर से महाराज की पादपूजा सम्पन्न हुई। पादपूजा के अनन्तर श्री स्वामी जी ने कई भक्तों के निवास-स्थानों को परम मन्त्र में दीक्षित किया। भारतीय सेना के लेफ्टिनेन्ट कर्नल श्री मूर्त्ति, यातायात विभाग के मन्त्री श्री वाय० एन० सूक्ताङ्कर महोदय के नाम उल्लेखनीय हैं, जिनके घरों में जाकर स्वामी जी ने 'राजवर्ग-द्वारा धर्मप्रचार' की लहर प्रसारित की। स्टेट्स मिनिस्ट्री विभाग से श्रीयुत जी० आर० चौनल भी श्रीयुत सूक्ताकर के निवास-स्थान में उपस्थित थे, जिन्होंने उस सत्सग में योग दिया था।

उपरोक्त दोनों महानुभावों के निवासस्थान को दीक्षित करने के उपरान्त स्वामी जी 'विधान परिषद्' के सदस्य और भूतपूर्व पुनर्वास मन्त्री श्रीयुत् मोहनलाल सक्सेना के आवास गृह को पवित्र करने गए।

तथा, सायंकाल के सम्प्रतिपूर्व 'दिग्विजय मंडल की स्वागत समिति' के तत्त्वावधान में दिल्ली का 'सार्वजनिक भवन' नगर के जनशिरोमणियों से आपूर्यमाण था। माननीय न्यायाधीश श्रीयुत् पातञ्जलि शास्त्री जी 'स्वागत समिति' के अध्यक्ष-पद को सुशोभित कर रहे थे। माननीय न्यायाधीश श्रीयुत चन्द्रशेखर अय्यर (सुप्रीम् कोर्ट आफ् इन्डिया), श्रीयुत

मोहनलाल सक्सेना (विधान-परिषद् के सदस्य), श्री बु
नेहरू, श्रीयुत अब्दुल मजीद खां (सोवी अरेबिया में भा
भूतपूर्व राजदूत) तथान्य राज्याधिकारीगण एवं च भक्ति
समन्विता जनता 'सार्वजनिकभवन' में महात्मा के सन्दे
सुनने, शान्त तथा नीरव-वातावरण की सृष्टि करत
खड़ी थी।

मंगलाचरण हुए। समिति के संचालक ने प्रस्ताव
सूत्रपात किया और सभा प्रारम्भ हुई। धाराप्रवाहिक व्या
हुए—महात्मा के जीवन-रहस्य को विमुक्त करते, और
यशश्चन्द्र को कीर्तिमती ज्योत्स्ना से आचन्द्रांकित करते
श्री आनन्द स्वामी सरस्वती जी महाराज का व्याख्यान
श्रीयुत मोहनलाल सक्सेना जी ने भी महात्मा के प्रति
अर्चना समर्पित की। वाग्मंजरी से सुशब्दललिता पुष्पा
को चुन-चुन कर, श्री अब्दुल मजीद खां ने भी बिल्वारण
के महर्षि की पूजा की और आशीर्वाद की अभियाचना भी

"अपने को विमुक्त करो बन्धनों से" सबने स्वामी जी के
सुने, "यदि चाहते हो अप्रतिहत कल्याण और अनन्त की
विश्राम तथा परमात्मा का आनन्ददायक सन्निधान..... !"
जी कहते गये, अपने प्रवचन। आत्मा के गुणों का व्य
किया, सदाचार की विवेचना की। सदाचार और धर्म,
और धर्म, मनुष्य और धर्म, राजनीति और धर्म, व्यवहा

धर्म—सब की एकता का सिद्धिकरण किया और इन सब मे परमात्मा की ही सर्वव्यापकता को दिग्दर्शित किया।

स्वामी जी की अनहत गीता को राजधानी के आत्मप्राण सुनते गये। उनकी आत्मा प्रफुल्लित होती गई और उनकी चेतना विकसित। उनका संकीर्णवाद संकुचित होता गया और उनका लोकव्यवहार गलित। पवित्रता रही और कलुषता का निराकरण हुआ। आत्मा का सन्निधान प्राप्त हुआ; और हुआ अनात्मा का तिरस्कार।

अन्त मे माननीय अध्यक्ष श्रीयुत् पातजलि शास्त्री जी ने स्वामी जी की दीर्घायु के लिये परमात्मा से अभियाचना की और कहा—"स्वामी जी इसी प्रकार धर्मसंस्थापन का कार्य युगानुयुगों तक करते रहें—मानव को आत्मक्षेम, आत्मकल्याण और आध्यात्मिक-मोक्ष की ओर प्रेरित करते रहें अपि च उपनिषद् के देश, वेदों की भूमि के यश को अक्षुण्ण और कल्पान्तव्यापी बनाए रखें"

'वैदिक सघ' के पुरोहितों के वेदोच्चारण के उपरान्त सभा विसर्जित हुई—अपनी छाप सहस्रो हृदयो मे अमिट बना कर; जिसका आधार था स्वामी जी का अतुलेय व्यक्तित्व और उनका तपोज्ज्वल ज्ञान।

× × × ×

उपरोक्त सत्संग करने के उपरान्त जब हम 'बिरला मन्दिर' के प्रशस्त पंडाल मे पहुंचे तो रात के ६॥ बज चुके थे। हिमांचलागता शीतल वायु बह रही थी और लोग कांप रहे थे। किन्तु स्वामी जी के आते ही पुनः योगाग्नि का संचार हुआ और वे लोग अपने शरीर की सुध-बुध भूल गए। स्वामी जी के कीर्तन और भजन हुए—उपदेश भी तो। आनन्द और परमानन्द में समाश्रित थी जनता। तीव्रगति से बह रहा था मलय-पवन; मानो भक्ति की हिम-परीक्षा हो रही थी। आँखें खोले नहीं खुलती थीं। हाथ पसारे नहीं पसारे जाते थे। परन्तु रामनाम के गुण गाने के लिये वाणी जीवित थी; और थी सतत-सन्नद्ध। क्या बच्चे और क्या युवक, क्या स्त्रियां और क्या पुरुष—सभी ने मानो पंडाल को नहीं छोड़ने की शपथ खा ली थी।

अन्ततः मध्यप्रहर की रजनी ने सत्संग की मधुरता को सहस्रों जीवों में तन्मय देखा। उन सब लोगों के साथ श्रीयुत् जुगलकिशोर बिरला भी जा रहे थे—भक्ति और आनन्द से आप्लावित, मोक्ष के विचारों में लीन तथा परम शान्ति की भावनाओं से अभिरंजित।

(३)

६ नवम्बर। ८॥ बज चुके थे। राजघाट की दिग्विश्रुता भूमि दिव्य हलचल से जाग उठी। सत्य, अहिंसा के पुजारी की

आत्मा के सन्निधान में आरण्यक-शान्ति के संस्थापक ने राम-ध्वनि जगाई, जो उसके निरंजन ज्ञान का प्रशान्त राग था और जिसकी एकमात्र सत्ता को प्रतिष्ठापित मान कर, उसने जन-जागरण का श्री–गणेश किया। धूप, दीप, नैवेद्य और आराधना से राजघाट सुरभित हो उठा। पुष्पों की नयन-रंजक राशियां युगनिर्माता गान्धी जी के हृदयधन 'रामनाम' का आलिङ्गन करने लगीं। उसी समाधि के सन्निधान में सहस्रों व्यक्ति श्री स्वामी जी के साथ समाहित-मनसा कुछ क्षणों तक पारमात्मिक आनन्द लूटते रहे; ध्याननिष्ठ रहे और भक्तिनिष्ठ भी।

दिन के १॥ बजते ही भारत के सेनापति जनरल के० एम्० करियप्पा और स्वामी जी का सम्मिलन हुआ।

उस दिन के भोजन में स्वामी जी तथा माननीय सेनापति के अतिरिक्त मेजर-जनरल ए० एन्० शर्मा की पत्नी और पुत्री ने भी योग दिया। पौने तीन बजे तक परस्पर सम्भाषण होता रहा। कीर्तन हुए और भजन भी; तथा हुई उपदेशों की जीवन-पावनी वर्षा।

माननीय सेनापति के निवासस्थान से स्वामी जी ने 'आल इण्डिया रेडियो, दिल्ली' के प्रतिष्ठान में प्रवेश किया और 'प्रसारण केन्द्र' में गए; जहां से राज्याधिनिर्माता समय समय पर राष्ट्र को अपनी वाणी सुनाते और विश्व की नीतियों को प्रभावित करते रहते हैं।

'रेडियो प्रतिष्ठान' का वह सौभाग्य था, क्योंकि विश्व की कुटिल नीति को परिवर्तित करने के लिए एक युगावतार उसकी सीमाओं में प्रविष्ट हुआ। प्रतिष्ठान के अधिकारियों ने सादर और सभक्ति युगविभूति की वाणी को आकाश की विशालता में प्रसारित करते हुए, राष्ट्रव्यापी किया।

धर्म की सार्वभौमिकता पर स्वामी जी ने आकाशवाणी की "यह निश्चयतः ईश्वर से आवृत्त है। ईश्वर के अतिरिक्त और जो कुछ है, वह माया है। मनुष्य सत्य को भूल असत्य को ग्रहण करता है; अतः दुःखी जीवन को प्राप्त होता है। सत्य पदार्थ की ओर अपनी भावनाओं को उन्मुख करने से मनुष्य परम-शान्ति का अनुभव करता है; जिस शान्ति का विद्युद्-गृह प्रत्येक प्राणी के हृदय में ही है, बाहर नहीं। धर्म ईश्वर को कहते हैं; ईश्वर के नाम पवित्र आचरण और पवित्र वचनों को कहते हैं। धर्म मनुष्य को पृथक् नहीं, किन्तु उसकी सभी विभिन्नताओं को एकता के सूत्र में ग्रथित करता है। धर्म ही मनुष्य की एकता के जीवन का समाधान है। यदि धर्म की ग्लानि हुई तो मनुष्यत्व की ग्लानि समझनी चाहिए और यदि धर्म का संस्थापन हुआ तो जनकल्याण और आत्म-क्षेम निश्चित जानो। धर्म ही विश्व का आधार है और ब्रह्माण्डों का परिपोषक भी। मोक्ष का अभिवचन तो धर्म है ही……!"

'ऑल इण्डिया रेडियो' के दिल्ली-स्टेशन से यह आकाशवाणी प्रसारित की गई……!

सायंकाल के समय 'दिल्ली विश्वविद्यालय' में स्वामी जी के कई प्रवचन हुए। विश्वविद्यालय की ओर से माननीय पीठ-स्थविर ने स्वामी जी का स्वागत किया और विद्यार्थियों के मध्य महाराज का ओजस्वी परिचय दिया।

स्वागत का सुन्दर उत्तर देते हुए स्वामी जी ने विद्यार्थियों को अपना सन्देश दिया; धर्म की नींव को सुधारने और आत्म-सुधार के लिए प्रोत्साहित किया। वेदों और शास्त्रों, पुराणों और इतिहासों के पिछले पन्नों की पुनरावृत्ति करते हुए, स्वामी जी ने कहा "प्रत्येक विद्यार्थी ने अपने चरित्र का निर्माण करना होगा। तभी वह अपने को राष्ट्र और विश्व की सेवा के योग्य अधिकारी बना सकता है। सर्वप्रथम आत्म-सुधार की आवश्यकता है। द्वितीय, जन-कल्याण की महद् अभिलाषा होनी चाहिए और सेवा के लिए उत्कट इच्छा भी ......!"

तदुपरचात् विश्वविद्यालय के 'परिषद् भवन' में विश्वविद्यालय के छात्रों की बैठक को अपना सन्देश देते हुए स्वामी जी ने सदाचार और सद्विचार पर जोर दिया; भगवद्विचार और भगवद्भक्ति की आवश्यकता को सिद्ध किया। आपने कहा कि "प्रत्येक विद्यार्थी को योगमय जीवन व्यतीत करना चाहिए। तभी वह अपने में देशसेवा की योग्यता को परिपक्व हुआ पावेगा। यदि वह योगसिद्ध और व्यवहारकुशल न हुआ, सदाचारी तथा सद्विचारी न हुआ तो वह जनकल्याण और देशसेवा के योग्य नहीं हो सकेगा, वह

सदा असफल ही रहेगा। धर्मस्थापन के लिए आवश्यकता है योगनिष्ठ व्यक्तियों की, नवयुवकों की जो संसार के भोग-विलास को त्यागने की क्षमता रखते हैं ।"

विद्यार्थियो ने शान्तिपूर्वक दत्त-चित्त होकर उनके सन्देश को सुना और उसे हृदयङ्गत कर लिया। जब स्वामी जी दिल्ली स्थित 'लोदी संस्थान' में विशाल जनसमारोह को दर्शन देने प्रविष्ट हुए तो उन्होंने भी महाराज का अनुसरण किया।

× × × ×

६॥ बजते ही महाराज ने 'लोदी संस्थान' में जनता को दर्शन दिए और उपदेश भी। तदुपरान्त अनेकानेक भक्तों के घरों को तीर्थरूप करते हुए, स्वामी जी ने 'बिरला मन्दिर' में सम्प्रति पदार्पण किया। सहस्रों नर नारी उनके दर्शनों की अभिलाषा में दो घण्टों से प्रतीक्षा कर रहे थे।

'बिरला मन्दिर' के सामने पूर्वोक्त प्रशस्त पण्डाल में पुनः भक्त-जनसमागम प्रारम्भ हुआ। 'लाहौर हरिकीर्तन सभा' की ओर से स्वामी जी को मानपत्र अर्पित किया गया। अनन्तर स्वामी जी का व्याख्यान हुआ। व्याख्यान ओजस्वी था, निर्जीव में भी जीवन संचार करने वाला। सागर की विशालता को नापने वाले, तथा तृण को भी महान् कर देने वाले सर्वशक्तिमान् के समान उनकी योगोज्ज्वला कान्ति का प्रकाश सर्वत्र आनन्द ही आनन्द का संचार करता था, शान्ति ही-शान्ति लाता था। उनके

वचनों मे सत्यता थी, जिसके प्रकाश मे मनुष्य ने अपना पथ खोजना सीखा। उनके भावों मे सद्प्रेरणा थी, जिसके आधार पर जनकल्याण का दिव्यतम प्रासाद अभिनिर्मित हुआ और उस विश्वात्मक धर्मचक्र की संस्थापना हुई, जिसको युगानुजीवी करने के लिए समय-समय पर अवतारों का अवतरण, धर्मप्रचारकों का अभ्युदय और युगविभूतियों का समावेश हुआ करता है।

शिवानन्द दिग्विजय

विजय चतुर्दशी

राजधानी में (द्वितीय)

७ नवम्बर। प्रातःकाल बिरला मन्दिर-स्थित 'गीता भवन' में सत्संग हुआ। स्वामी जी ने उपस्थित जनता को उपदेश दिये और श्रुतिमधुर भगवन्नाम गाये। सत्संग के उपरान्त आपने 'करौल बाग' में शरणार्थी विद्यार्थियों को 'मालवान्

सान्ध्य गगन अरुणिम होता जा रहा था। जब कि दिल्ली-निवासी, राज्यवर्ग और धनपति रेलवे स्टेशन की ओर मंवर्त्तक पवन की नाईं बहे चले जा रहे थे। गगनगामिनी पिपीलिकाओं के समान थ। उनका ज्वार, जिसमें केवलमात्र एक ही विभूति की मनोहर रूप-रेखा नृत्य कर रही थी; एक ही युगावतार के निस्तुलेय सौन्दर्यान्वित व्यक्तित्व की अलौकिकता विराज रही थी।

रात्रि के १० बजने वाले थे। नगरनिवासी दिग्विजयी के दर्शनों को आए। विशाल भारत के प्रतिनिधि, जनता के छत्र शिरोमणि, दिल्ली के निवासीगण दिग्विजयी को शिवगिरि के अञ्चल की ओर जाते हुये देखने आए थे। न जाने उन के जीवन मे पुन: कभी वे दिन भी आयेंगे या नहीं, जब वे तपस्वी की महामहिमाशाली छटा के दर्शन भी कर सकेंगे ?

दिग्विजय की पूर्णिमा का उदय होने वाला था। समस्त गगनमण्डल निष्कलंक हो गया। भगवान् शशांकशेखर की सदाचार-राशि से पथ उज्ज्वल हो चुका था। दिल्ली में ही हमने चतुर्दशी के आलोक से ज्योत्सना को सज-धज कर आते देखा, जब कि हमारे तपोज्ज्वल महर्षि शिवगिरि के अञ्चलों की ओर, हिमालय की घाटी को प्रणाम करते हुए जा रहे थे…… …
दिग्विजयिनी की सुखद गोद मे विश्राम पाते हुये।

× × × ×

दिल्ली पीछे छूट चुकी थी; अपने हृदयों में हृदयेश्वर की झाँकी को अमिट बना कर और हृदयेश्वर के हृदय में अपनी स्मृति को अखण्डित कर। उत्तरापथीय केन्द्र तीव्र-गति से दिग्विजयिनी की प्रगति के तेज में तन्मय होते जा रहे थे। मणिकूट की मनोहर पर्वतमालाएँ, शिवगिरि का मनोरम अञ्चल, बिल्वारण्य का तपोनिष्ठ क्षेत्र अपने देव के दर्शनों की अभिलाषा में एकटक होकर खड़ा था। निर्मल अमृतसलिला गङ्गा अपने देव के चरणों को पखारने उसी मार्ग से बह रही थी, जहां दिग्विजयी ने उसे दो महीने पहिले बहते देखा था। निशा के गहनतम अन्धकार और मलय पवन की शीतलता से समायुक्त वातावरण में, शान्त और नीरव विटप-क्षेत्रों की विशालता में अपना विजय-सन्देश प्रसारित करती, हिमशिखर-समाश्रित महर्षियों को अपने आगमन का शुभ-सन्देश देती, विजय-वैजयन्ती की स्वर्ण-गरिमा—वह दिग्विजयिनी स्वामी जी महाराज को पुण्य-भूमि ऋषिकेश की ओर ले जा रही थी; ठीक ६० दिनों के व्यतीत होने पर, दिशि-प्रदिशि विजय-दुन्दुभि बजा चुकने और विजय-सन्देश सुना देने पर।

हम ऋषिकेश की ओर प्रस्थान कर रहे थे, रात्रि के अन्धकार में।

शिवानन्द दिग्विजय

विजय पूर्णिमा

शिवगिरि के अञ्चल में

उनके हृदय आनन्द-गद्गद थे। उनकी वाणी कोमल हो चुकी थी और उनका जीवन अमित ज्ञान के विश्व-वन्दित प्रकाश में सम्पत्तिशीलता के अपारावार वैभव को सम्प्राप्त कर चुका था। ऋषिकेश की भूमि धन्य हुई और ऋषियों की चरण-रेणु

(मुर्नी-की रेती) कृतार्थ हुई । साधुवाद से अञ्चल डोल उठे। जयजयकार मे माता के आनन्द का प्रवाह सुनील और सुलील हो उठा। हिमांचल की शीतलता ने भी दर्शन के लिए शिवगिरि के अञ्चल की यात्रा की और जब हम तीर्थपुरी हरिद्वार के द्वार में प्रवेश कर रहे थे तो मलयाचल की शीतलता ने हमारे दिग्विजयी का चरणालिंगन किया और परम-पुण्य स्पर्श की अनुभूति की। सामने से मणिकूट का वैभव भौतिकवाद को चुनौती और सावधान रहने का आदेश दे रहा था तो दूसरी ओर शिवगिरि की मालायें बिल्वारण्यक्षेत्र में नृत्य करती, देवदुर्लभ सन्तागमदर्शन की प्रतीक्षा में अनुरत थी। हम ऋषिकेश की पुण्य-भूमि मे प्रविष्ट हो रहे थे।

•

८ नवम्बर (शिवानन्दाष्टमी)। दो मास के पश्चात् ऋषिकेश-निवासी पुनः रेलवे स्टेशन पर लहरा रहे थे। दो महीने पहिले तो उनके नेत्रों में ज्वार-भाटा तरंगित था, जब दिग्विजयी महाराज भारत और लंका मे धर्मस्थापन के लिए प्रस्थान कर रहे थे; किन्तु आज उनके नेत्रों में आनन्द के मनोहर दृग्बिन्दु थे, जिनमें उनके आह्लाद का सौन्दर्य नृत्य कर रहा था। आज से ठीक दो महीन पहिले तो वे दिग्विजयी के प्रस्थान के समय शान्त और मौन थे, किन्तु आज उनके सौख्य का पारावार असीमित हो गया था। उनकी कोमल वाणियां निरन्तर हरिनाम की पीयूषवाहिनी से क्रीड़ा कर रही थीं।

आज स्वामी जी पुन अपने तपोनिष्ठ स्थल मे आ पधारे थे। यहीं से उन्होने अपने जीवन के सुन्दर वसन्तो, वैभवसम्मित श्रावणो और तपोलीन हेमन्तो को कितनी ही बार लहराते हुए हिमांचल की शीतलता मे अदृश्य होते देखा था। यहीं से बारम्बार उन्होंने मनुष्य को सत्य के आह्वान की ओर जागृत, धर्म और परमात्मा की गीता की ओर आकृष्ट किया था। कितनी ही बार उनकी गीता इसी स्थान से उठी और यही स्थान कितनी ही बार मानव के लिए कुरुक्षेत्र का नाटक खेल चुका था; जहां कृष्ण के अवतार की पुनरावृत्ति कर महाराज ने अपने उपदेशो को, अपनी गीता और अपनी दिव्य वाणी को दिगन्त-विश्रुत किया। १ जून, सन् १६२४ की वह परम तिथि थी, जिस दिन महाराज ने इसभूमि पर अपने दक्षिणसेवित-चरण प्रतिष्ठित किये थे। तब से लेकर आज तक यही भूमि उनके जीवनादर्श की प्रथम भूमिका रही तथा उनके धर्मविजय की अटल सु-तिलकांचिता देखी भी।

ऋषिकेश की तपोभूमि के लिए यह प्रथम अवसर तो नहीं: किन्तु यह कहा जा सकता है कि यही वह अपूर्व अवसर था, जिसके लिए इस ऋषिभूमि ने अपनी महिमा को अक्षुण्ण बनाना उचित और यथानुकूल समझा। इतिहास के परिवर्तन के साथ-साथ अनेकों तीर्थभूमियां अपनी महिमा की गाथाओ को अतीत स्मृति में तन्मय होती देख चुकी है। कितने ही आश्रम आज तक अवतरित हुए, चमके और पुनः विश्व-महिमा के

आगार, प्रकृति के विशाल-जीवन में समासीन हो गए। किन्तु ऋषिकेश के लिये यह दृष्टांत नहीं घटा। वह अपने जीवन की रूपरेखाओं को पौराणिक तपस्वियों की चरण-रजों में सुरक्षित करती आई। सम्भवत: इसी आशा में कि किसी दिन कोई महा-पुरुष उसके जीवन की रूप-रेखा को संवार सकेगा।

तपोभूमि का स्वप्न-दर्शन आज दिव्य दर्शन के रूप में अभिनीत हुआ। सचमुच स्वामी जी महाराज ने उसके गौरव-ललाट को विश्व-शिरोमणि बनाये रखा और नव-जीवन के यश का दान दिया। जब मानवसमाज ने सुना तो वह दृष्टियों को पसारे इस भूमि की ओर विश्व-नेतृत्व के लिये देखने लगा। विश्व यहां से भला माँग ही क्या सकता था; केवलमात्र शान्ति और सनातन शान्ति, जिसके लिए प्रत्येक प्राणी युगानुयुगों से प्रयत्न करता आया है और मानव जीवन ही जिसकी प्राप्ति के लिए एक चिरन्तन संघर्ष है। मनुष्य ने इस भूमि से न तो स्वर्ण मांगा और न स्वर्लोक का सजीव सौन्दर्य ही तथा न निधियों का अक्षय भण्डार। हाँ; केवल एक वस्तु के लिए विश्व ने इसी भूमि में नारे लगाए। वह वस्तु थी; आत्मशान्ति, आत्मकल्याण और आत्मोद्धार। इसी की प्राप्ति के लिए हमारे उपनिषद्, वेद और शास्त्र तथा अन्यान्य ग्रन्थ मनुष्य को वेदों के उद्भव-काल से प्रेरित और उत्साहित करते आ रहे हैं।

वह माँग पूरी हुई। ६ सितम्बर, १६५१ को दिग्विजयी ने दिगन्तों में अपनी गीर्वाणी सुनाई, अपनी गीता जगाई और

त्यागमूर्त्ति श्री नित्यानन्द जी महाराज और दिव्य जीवन मण्डल के प्राण, उसके संचालक तथा कर्णधार पधारे थे। समस्त वातावरण काषाय वेष में प्रतिसज्जित सा किया हुआ था।

× × × ×

दिगन्तोज्ज्वल कीर्ति को अपने अङ्क में संरक्षित किये हुए, दिग्विजयी के विजय वैजयन्ती की नायिका का गगनभेदी निनाद सुनकर प्रकृति जाग उठी और सूर्य उदित हुए। पक्षिशावकों ने भी आज अपने निवास सुशीघ्र छोड़ दिए और शरद् आगमन की आशा में नीहार-कणिकाएँ सूर्य को देख कर लज्जित हो, प्रकृति-माता के उदर में अपने मुँह छिपा चुकी थीं।

सहसा ही "जनगणमन अधिनायक जय हे भारत भाग्य विधाता" की श्रुति जागी। दिग्विजयिनी ने किलकारी मचाई, आनन्द में तरंगित हो कर। ऋषिकेश की तपोभूमि अपने शृंगार में प्रशोभित हो, देवाराधन के लिए जल्दी करने लगी।

मंगल गीत हुए। डंके पर चोट पडते ही वेदध्वनियों से दिगन्त प्रतिशब्दित हो उठे। 'स्वामी शिवानन्द जी महाराज की जै" के विजय घोषों से आनन्द-ही आनन्द बरस रहा था।

दिग्विजयिनी आज थमी। दो महीनों के बाद। अन्तिम गीत गाए उसने। उसका प्रशस्त द्वार खुल गया। पुनः ज्वार आया आगत-समाज में। पुनः विजय लहरियां अपने प्रोत्तुङ्ग-शिखरों पर जाग कर विजय सुमन बरसाने लगीं। हम लोगों ने दिग्विजनी के द्वारों से देखा—वह अपूर्व जन समारोह, जिसकी

कल्पना करते हो, बम्बई, कलकत्ता, कोम्बुर और सभी स्थानों के सगठन भी भुलाये जा सकते हैं। सुन्दरता को भी सुन्दरतम करता हुआ, सत्र-सौन्दर्यशील तपस्वियो के देश की जनता का सौभाग्य अपनी चरम सीमा पर स्थित हो विजय के गीत गा रहा था, दिग्विजय के नाटक के अन्तिम अध्याय का दृश्यान्तरण और धर्मस्थापन के विशाल प्रासाद मे पूर्णकलात्मक शिल्प का सूत्रपात् कर रहा था।

श्री स्वामी सदानन्द जी महाराज ने विजयमाला समर्पित की और विजय पत्र समर्पित किया। तिलको से उज्ज्वल ललाट प्रशोभित हो उठे। दर्शन महाविद्यालय के वेदाध्यायी और योगनिष्ठ विद्यार्थियो ने शुक्ल यजुर्वेद से स्वस्तिवाचन क्रिया और वेदो के आशीर्वचन गाए। भारत और सिंहल द्वीप की कोटिश. जनता को विजय-मन्त्र-मुग्ध करने वाले दिग्विजयी वेदों के आशीर्वचनो को ध्यानपरायण होकर सुन रहे थ, जिस प्रकार आदिमानव ने हिरण्यगर्भसम्भूत वेदो की ऋचाओ को सृष्टि के आदिकाल मे सुना होगा।

श्री स्वामी जी को देख कर सब अपनी-अपनी सुध बुध भूल गए। गोपियों को भी यह सौभाग्य कहा प्राप्त था ? श्री कृष्ण जी तो सदा के लिए चले ही गए थे। फिर आए ही कब ? गोपिया देखते-देखते राह मे पत्थर बन कर लौट गई थीं। उनकी आखें मोती बन कर द्वारका के समुद्र मे जाने क लिए

तरसने लगी। किन्तु श्याम न आये और न आए। गोपियां उनसे न मिली, न मिल सकी और न मिल पाईं। पत्थर बन कर राह मे अनन्त युगो तक लेटे रहना था, सो हो ही गया। किन्तु स्वामी जी कठोर हृदय नही थे। कोमलता और मृदुता के युगोत्तर अवतार स्वामी जी भला अपने प्रेमियो को कैसे भूल सकते थे। अतः वे विजय के उपरान्त आए। वे कंस-संहार के लिए नहीं, किन्तु उग्रसेन और देवकी के उद्धार के लिए गए थे। वे हिंसा के आधार पर विजय के लिए नहीं, किन्तु प्रेम और सत्य तथा परमात्मा के आधार को सर्वाधार घोषित करने के लिए ही दिग्विजय मे कर्मपरायण हुए।

ऋषिकेश-निवासियो की ओर से अभिनन्दन-पत्र समर्पित किया गया। जिसमे गाया गया " ...ऋषि मुनि देवेन्द्र ! आपकी कीर्ति-पताका की परिधि उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त होवे; ऐसी भगवान् से प्रार्थना करते हुए हम एक बार पुनः आपको हार्दिक प्रणाम निवेदन करते हैं। भगवान् हमारा यह सौभाग्य सब भांति अक्षय करने की कृपा करें।"

विज्ञान प्रेस के कर्मचारियो (साध्यक्ष), स्थानीय व्यापार सभा के सभापति श्री देशराज जी तथा लाला इन्द्रसेन जी द्वारा यह विजयपत्र महाराज को समर्पित किया गया।

अनन्तर जनपद के राजमार्ग पर अवतीर्ण होता हुआ रथ-महोत्सव मुनि-की रेती पर संस्थित 'आनन्द कुटीर' की ओर

अग्रसर हुआ। निशान वायु के अंक में लहरा रहे थे। विजयिनी पताकाएँ वायु के कोमल स्पर्श को पा, मानो आगे-आगे भागने का प्रयत्न कर रहीं थीं। शंखों की ध्वनि से आती हुई प्रतिध्वनि सहसा ही वातावरण को एकसूत्रांकित कर देती थी। पुष्पवर्षा पर तो सम्भवतः दिव्यलोक के निवासी भी बलि-बलि जाने की इच्छा रखते होंगे। समस्त दिशायें सात्विकवेष की सुन्दरता में अलंकृत हो चुकी थीं। ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी, साधक योगी और तपस्वी, अवधूत, तितिक्षु और वैरागी सभी वासन्त्य-आनन्द की अलौकिकता में संपरिविराजमान् थे। सभी के जीवन में मानो नवजीवन का कुसुमाकर नाच रहा था और उत्पल-विकास का मार्गशीर्ष विराज रहा था। सभी के निष्पथ-जीवनों में दीपमालिका का त्यौहार मनाया जा रहा था और होली के फाग गाए जा रहे थे। विजयदशमी की मानो यही पुनरावृत्ति थी, जिस दिन गगनाकार, सागरोपम तथादिक काव्य-अलंकृत उपमाओं से सेवित राम-रावणयुद्ध के फलस्वरूप विजयदशमी का अवतरण हुआ था; जिस दिन विश्वविनायक और दनुजवंशसेवित असुरमंडली का संहार कर रौद्रात्मिका देवी अपने कराल वक्षस्थल में कोटिशः पापियों को समासीन कर अपने सौम्य, सुन्दर तथा च परम-दिव्य वेष में भक्तों को दर्शन दे रही थी; जिस दिन मनुष्य के जीवन की नवरात्रियाँ दशमी की विजय-छटा में एकात्मिका हो रही थीं; जिस दिन मनुष्य के जीवन के तीन महाशत्रु अपने त्रिगुणात्मक-गुणों के साथ दशमी के विशाल-सागर में समासीन हो रहे थे।

सचमुच दिग्विजय की पूर्णिमा विजयदशमी की ही पुनरावृत्ति थी, जिस दिन श्री स्वामी जी ने अपने-जीवन मे विशाल यज्ञ की पूर्ति की। उनके जीवन का उद्देश्य सफल हुआ और उनके जीवन की सिद्धि प्रसिद्धि चरितार्थ हुई। उन्होने प्रान्तों-प्रान्तो और नगर नगर मे जाकर जनपदवासियो को आत्मा का सन्देश दिया एवं च उनको सत्यपरायणता और सदाचरण की ओर जगाया। उनके दिमागों से धर्म के पोले भूत को सदा के लिए हटाया और यह सिद्ध किया कि "योग मनुष्य के जीवन के अन्तिम प्रहर में सिद्ध किए जाने के लिए नहीं, किन्तु सम्पूर्ण जीवन के समस्त क्षण ही योगमय होने चाहिए। योगमय क्षणों का योगफल ही योग है। जीवन को आत्मा और परम-शान्ति से मिला देने वाला ही योग है।"

६ सितम्बर से ८ नवम्बर तक देश के कोने-कोने मे स्वामी जी ने ये ही सन्देश दिये, ये ही गीत गाये और ये ही वार्तालाप अपनी वाणी से नि सृत किए। अवतारो की परम्परा को सजीव बनाते हुए, उन्होंने जगद्गुरु श्री शकराचार्य के समान दिगन्तों का भ्रमण किया, गुरु गोरखनाथ और मत्स्येन्द्रनाथ के समान योग की लुप्त-विद्या का पुनरुद्धार किया। श्री स्वामी जी को जनता के मच पर जागृत होते देख कर २०वीं शताब्दि की सभ्यता और संस्कृति ने सादर मस्तक झुकाया। राज्याधिकारी और साधारण जनसमाज, व्यापारी और कर्मचारी, नास्तिक और आस्तिक, हिन्दू और मुसलमान, ईसाई और पारसी तथान्य जातियों के लोग समान आदर से स्वामी जी के उपदेशों को

सुनने आए। उसका कारण यही था कि स्वामी जी ने सम्प्रदाय-वाद में परिवर्त्तन किया। सम्प्रदायों की विभिन्नता, अनेकमत-परायणता, परस्पर के द्रोह और दूसरे के सिद्धान्तों का तिरस्कार इन सबमें स्वामी जी ने समूल परिवर्त्तन किए। किसी विशेष वाद का आश्रय न लेकर ही स्वामी जी ने जनता के आदर की प्राप्ति की। स्वामी जी न तो हिन्दू सिद्धान्तों का प्रचार करने गए थे और न अन्धविश्वास की परम्परा को नवजीवनदान देने ही। किन्तु उन्होंने समाज के आगे एक ऐसी सिद्धान्तपरायणता को उपस्थित किया, जिसका जन्म आदिमानव के साथ-साथ हुआ। जिस समय प्रथम बार मनुष्य ने प्रकृति की गम्भीरता के शब्द सुने, जिस समय प्रथम बार मनुष्य ने अश्रुतपूर्व अनन्त का अनुभव किया, जिस समय प्रथम बार मनुष्य ने अपनी बुद्धि के परिमार्जित होने पर अपनी महान् किन्तु अभिन्न सत्ता का अनुभव किया उसी समय के अनुभवों की आधारशिला पर ही स्वामी जी ने अपनी दिग्विजय को प्रतिष्ठापित कर विश्व के प्रतिनिधित्व के लिए आध्यात्मिकता के आदि-सिरमौर भारत को सु-सज्जित किया था।

शताब्दियों से सन्तों की अनहत परम्परा ने मनुष्य के अन्ध-विश्वास को क्षत-विक्षत करने का महत कार्य सम्पादन किया है। अवतारों की परिपाटी इसी स्वर्णकिरण के प्रकाश में जन्म लेती आई है। श्री कृष्ण जी ने अपने समय में रूढ़िवाद को समाज से दूर किया; गीता इसकी साक्षी देती है। भगवान्

अर्हत, सम्यक् और सम्बुद्ध ने भी नाममात्र के कर्मकाण्ड से पतित समाज को जगाया और निर्वाण का सन्देश दिया। पुनः अनेकों प्रचारक होते गए और सफलतापूर्वक उचित मार्ग पर जनता को ले गए। किन्तु कुछ प्रचारको ने सम्प्रदायवाद के आधार पर समाज को संकीर्णबुद्धि बना दिया। फल यह हुआ कि आध्यात्मिकता का अर्थ और योग का तत्व अनुचित-रीति से समझा गया। मुक्ति को किसी जादूगर के इन्द्रजाल के समान समझ लिया गया और ज्ञानी की अवस्था किसी मदिरा पीने वाले के समान समझी जाने लगी। जिस प्रकार भंग पीकर कोई व्यक्ति अपनी चेतना को खो देता है, उसी प्रकार जनता ने ज्ञानी की कल्पना की। योग की परिभाषा ही वायुगमन, अन्तर्ध्यान होने से जान ली गई। चमत्कार को ही योग की कसौटी समझा गया। किन्तु जिस समय कबीर आए तो उन्होंने इन निर्मूल धारणाओं पर कठोर आघात किया। जनता में कुछ सीमा तक चेतना आई। किन्तु विशाल मानव-समाज को जगाने के लिए पर्याप्त शक्ति की आवश्यकता थी। सन्तों की परिपाटी तो मानवोचित सुधार ही कर पाती है। अतः आत्मशक्ति से सज्जित तत्व की आवश्यकता हुई, जो आत्मशक्ति के बल इन पर परिवर्त्तन की लहर लाए। स्वामी जी का अवतरण इस कार्य के लिए ही हुआ था।

दिग्विजय के अवसर पर विशाल समाज में, जो अन्धविश्वास का लक्ष्य बन चुका था, जिसमें सम्प्रदायवाद की संकीर्ण-निशा

छाई थी, स्वामी जी ने योग के परम-रम्य अनुभवों का प्रचार किया। स्वामी जी ने न तो कभी योग की परात्परवादिता और चमत्कार-परम्परा को खण्डित किया और न इसको प्रधानता ही दी। उन्होंने कहा कि "वायुगमन भी योगशक्ति के बल पर किया जाता है; अन्तर्ध्यान भी योग द्वारा प्राप्त हो सकते हैं; किन्तु सच्चा और कल्याणकारी योग तो वह है, जो मनुष्य को स्वार्थ से परमार्थ, पतन से उत्थान, मानव से देवत्व और सासारिकता से आत्मसिद्धि की ओर ले जावे।"

उन्होंने कहा, "भोजनादि का त्याग ही सच्चा त्याग नहीं है। वस्त्रों के त्याग से ही वैराग्य की परिभाषा सीमित नहीं की जा सकती और न संसार-त्याग ही वैराग्य के सिद्धान्तों का पूरक है। किन्तु मनो-भावनाओं की कलुषता का त्याग भी किया जाना चाहिए। अपने अन्दर संचित दुर्बल-संस्कारों का त्याग भी किया जाना चाहिए। वैराग्य की परिभाषा तो ससारत्याग से ही पूरी नहीं होती, किन्तु सासारिकता के त्याग से अवश्य पूरी होती है। वैराग्य बाहरी कर्म नहीं, जिसका प्रदर्शन किया जा सके, किन्तु आन्तरिक-परिवर्त्तन है, जिसका अनुभव किया सकता है।"

हिमालय से लेकर सिन्धुभूमि-पर्यन्त विभिन्न प्रान्तीयों ने यह नवीन-चेतनात्मक वाणी सुनी। जिस प्रकार ईसामसीह ने समस्त पश्चिम को प्रभावित कर दिया और जिस प्रकार उनकी

किया था, उसी प्रकार महाराज की योगमयी वाणी से जनता के प्रसुप्त विभाव जाग उठे। तब तक तो जनता योग के अभ्यास के लिए जीवन के अन्तिम प्रहर को ही उपयुक्त जानती थी; युवावस्था को तपस्या, वैराग्य और आध्यात्मिक कर्म के लिए सर्वथ अनुपयुक्त समझती थी। किन्तु स्वामी जी की नवीन किन्तु आदि-व्याख्या ने उसके विचारों को पलट दिया, उसके जड़-निश्चय को उलट ही दिया। हमने देखा कि सहस्रों के नेत्र स्वामी जी की ओर टकटकी लगाये निरन्तर देखते रहते थे। हमने देखा कि सहस्रो अपने अंगवस्त्रों से आँखों को सहलाते सहलाते थक जाते थे। हमने देखा कि सहस्रो उनके पीछे रात और दिन अविश्रान्तगत्या किसी विशेष और दिव्य प्राप्ति के लिए चलते रहते थे। और हमने देखा कि भारत तथा लंकावासी कोटिशः हिन्दू, मुस्लिम, पारसी और ईसाई··· सभी-सभी मन्त्रमुग्ध होकर, हिमशैल के अवतार की ओर निर्निमेष दृष्टि से देखते रहते थे।

महाराज ने योग के सभी अंगों पर सुन्दर विचार प्रकट किये। जीवन और योग का आजीवन समन्वय सिद्ध किया। आध्यात्मिकता और दैनिक जीवनचर्या का परस्पर मिलाप किया। प्रत्येक को भली भांति समझाया कि "योग चमत्कार से कोई सम्बन्ध नहीं रखता, किन्तु योग के चमत्कार में मनुष्य की सोई हुई आत्मा जाग जाती है। योग अपने जीवन में सदाचरण के उदय का कहा जा सकता है। सदाचरण की भूमिका ईश्वर विश्वास और

ईश्वरपरायणता में ही है। भगवान् पर अपना सब कुछ अर्पित किए बिना सदाचरण अधूरा ही रह जाता है। कण-कण में भगवान् को ही व्यापक देखते हुए और उस कण-कण से उसी प्रकार व्यवहार करते हुए (जिस प्रकार आप अपने भगवान् से करेंगे) मनुष्य निःस-देह ज्ञानी और जीवनमुक्त बन सकता है। मनुष्य ने अपने नीच मन पर विजय पानी चाहिए, जो विश्व-स्फुरण का उत्तरदायी है, जो दुनियादारी का जन्मदाता है। यदि अपने नीच मन पर विजय पाई जा सकी तो जीवन का मार्ग अमल और उज्ज्वल हो जाता है अपि च उसी उज्ज्वलता में मनुष्य को परमात्मा के विशाल-स्वरूप की अनुभूति होती है। जब मनुष्य इस प्रज्ञा में प्रतिष्ठित हो जाता है तो विश्व का वातावरण उसे प्रभावित नहीं कर सकता। जिस प्रकार कमल के पत्तों पर जल स्थिर नहीं रह सकता और कमल का पत्ता भी• प्रभावित नहीं होता, उसी प्रकार ज्ञान को प्राप्त हुआ व्यक्ति अपने जीवन में किसी प्रकार के सुख अथवा दुःखों से विचलित या प्रभावित नहीं होता, किन्तु अपने स्वरूप में ही विचरण करता हुआ, शरीर, मन और बुद्धि से यथायोग्य कार्यों को सम्पन्न कर सदा निर्लिप्त ही रहता है।"

मनुष्य के जीवन का उन्नायक था स्वामी जी का दर्शन। आत्मा के गीता का अमरकोष था उनका प्रचार और विश्व की जागृति का इतिहास था उनका धर्मस्थापन। उनके नेतृत्व में भारत ने सर्वप्रथम अपने सुधार करने प्रारम्भ किए। अपनी कट्टरता को धोया। अपनी भूलें सुधारीं और अपनी संकीर्ण-वादिता को अस्ताचल की ओर आकृष्टमाण किया। सम्प्रदायवाद

से दूर हटने की लगन मे अनेको शिक्षित भारतवासी सलग्न हो गए। धर्मप्रचारको के सामने सुप्राचीर्य ज्योति का उदय हुआ और समाजसुधारकों को अवलम्ब मिला। जिसका सहारा पा कर वे अपने कार्य की सम्पूर्ति कर सकते थे।

वे दो महीने विश्व की आध्यात्मिकता के उदयकाल थे, जिनमे पूर्व से अरुणगिरि का अञ्चल रक्तिम हो उठा और उदय-गिरि से आध्यात्मिकता की किरणें गगनशोभित होने लगीं। वे दो महीने प्रसूतिकाल के थे, जिनमे मानवता की गोद आध्यात्मिक-शिशु के सौन्दर्य से भरने और लहलहाने वाली थी। उन दो महीनो को आदिमानव की आध्यात्मिक सभ्यता का उदयकाल कहा जा सकता है। सच कहें तो वे दो महीने बीसवीं शताब्दि का इतिहास आने वाले युगवासियों से कहते ही रहेंगे; क्योंकि मानवता का सच्चा इतिहास उसकी आध्यात्मिक संस्कृति का आख्यान ही है और सब कुछ तो केवल ढकोसला है और आडम्बरमात्र ही है।

× × × ×

८ नवम्बर को प्रातःकाल के ६ बजे दिग्विजयी का विशाल रथ ऋषिकेश के राजमार्ग पर बल खाते हुए लहरा रहा था, जिसके मनोहर अङ्क मे आरण्यक पुष्पो की राशियाँ इठला-इठला कर नाच रही थीं। महामन्त्र गाया जा रहा था। याचकों को दान और आशीर्वाचकों को आशीर्वाद का अभिदान दिया

जा रहा था। देवालयों में पूजा, अभिषेक, अर्चना और आरतियाँ हो रही थीं, क्योंकि महाराज परिदर्शन दे रहे थे। सुन्दर मन्दिरों के शिशु-शिखर अन्तरंग को घण्टियों के कल-कल निनाद से आनन्दरंगमग्न हो रहे थे। क्षितिज तिलकांचिता सौभाग्यवती के समान चमत्कृत था। मार्गानुवर्त्ती कुटियों के रूप में साक्षात् नारायण को मानों पूजन की सामग्री अभिषेक में अर्पित की जा रही थी। अन्त में आनन्द कुटीर की मनोहर भूमि में दिग्विजयी के पदार्पण हुए। श्री विश्वनाथ मन्दिर में, जो दिग्विजयी की प्रेरणा का सदा से सूत्रधार रहा, जिसके आदेश से स्वामी जी महाराज ने आज तक जनकल्याणार्थ आत्मा की गीता को विश्व-विश्रुत किया और जिसमें निवास करने वाले देवी एवं च देवता महादेव और श्री कृष्ण, राम और गणेश सदा से स्वामी जी को जन-मंगल की प्रेरणा देते आ रहे हैं, स्वामी जी के प्रविष्ट होते ही आरति-संदर्शन होने लगा। रुद्रि के अनुवाक उच्चरित हुए, भगवान् सोमशिरोमणि के पवित्र लिंग श्री विश्वनाथ ने परम-पवित्रीकृत दुग्धाभिषेक को स्वीकार किया। चमक के पाठ होते ही बिल्वारण्यक्षेत्र अध्ययनशील वैदिक-बालकों के अपारावार समुदाय के समान शब्दशील हो गया; जब श्री स्वामी जी महाराज देवालय की भूमि में पदार्पण कर रहे थे; जब उनके पीछे काषायवस्त्रानुसज्जित महात्मागण, श्वेतवस्त्रधारी ब्रह्मचारी, नगरवेषपरायण नागरिक तथा विविध रंगों में अलंकृयमान महिलामंडल भी नतमस्तक हो प्रवेश कर रहे थे।

"सोमो वा एतस्य राज्यमादत्ते । यो राजा सन्न्राज्यो वा सोमेन यजते ।
त वसुप्रामतान हवि पि भवन्ति ।"

आदिपुरुष के गीत गाए जा रहे थ । अपने करारविन्दो मे विल्वदल का हार लिए स्वामी जी और सभी भक्तगण आनन्दारविन्दमुख–उत्पल खोल रहे थे जब नादकों ने मन्त्र-पुष्पांजलि दी

'योऽपा पुष्प वेद पुष्पवान् प्रजावान् पशुमान् भवति चन्द्रमा वा अपां पुष्प पुष्पवान् प्रजावान् पशुमान् भवति । य एव वेद ।'

धीरे और प्रशान्त और गम्भीर गति से वेदों का पारायण हो रहा था, आदिपुरुष परमात्मा के प्रथम शब्दो की आवृत्तिया गाई जा रही थीं, मन्त्रो द्वारा आत्मसमर्पण किया जा रहा था, और विल्वदल भगवान् शशाङ्कशेखर पिनाकपाणि के विश्वनाथ लिंग के सुन्दर पीठ पर तन्मय हो रहे थे । कोटिश जनों के हृदयों मे अपनी आध्यात्मिक-छाप अङ्कित करने वाले दिग्विजयी विश्व विभूति के आगार और त्रिलोकी के अधिपति तथा ब्रह्माडो के रचयिता, सन्नायक एव त्राता के चरणों की सान्निध मे अपना प्रणाम समर्पित कर रहे थे । ऐसा प्रतीत होता था, मानो वे अपने को सर्वथा भूल चुके और प्राकृतिक विधानवश व्यवहारपरायण हो रहे थे ।

इस प्रकार दिग्विजय का खेल पूर्ण हुआ । ६१ दिन लोकोत्तर महान् कार्य की भूमिका का सूत्रपात कर स्वामी जी शान्त और

मौन हो चुके थे। उनके मुखमण्डल पर अखंड तपस्वी की नीरव ज्योति विराज चुकी थी। आश्रम के अधिष्ठाता का उत्तरदायित्व उनके मुख पर अवतरित हो चुका था। साधकों के जीवनदान देने वाले गुरु के रूप में वे अब कर्मपरायण हो चुके थे। क्योंकि वे विश्व को निरन्तर कर्मपरायणता, निष्काम कर्म और अहर्निश सेवा का उपदेश देने आए थे, न कि उसको विश्व से दूर कर विश्वप्रियता का अभिनायक बनाने। वे मनुष्य को आत्मत्व की ओर ही जागृत करने आए थे न कि उसको मानव-जीवन-सुलभ संकीर्णताओं की परिधि में जकड़ने। उन्होंने मनुष्य को आत्मत्व का प्रथम प्रतिनिधि माना। दर्शन की दृष्टि से तो उसे साक्षात् आत्मा ही जाना। यही स्वामी जी ने हमको सिखलाया, जिसकी विभूति में ही हम आज पथ खोज सके हैं और दूसरों को उसी पथ का पन्थी बना पाए हैं। अनन्त पथ के ऐसे सूत्रधार को अनन्त बार प्रणाम !!!

×　　×　　×　　×

दिन के दो बजे तक महात्माओं का भोजन समाप्त हुआ। वह स्वामी जी की दिग्विजय का महाभोग था, जिसे सबने प्रेम-पूर्वक ग्रहण किया। वह तो विश्वनाथ भगवान् के प्रतिनिधि का प्रसाद था, जिसको पाकर मुनिपदरजसेवित ऋषि-मुनीश्वर धन्यजीवन हो उठे। उसी दिन स्थानीय याचकों को भी भिक्षा दी गई, जिनमें विशेषतः कुष्ठरोग से पीड़ित नारायण (अच्युत नारायण) थे। भगवान् के नामसंकीर्त्तन से गंगा के तट पर

बसी हुई 'शिवानन्द नगरी' पुण्यजीवन को प्राप्त हो रही थी कलकल शब्द करती हुई भगवती गंगा का सुनील वक्ष भी भरता जा रहा था, प्रेम और स्नेह के अमित वरदान को पा कर। मानो दुग्ध की धारा नि.सृत होने जा रही थी।

सबने दिग्विजयी की दिग्विजय को सराहा और उसे यशोऽलंकार-दीप्ति से परिमण्डित माना एवं च युगो की अस्पष्ट छाया के नीचे एक महान् अपने जीवन मे अपने ही प्रति-प्रयासियो द्वारा आत्मपदसमन्वित जाना गया। यही दिग्विजय की परिसमाप्ति थी।

× × × ×

हे दिग्विजयी! हम उन स्वर्ण-दिवसो की पुनरुक्ति बारम्बार करते रहेंगे तथा च प्रतिवर्ष ६ सितम्बर से ८ नवम्बर तक हमारे जीवन में आध्यात्मिकता के संस्कारो का मन्थन होगा। हम विश्व के स्नेहमय अंक में निवास करने वाले आपके महान् उपकार को नहीं भूल सकेंगे। प्रतिवर्ष उपरोक्त दोनो महीने हमारे सुप्त सस्कारो मे जागृति को लाएंगे ही, हमारी चेतना मे अभिनव-चैतन्य का सचार तो कर पायेंगे ही और साथ-साथ हम उसी दिन और उन्हीं दो महीनो मे आपको अपने सामने प्रत्यक्ष देख सकेंगे, जिस प्रकार आपने हमको उत्तर प्रदेश, बिहार, वंगभूमि और आन्ध्रदेश मे, द्रविड भूमि, लका, मलय प्रदेश और कर्णाटक मे, निजाम राज्य, गुजरात और भारत की राजधानी मे दिव्य दर्शन दिए थे, जिस प्रकार कोटिश नागरिको

ने आपके साक्षात् स्वरूप को देख अपने को पारमात्मिक मन्त्र से प्रतिमुग्ध जाना था। हे देव ! इसी प्रकार आप युगों-युगों तक विश्व के निवासी हम मानवों पर अपनी दया-दृष्टि का वरदान यशस्वी करते रहना, जिससे हम अपने मनुष्य जीवन को सार्थक कर पाएँ और अपनी आत्म प्रतिष्ठा को प्राप्त करते रहें। प्रकृति मानवता को जन्म देती रहे और आप उसे आत्मा के उज्ज्वल निकेतन की ओर ले जाते रहें। विधाता विश्व की रचना करते रहें और आप उस विश्व मे आत्म-सुधार का श्री-गणेश करते जाएँ। अनादि माया के सभी तत्त्व भी यथानुरूप और यथापूर्व ही रहें, हमें कोई आपत्ति नहीं, किन्तु आप हमें उनके द्वन्द्वात्मक कार्य-कलापों से विमुक्त और स्वतन्त्र बनाए रखें। आपका यश, आपकी कीर्ति और आपके नामों का सकीर्तन करते करते हम परमपद की प्राप्ति करें। यही एक वरदान हम आपके वरद हस्तों मे अभियाचित करते हैं।

हे शाश्वत जीवन की गीता के गायक ! अपने मधुर गीतों को निरन्तर गाते रहना। हमें भी उनके श्रवण के लिए सनातन रखना। जब तक आप गीत गाएँ, तब तक हम भी उन्हें सुनते रहें। जब तक आप अपने उपदेश दें—शिवगिरि के मनोहर और पौराणिक अंचल से—तब तक हम भी टकटकी लगाए, हिमाचल की आदि-उपत्यकाओं की ओर शान्ति और आनन्द, सनातन विश्राम और ज्ञान के लिए देखते रहें। यदि हम पश्चिम मे निवास करें तो पूर्व की ओर ही हमारी दृष्टियाँ अपने को

विशाल मार्ग पर पसारे युगा युगो तक देखती रहे। पूर्व की ओर ही हमारा सूर्य उदित होता रहे। पूर्व की ओर से विश्वज्ञान की लालिमा जागे और पूर्व ही समस्त विश्व के प्रभात का श्रेयप्राप्त करे। आनन्द कुटीर ही इस पूर्व का प्रतिनिधित्व करता रहे, जहा आपने विश्व के आनन्द का कोष सचित कर दिया, जहा आपने विश्व के अनहत ज्ञान की राशि को सचित कर दिया आने वाले अनन्त कालो और अनन्त मानव समाज के हेतु।

हम विश्व के नागरिक, जिन्हें आपने आत्मा की सज्ञा दी है, आत्मा ही बन जाएँ। यदि आत्मा ही हैं, तो अपने को पहिचानें और अपने दर्शन करते रहें। आप सनातन रहें और हम भी आपके साथ साथ सनातन पद की प्राप्ति करें। आप हमारे कल्याण में अनुरत रहें तो हम भी अपने और दूसरो के कल्याण मे कृतकर्म हो। आप सबका भला करो और हम अपना तथा दूसरों का भला करें। आप विश्व का मगल करो और हम भी आत्ममगल और परमार्थ मगल के लिए प्रयत्नशील होवें। बल दो, बुद्धि, साहस, तेज, ओज और आशीर्वाद भी।

उत्तरापथ के हे अमर तपस्वी! हे कूटस्थ और अचल महान अवतार! हमारी ओर से मगलकामना स्वीकार कीजिए। आपकी ज्योति जलती रहे। आपकी प्रेरणा फलती रहे। हमारी जीवन तूलिका अमर रहे और लेखनी अप्रतिहत तथा वाणी सनातन। हम आपके चित्र बनाते रहें आपकी कहानी लिखते

रहें और आप के गीत गाते रहें। यही वरदान दो, हे शिव! ब्रह्माण्डों के युगोत्तर अवतार !!

× × × ×

स्वर्ण दीप हे अमर रहो तुम,
विश्वविजय कर सतत चलो तुम,
यावच्चन्द्रदिवाकर उज्ज्वल,
करो अभय हे करो विजय !!

स्वर्ण-शिखर के तेरे अंचल,
सदा प्रदीपित, उज्ज्वल प्रतिपल,
कोटि युगों तक गावें अविचल,
तेरी पावन *विश्वविजय* !!

कर्मभूमि में विश्व-पार तुम,
भूमा जीवन हार बने तुम,
विश्वपरात्पर महापार तुम,
सत्यरूप जय ! ज्योति विमल जय !!

दिव्य ज्ञान के चन्द्रदिवाकर,
पुण्य धरा के हे ! मधुर अधर,
सप्त-द्वीप सप्तसागर निनादित,
प्राणप्रतिष्ठित शंकर जय जय !!

ज्ञानामृत वरसाते जाना,
जीवन गीता गाते जाना,
हेमदीप में आते जाना,
निर्भय जय! जन अभिनव जय जय!!

हरित भूमि में, सरता जल में,
अम्बरपट में, सागरतल में,
एक रूप, तुम रूप अनेकों,
व्यापक बनना, रवि औ' शशिमय!!

जीवन में उल्लास जगाना,
पावनश्रुति तुम गाते जाना,
इन्दु सूर्य सम चिरयुग जीना,
सत्यचिरन्तन ज्योतिविजय जय!!

ॐ तत्सत् शिवानन्दार्पणमस्तु

परिशिष्ट प्रथम

जिसमें 'अखिल भारत यात्रा' के संस्मरण स्वरूप स्थान-स्थान पर प्राप्त हुए अभिनन्दन पत्रों का संग्रह है। ये अभिनन्दन पत्र श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज के चरणों में स्थान-स्थान पर स्थानीय नागरिकों ने समर्पित किए थे। यहां केवलमात्र हिन्दी और संस्कृत के ही मानपत्रों का संग्रह दिया जा रहा है। अंगरेजी अभिनन्दन पत्रों का संग्रह 'शिवानन्दाज् लेक्चर्स' (Sivananda's Lectures) नामक बृहद् ग्रन्थ में प्रकाशित हो चुका है। तामिल भाषा के मानपत्र 'शिवानन्द दिग्विजयम्' (तामिल) नामक पुस्तक में प्रकाशित हो ही चुके हैं। अन्य भाषाओं के मानपत्र अभी अप्रकाशित ही हैं। समयानुसार प्रकाशित किए जाएँगे।

मैं आप लोगों के अखण्ड सहयोग का ऋणी हूँ। आपके अभिनन्दन पत्रों में हमारे देश की आध्यात्मिक-संस्कृति का अभिवचन है, और आर्य कहलाने वाले वैदिक पुरुषों की अक्षुण्ण-परम्परा का उज्वल दर्शन भी। आप सचमुच साधुवाद के श्रेय को प्राप्त करने के अधिकारी हैं।

'स्वामी शिवानन्द'

जनता के हृदयों के विजेता ऋषि को समर्पित

विजय-पत्रों का सारांश

वाल्टेयर तथा विशाखापत्तनम् के नागरिकों का विजयपत्र

अपने प्रारम्भिक जीवन में आपने जिस भावना से सांसारिक सुखों को त्याग कर चतुर्थ आश्रम ग्रहण किया, वह हमें प्राय. दो सहस्र सम्वत्सर-पूर्व उस समय की स्मृति के प्रांगण में पहुँचा

पुस्तक के विस्तार भय से अङ्गरेजी के सभी मानपत्रों का अनुवाद नहीं दिया जा सका। अतः प्रमुख मानपत्रों का साराश का हिन्दी अनुवाद ही दिया जा रहा है।

अज्ञानी और सभी प्रकार के मनुष्य आपके व्यक्तिगत तथा दिव्य-सम्पर्क एवं च आपके उपदेशों व गीतों की स्वर-तरंगों में परम-आनन्द को प्राप्त कर रहे है। आप शतकोटि आयु के वसन्त देखें।

हिन्दू (दैनिक) मद्रास की जनवाणी

स्वामी जी मे प्रधान गुण है, विचारपरायणता और परम-बुद्धिशीलता। वे अपने शिष्य के साथ भौतिक तथा आध्यात्मिक सम्पर्क बनाये रखते हैं। उनकी कार्यप्रणाली और उसकी उपयोगिता तथा च बुद्धिपरायणता उनके शिष्यो के लिये विश्वास का आधार बन जाती है, जिस पर भावी निर्वाचन का कार्य छोड दिया जाता है। गोपनीयता, रहस्यवादिता और छायावाद की अनुपस्थिति स्वामी जी के दर्शन का प्रमुख सौन्दर्य है। सच है कि सत्य की खोज मे इसकी ही आवश्यकता रहती है। सिद्धान्ततः स्वामी जी वेदान्त के अनुयायी हैं, किन्तु उन्होंने वेदान्त से इतर सभी दर्शनो का साक्षात्कार कर लिया है, अत सम्मान देना स्वाभाविक ही है। इसी प्रकार "दिव्य जीवन मण्डल" भी जनता के लिए साक्षात् सत्य है, जिसकी प्रणाली आज अनुपमेय और युक्तिसंगत है, क्यो कि इसमे साधको को यन्त्रवादी बनाने की चेष्टा नहीं की गई है।

अन्नमलय विश्वविद्यालय की ओर से

आपने अपने में एक कर्मयोगी, राजयोगी, भक्त तथा ज्ञान-योगी का जीवन समन्वित कर लिया है। एक संन्यासी के लिए यह समन्वय की अनुपम प्रणाली है। आपके लेखों ने दिखला दिया है कि योगक्रियाएँ केवल संन्यासियों के लिए ही नहीं, किन्तु सार्वजनिक हैं। आपके स्पष्ट और आत्मप्रकाशक लेखों ने हमारे देश की प्राचीन और महान् संस्कृति को विदेशियों के जीवन के सन्निकट ला दिया है। आपके चरणों में प्रणाम !

तन्जावर की जनता के विजय-पत्रों से

भारत ही नहीं, वरन् समस्त विश्व की प्रयोगशालाओं में ऋषिकेश सब से महत्वपूर्ण स्थान है, जहां आपकी अध्यक्षता में समस्त मानवीय रोगों की चिकित्सा तथा उसका पवित्रीकरण किया जा रहा है। धन्य है आपको ! आप युगान्तरजीवी हो !

तिरुचिरापल्ली की सभाओं के मानपत्र

आप के उपदेशों तथा लेखों की विश्वात्मपरायणता तथा आनन्द कुटीर में दैनिक-जीवन-सम्बन्धी व्यावहारिक ज्ञान के प्रदर्शन ने 'शिवानन्द' नाम को सभी की वाणी का गीत बना

दिया है। इस नाम मे सबको आश्वासन, प्रसन्नता, प्रोत्साहन और बल प्राप्त होता है तथा च उनका जीवन महान बन जाता है।

कोलम्बो कार्पोरेशन की ओर से

आप हमारे बीच प्रेम, शान्ति तथा समन्वय के दूत तथा नवयुग के प्रवर्त्तक-रूप मे पधारे हैं। अपने अन्दर शाश्वत शान्ति प्राप्त कर आपने विश्व के कोने-कोने में रणोन्मादमत्त राष्ट्रों तथा विभेदभावपूर्ण धर्मों को वास्तविक शान्ति, आनन्द तथा सत्य का मार्ग प्रदर्शित कराया है। लंका के नागरिक आपका स्वागत करते हैं।

लंका के हिन्दू नागरिकों की ओर से

लंका के हम हिन्दू नागरिक आनन्द तथा श्रद्धा के साथ आपके आत्मज्ञान की उज्ज्वलता, आपके लेखो द्वारा प्रकटित महती विद्वत्ता तथा महान् उद्योग की सफलता को देख रहे हैं। आधी शताब्दि पूर्व श्री स्वामी विवेकानन्द ने इस द्वीप में दर्शन दिये थे। पश्चात् हम लोगों को हिमाच्छलागत नवयुग के नेता के स्वरूप मे आपके स्वागत का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

सीलोन 'टाइम्स' की जनवाणी

स्वामी शिवानन्द जी का लंका में अपूर्व स्वागत हुआ। इससे स्पष्ट है कि पूर्व में हम लोगों ने आध्यात्मिक मूल्यों का अवमूल्यन नहीं किया है। आज तो अनुपयोगी युद्धों द्वारा राजपथ रक्तरंजित हो रहे हैं। युवकों के जीवनों का सर्वनाश हो रहा है और, जनता केवल राजवंश के पुरुषों का ही स्वागत करती है। किन्तु एक साधु का राजोचित स्वागत अपूर्व और उत्साहप्रद लक्षण का अभिमतदाता है। स्वामी जी ने समाज को जो सर्व-उत्तम उपहार प्रदान किया, वह है आत्मोत्सर्ग, जिसके आधार पर ही जनकल्याण का निर्माण होने वाला है। बुद्धिमानों की प्राचीन लोकोक्तियों को चरितार्थ करते हुए, वे हमारे बीच में पधारे हैं। हम उनका उसी रूप में अनुश्रुतपूर्व स्वागत करते हैं।

तिरुनेलवेली जनसमाज की ओर से

आप हमारे महान् आध्यात्मिक गुरु हैं। आपके उत्साह-प्रद और प्रेरणादायक सन्निधान में तथा हृदयोत्कर्षक व्याख्यान एवं च रचनात्मक ज्ञान द्वारा हम भौतिक भावनाओं के अन्ध-प्रदेश से आध्यात्मिक-ज्योति के समुज्ज्वल मार्ग पर आ गये हैं। यह आपकी जन्मभूमि रही, जहां आपका परिपालन हुआ माता

जाता है। हमें इसका गर्व है। आप इस समय मानव-जाति के लिए ज्ञान, संस्कृति एवं साधुता के प्रकाश-स्तम्भ बन गये हैं। धन्य है आपको ! कोटिशः प्रणाम !

मंगलोर के नगरपाल द्वार सम्मानपत्र

यह एक असाधारण अवसर है, जब प्रथम बार 'कारपोरेशन' एक धार्मिक संस्था के किसी महापुरुष का नागरिक सम्मान कर रहा है। आप जाति, धर्म तथा राष्ट्र की परिच्छिन्न सीमाओं और संकीर्णताओं से परात्पर हो कर मानवता की सेवा कर रहे हैं। आपके द्वारा स्थापित 'दिव्य जीवन मण्डल' अपनी अनेकों शाखाओं से जनता की सेवा कर रहा है। वह आपके उपदेशों का आध्यात्मिक-प्रचार इस महादेश के कोने-कोने तथा इतर देशों में भी प्रचारित कर रहा है।

बम्बई के नागरिकों की ओर से

अपनी तपस्या, धार्मिक तथा आचारिक शिक्षा-प्रचार में आपका उत्साहप्रद तथा अत्यद्भुत प्रयत्न विशालतर क्षेत्रों की सीमा का अतिक्रमण कर चुका है। अपने ब्रह्मनिष्ठ-सुलभ सद्गुणों तथा पवित्र भू-माता के प्रति पुनीत प्रेम से आप उन महान

ऋषियों तथा महात्माओं की श्रेणी में सरलता से पहुंच गए हैं, जिन्होंने अपनी उपस्थिति से इस देश को धन्य कर दिया था। आपने भारत की जनता को अत्यन्त आभारी किया है और ईश्वरीय ज्ञान के प्रसार में अपने सतत प्रयत्नों से भारत तथा विदेशों के लाखों लोगों को धन्यजीवन भी; जो आपकी कीर्ति गाते जा रहे हैं।

बड़ौदा के भक्त नागरिकों के विजय-गीत

संघर्षशील मानवजाति के लिए असीम करुणा के कारण आपने हमें वेदों की प्राचीन तथा मूल्यवान् शिक्षा अत्यन्त सरल तथा आकर्षक रूप में प्रदान की है। आप साक्षात् नारायण हैं।

अहमदाबाद के सत्संगियों के विजय-उद्गार

आप महामान्य के रूप में हमने एक ऐसा चिकित्सक पाया है, जिसने प्रथम अपनी चिकित्सा कर ली है—एक ऐसा शिक्षक पाया है, जिसने पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया है और जिसकी शिक्षायें सीधे मनुष्य के अन्तस्तल तक आप्रविष्ट हो जाती हैं। आप हमारे गुरु, हितैषी और सच्चे मित्र हैं, जो सुख-दुःख में हमारा साथ देते हैं।

बम्बई के मुख्य मन्त्री ने भी कहा था

मुझे बडी प्रसन्नता है कि श्री स्वामी जी ने यहा पधारने की कृपा की। मेरे लिए यह अत्यन्त आनन्द का विषय है कि मुझे महाराज के दर्शनो का सु-अवसर मिला। जब मे ऋषिकेश गया था तो मैंने स्वामी जी क महान कार्यों के सम्बन्ध मे जाना। महाराज के ग्रन्थो को मैंने देखा है।

वही सुन्दर कार्य, जिसकी आवश्यकता आज है, श्री स्वामी जी द्वारा हो रहा है। ऐसी महान आत्माओ के कारण हम--इस देश के वासी धन्य है। हमारे देश की जनता का भविष्य महान है। अत स्वामी जी के सम्मान को मैं अपना सम्मान जानता हूं और उनके प्रति पुन प्रणाम करता हू।

भारतकी राजधानी ने भी सम्मान दिया

हम अपने बीच एक ऐसे जीवित आध्यात्मिक सन्त को पाकर अपना सौभाग्य समझते हैं। आप मे वासना तथा कामना के ससार से विरक्त एक पूर्णयोगी के सद्गुण हैं। आपने अपने उपदेशो और अपने व्यवहार द्वारा विश्व को ईश्वरीय-आनन्द का ठीक मार्ग बतला दिया है। अपनी कठोर तपस्या, आचरण की पवित्रता तथा विचारो की उच्चता और वेदान्त योग की व्याख्या द्वारा वर्तमान संन्यासियों एव सन्तो के समुदाय मे आपने अपने लिए स्थान प्राप्त कर लिया है। हम आपके चरणों मे नतमस्तक होते है!

आध्यात्मिकयात्रावसरे वाराणसीसमागतानां
योगीश्वरश्रीस्वामिशिवानन्दयतिवराणां
श्रीकाशीपण्डितसभासमर्पितं

शुभाभिनन्दनपत्रम्

षष्ट्यब्दिपूर्तिपुरतः प्रथितैर्द्विजेन्द्रै-
रासालदासविबुधादिभिरादृता या ।
श्रीकाशिपण्डितसभा प्रथिता पृथिव्यां
त्वां तत्सदस्यसुधियोऽद्य समर्चयन्ति ॥१॥

स्वातन्त्र्यमाविरभवज्जननेतृयत्नात्
श्रीविश्वनाथकृपयाखिलभारतेऽस्मिन् ।
साध्यात्मसंस्कृतिरपि प्रथिता यथा स्या-
द्भारतोऽयमद्य मुनिराज! भवादृशेषु ॥२॥

वेदान्तदीक्षित अप्पय्यदीक्षितोऽभूत
तस्यान्वयं यतिवर! त्वमलंकरोषि ।
लोकोपकारनिरतो विरतो विकारा-
दध्यात्मतां प्रथयसि भ्रमणोपदेशात् ॥३॥

मद्रासराः संप्रति सांप्रदायिका
ये भारते पूर्वत एव संश्रिताः ।

विनेतुमेतान्निजशिक्षयानया
तवोपदेश प्रचरेद्धरातले ॥४॥

जनादृतेनेह तवागमेन वै
वाराणसी धर्मपुरी विभूषिता।
अध्यात्मभृद्योगिवराभिनन्दना-
न्मोमुद्यते पण्डितमण्डलोप्ययम् ॥५॥

केचिद्धमधियः कणादिद इहैतिह्येऽथ वैशेषिके
न्याये केऽपि च योगसाधनरताः साहित्यशास्त्रेऽपरे।
वेदान्ते विमलेऽथ जैमिनिनये ख्याताः परे कापिले
विश्वस्मिन्नपि विस्तृतामलमतिर्विद्वान् भवान् भारते ॥६॥

श्रीदिव्यजीवनसमाजसुशिक्षया त्वं
दिव्यात्मतामुपदिशस्यधुना जगत्याम्।
तेन प्रसाद्य वयमद्य समे समेताः
श्रीमन्तमादरभरादभिनन्दयाम ॥७॥

वाराणस्याम्
भा० शु० २ म० २००७ (श्रीकाशिपण्डितसभासदस्याः)

परमपूज्य योगिराज स्वामी श्री शिवानन्द सरस्वती जी
को काशी-निवासियों की ओर से

सादर अभिनन्दन

श्रीमानप्पयदीक्षितोऽजनि पुरा यो विश्वचूडामणिः
पी० एस० वेंगुबुधः सदय्यरकुले तस्यैव वंशेऽभवत् ।
कुप्पुस्वामिवरस्तदीयतनयः पूर्वाश्रमे विश्रुतः
सोऽयं साधुशिरोमणिर्भुवि शिवानन्दोऽस्ति योगीश्वरः ॥

सौजन्याब्धेः किमु समुदितो निष्कलंकः शशाङ्कः
काम्यंकार्यं किल कलितवान् किं सदाचारराशिः ।
उत्साहो वा धृततनुरयं मूर्तिमान् वा प्रसादः
किंवादर्शो जयति हि महान् श्रीशिवानन्दयोगी ॥

कर्मवीर !

जीवन की भौतिक समृद्धि को सर्वथा तिलांजलि देकर मनुष्यमात्र को अपने वर-उद्देश्य की प्राप्ति की ओर अग्रसर करते हुए आध्यात्मिक सुख-शान्ति को सर्वसुलभ करने के लिये आपने अपने को अर्पित कर दिया है। आप लाखों भक्तों के लिये सफलमार्गदर्शक हैं। आपके सदुपदेश विद्याभ्यासी समाज

श्रीभगवत्पादारविन्दमिलिन्दहृदयेषु

श्रीस्वामिशिवानन्दमहात्मवर्येषु

सविनयाभिनयं निवेदयन्ते

पुरास्माकं भाग्यं किमपि परमं जातमभवत्
भवत्पादाम्भोजद्वयमतिपवित्रं यदकरोत ।
न विद्मः को दोषोऽजनि यदधुना विस्मृतमभूत्
कुटीरं छात्राणां पुनरपि पदैः स्प्रष्टुमुचितम् ॥

शिवानन्दस्वामिंस्तव चरणयोर्दर्शनसुखम्
पुनीते नो येषां हृदयमतिपापैः कलुषितम् ।
तदाशां याचामः पुनरपि कदा सात्र भविता
कृपार्द्रे दृष्टिर्विमलमनसां दृष्टिरपि नः ॥

सं० २००७ भाद्रपद शुक्ल
ऋषिपञ्चमी ।
सूर्यसूनुवार
१६—९—५०

इति श्रीमतां दयार्द्रदृष्टिकांक्षिणः
मीठापुर—पटना निवासिनः ।

अभिनन्दन पत्र

धर्मधुरीण परिव्राजकाचार्य श्री स्वामी शिवानन्द जी सरस्वती

के

करकमलों में सादर-सभक्ति समर्पित

दिव्य जीवन के अमर प्रतिष्ठाता !

विश्व के कण-कण आनन्द सिन्धु मे आलोड़ित-विलोडित हो रहे हैं आज दिव्य-जीवन-सम्बन्धी आपका अमर मन्त्र पाकर। आपके अमर प्राणो मे नि सृत आध्यात्मिकता का दिव्य मलयानिल घनघोर भौतिकता के इस शुष्क वातावरण को भी स्निग्ध, सरस और सुरभित कर रहा है। इस पतनोन्मुख विश्व को उत्कर्ष का जो दिव्य मार्ग आपने प्रदर्शित किया है, वह सृष्टि का अमर वरदान है और है युग एवं मानवता के लिये चिर-कल्याण। इस मार्ग पर आरूढ होने की क्षमता दो, देव !

मानवता के सफल उन्नायक ! आनन्दमय शिव !

धरा धन्य है आप-सा धर्म-नायक पाकर। मानव-मानव के मन-मन्दिर मे आपकी आनन्दमूर्त्ति विराज रही है और उनमें नित-नूतन चेतना का संचार कर रही है।

सचमुच शिव ही तो हैं आप। विश्व के समस्त कलुषों को कण्ठगत कर धरा पर मन्दाकिनी की पावन धवल धारा प्रवाहित करने को आपके मन-प्राण सतत आकुल-व्याकुल हैं। ऋषिकेश की कैवल्य-गुहा से निःसृत जो अमर ज्योति आज विश्व के अणु-परमाणु को अमर बना रही है वह तो आप की ही तपः पूत प्रतिच्छाया है। आपने आध्यात्मिकता को कुछ ऐसा सरस, रोचक, व्यावहारिक, आकर्षक और युक्तियुक्त रूप में विश्व के समक्ष समुपस्थित किया है कि वह पूर्ण आनन्ददायक बन उठा है। आपकी लेखनी पर आपका अगाध अध्ययन प्रतिध्वनित होता है।

हमारे आदरणीय अतिथि !

हमारे मन-प्राण आनन्द-विभोर हो रहे हैं आपके दिव्य दर्शनों से। आपका पावन तथा पुनीत व्यक्तित्व हमारे हृदयों में एक दिव्य-विभूति का संचार कर रहा है। हमें एक अनिर्वचनीय आनन्द की प्राप्ति हो रही है आज। आपकी अमर ज्योति हमें चिर प्रकाश दे तथा हम आपके पुनीत चरण-चिह्नों का अनुगमन करके जीवन की सार्थकता प्राप्त कर सकें।

हम हैं आपके चरणरजाभिलाषी
(दिव्य जीवन संघ, हाजीपुर के सदस्यगण)

१८ सितम्बर, १९५०
(आंग्ल तिथि)

भारतीय संस्कृति–समिति की ओर से

परमाराध्य महात्मन्,

भगवान् श्री विष्णु और बुद्ध के पद-चिह्नों में अङ्कित गया की धरित्री आज आपके पावन चरण-कमलों को धारणकर फूली नहीं समाती। श्रद्धाविनत इस भूमि की सन्तान, हम, आपका अभिनन्दन करते हैं। श्रद्धा के विनम्र भावों को छोड़ हमारे साथ और वैसी कुछ भी चीज नहीं, जिन्हें ले हम आपके पुनीत चरणों में उपस्थित हो सकें। हां, त्रुटियां हैं..जिन्हें हम आपकी लोकोपकारनिरत सदाशयता को देख भूल से गए हैं।

सभापति

(२०-९-१९५०

स्वामिश्रीशिवानन्दसरस्वतीमहाभागानां

करकमलयोः सबहुमानं समर्पितमिदं

सम्मानपत्रम्

जातो भव्यकुले स्वतो हि पवितः पूतः पुनर्विद्यया
ज्ञानेनोज्ज्वलितस्तपोभिरुदितो ब्राह्म्यामहोमूर्त्तिमत्
भित्वा सन्तमसं प्रबोध्य जगतीं दिग्विश्रुतो योऽधुना
दिष्ट्या दृष्टिपथं गतोऽद्य भगवान् सोऽयं शिवानन्दकः ॥१॥

सम्प्राप्य दर्शनमघौघहरं तवेदं
सम्प्रोञ्छ्य लाञ्छनमिहाद्य जनैरलीकम्
संछिद्य सम्वरकसार्थमपारपारं
आनन्दवृन्दमधुना परिभावयामः ॥२॥

योगाङ्गशीलितसमाधिपरम्पराणां
निर्बीजमाकलयतस्तव भूरिधाम्नः
सोऽहंब्रह्मपदधिषणाधिगतस्य तत्त्वं
रूपं कथं कथयितुं वयमद्यशक्ताः ॥३॥

श्रुत्वाऽवधीरितसुधामुपदेशवाचं
देशान्तरोद्भवजना अपि शिक्षमाणाः
संलभ्य गूढ़तरबोधमलं प्रपन्नाः
गायन्ति कीर्त्तिमथ योगविधिं श्रयन्ते ॥४॥

निवेदकाः

गयास्थ ब्रजभूषण महाविद्यालयाधिकारिणो (ट्रस्टिगण) ऽध्यापकाश्च
भाद्रपद शुक्ल अष्टमी सम्वत् २००७ वि०

अभिनन्दनमाला

वन्दे शिवानन्दगुरोर्दयांघ्रिपंकेरुहद्वन्द्वममन्दचित्तः ।
यदर्चयाज्ञानतमोनिविष्टा ज्योतिर्मयीमुत्पदवीं प्रविष्टाः ॥

वन्दे गुरुशिवानन्दप्रबोधदीपांकुरं किंकरपङ्कनिघ्नम ।
ययार्जनेनाखिलदेहमोहदाहप्रशान्तिर्भवति प्रजानाम् ॥

वन्दे शिवानन्दयतीन्द्रपादान्मन्दाकिनीवारिमहाविनोदान् ।
यत्सेवयाज्ञानतमोविकीर्णास्सन्मार्गमारादभितो प्रशान्ते ॥

बोर्ड हाई स्कूल, कोयुर ।
२७—६—१९५० (श्रा० ति०)

स्वागत गीत

" आओ शिवानन्द महाराज।

हिमालय की पुण्य भूमि से।
ऋषिकेश की तपोभूमि से।
गंगातट आनन्द कुटी से, आये आन्ध्र देश आज॥

हे संन्यासी, हे परम तपस्वी,
हे ज्ञानी, हे सजल मनस्वी।
हिमगिरि पथ के गिरि गह्वर से, आये योग-सम्राट्॥

जब मानव के जीवन पथ पर,
उतरे भूत-पिशाच भयंकर।
तब तुम ज्ञान प्रकाश जलाए, मन्न सिन्धु - उस पार॥

ऋषिवर आओ, मुनिवर आओ,
हे सन्त हृदय, सत्वर आओ।
गोदावरि के पुण्य तटों पर, दिव्य-राज्य के ताज ॥
गौतम ऋषि की तपोभूमि में,
जानकिराम की रमण भूमि में।
मार्कण्डेय की मोक्ष भूमि में, सु-स्वागत! तुम आज ॥
आओ शिवानन्द महाराज।

राजमहेन्द्रवरम्
२६—६—५० (आंग्ल तिथि)

श्रीमता तत्रभवता श्रीमत्शिवानन्दसरस्वतियतिवर्याणां
हिन्दू थियालाजिकल् कलाशालाविद्यार्थिभिः अध्यापकैश्च
प्रणामपुरस्सर समर्पितं

स्वागतपंचरत्नम्

शिवस्य कल्याणगुणाननन्तान,
संस्मृत्य सकीर्त्य समात्तमोदा.।
ते श्रीशिवानन्दसरस्वतीन्द्रा
गृह्णन्तु सुस्वागतमस्मदीयम् ॥

अक्षाणां निग्रहार्थम् सकलमपि जगत्यां हृषीकेशमूर्तिम्।
संसेव्याप्नोति सिद्धिं भगवदभिमतं तद्हृषीकेशदेशम् ॥

अध्यासीना भवन्त जितविषयगणाः स्वात्मना तुष्टिमाप्ताः।
अस्माक भागधेयाद्दिशमपि दयया दक्षिणां दृष्टवन्तः ॥

अज्ञाना हार्दपद्मं सुवचनकिरणैः ह्लादयन्तो भवन्तः
भक्त्याख्यं मुक्तिबीजं तदुपरि भगवद्भृङ्गमानाय्य तोषम् ॥

लोकानां वर्धयन्तः सवितुरपि वरा माननीया वरिष्ठैः
स्वीकृत्यास्मत्प्रणामान् हितपरवचनैराशिषा वर्धयन्तु ॥

चेन्नपुरी

२—१०—५० (आंग्ल तिथि)

स्वागतम्

स्वामी शिवानन्दसरस्वतीति
विख्याततनाम्नामिह भारतीये।
देशे यतीनां महनीयभूम्नाम्,
धन्या वयं स्वागतमीरयामः ॥

नाम्नानन्दकुटीरके हिमवतः पार्श्वे महानन्ददे,
यः पूर्वं तपसा प्रकाशितवपुः भक्तेष्टपूर्तौ रतः।
सोऽयं रम्यहिमालयात्सहगणैः कन्याकुमारीं प्रति,
लोकानुग्रहकांक्षया यतिवरः प्रस्थापितश्शम्भुना ॥

कलौ मनुष्यं किल दुःखतप्तम्
दृष्ट्वा कृपाप्रेरणया यतीन्द्राः ॥
स्वामी शिवानन्दसरस्वतीति
उद्धर्तुकामा भुवि संचरन्ति ॥

ध्यानेन नामग्रहणेन विष्णोः
अहिंसासत्यमिताशनाभ्याम् ।
श्रेयः कलौ प्राप्यत इत्यजस्रम्
उद्बोधयत्येव यतीन्द्रवर्यः ॥

इत्थं विधेयाः
२७-१०-१९५० (आं० ति०) गोपालसमुद्रवासिनः महाजनाः

महामहिम-नतमहनीयविद्वत्कुलावतंसाना हिमाचलसानुप्रतिष्ठापित
'हृषीकेश' सिद्धाश्रमनिवासाना श्रीपद्मनाभदास बालरामवर्म
महाराजस्य आदरातिशयोपस्कृत आतिथ्यमङ्गी-
कृत्यात्रागतवताम्

श्रीशिवानन्दयोगीन्द्रपरिव्राजकाचार्यवर्याणाम्

सविधे वञ्चिक्षोणीनिवासिभिः भक्तवरेण्यैः सादर समर्प्यमाणा

स्वागतप्रशस्तिपत्रिका

वेदान्तविज्ञानसुनिष्ठितात्मन् ! स्वामिन् ! हृषीकेशकृताधिवास !
श्रीमन् शिवानन्द ! शिवङ्करास्य त्वत्सन्निधौ स्वागतमर्पयामः ॥

इदमिदानीं परमप्रमोदस्थानमस्माक सर्वेपामनन्तशयनक्षेत्र-वासिनामन्येषा वञ्चिक्षोणीनिवासिनां च, यदेते यतीन्द्रा शिवानन्दयोगीन्द्राः अन्वर्थनामान महोन्नतहिमाचलप्रान्तप्रतिष्ठापिते 'हृषीकेश'-समाख्याप्रथिते सिद्धाश्रमे चिर विहितनिवासाः, इदानीमखिलभारतमनुजिघृक्षव एवेमा भूमिं आसेतुहिमाचल पर्यटितु प्रयुक्ता अस्मदभ्यर्थनानुरोध अस्मिन क्षेत्रे कृतसन्निधाना विराजन्त इति । तत्रभवता महानुभावाना भगवता योगीश्वराणा परमहसपरिव्राजकाचार्यपूज्यपादाना साङ्गपरिवाराणा सविधे अस्मत्स्वागतवार्ता प्रश्रयनम्रा सादर उपहरामः ।

एते खलु दक्षिणभारतभूमिमौक्तिकमाल्यायमानाः शिशिरस्वच्छाम्भःपूर्णगहनायाः ताम्रपर्ण्यो महानद्याः प्रान्ते 'पत्तमड' नाम्नि महत्यग्रहारे वेदवेदाङ्गादिविद्यावहुश्रुतैः भूसुरवरैः समधिष्ठितपूर्वे लब्धजन्मानः, चतुरधिकशतप्रबन्धनिर्मातुः भारद्वाजकुलावतंसस्य शिवाद्वैतमतप्रतिष्ठापकाचार्यस्य श्रीमतः अप्पय्यदीक्षितस्यान्ववायेऽवतीर्णाः, बाल्य एव आंग्लद्राविडगीर्वाणवाणीनामध्येतारः, उच्चावचप्राच्यप्रतीच्यविद्याकलाविदग्धाः, विशिष्य चारोग्यशास्त्रं यथाप्रतीच्यविद्यापद्धति अधीतवन्तः, तच्छास्त्रे उन्नतपरीक्षायां समुत्तीर्णाः, तदनु च 'मलया, सिङ्गपूर' प्रभृतिषु प्राच्यभूखण्डेषु आरोग्यशास्त्रप्रचारणेन तदर्थं आतुरशालानां बह्वीनां प्रतिष्ठापनेन च समार्जितविपुलधनयशसः, विशिष्य चाकिञ्चनानां रुग्णानां औषधदानेन शुश्रूषया च प्राणदायका भिषग्वरेण्या व्यराजन्त चिरमारोग्यशास्त्रजीवातुभूताः। अथ च, भौतिकेषु विषयेषु अर्थकामप्रधानेषु परं विरक्तमानसा एते अध्यात्ममार्गनिरूढहृदया. परोपकारप्रवणाः साङ्गयोगाभ्यसनचणाः, वाराणसीक्षेत्रादिदिव्यभूमिपर्यटनेनाधिगतानेकविद्यतिवरप्रसादाः हिमगिरिसानुसन्निविष्टा एव श्री "विश्वानन्द" यतिवरादाचार्यात्तुरीयमाश्रमं स्वीकृतवन्तः, लौकिक्या अलौकिक्या च दृष्ट्या परमपुमर्थोपाय अध्यात्ममार्गं सर्वान् भारतीयानन्यांश्चोपदिशन्त एव समुल्लसन्ति अन्वर्थनामानं 'आनन्दकुटीरं' अधिवसन्तः।

जन्मान्तरीयसुकृतैकनिपेव्यमाणम्,
संसारभेषजमिदं पदपद्मयुग्मम् ॥

सुक्रीडितं भुवि शरण्यमनन्यलभ्यम् ।
नत्वासदीयजननं सफलं महात्मन् ॥

श्रीपादपद्मयुगलस्मरणावधूत—
पापौघजातसुकृतैः परिवार्यमाणम् ।
अन्तेवसज्जनविभूषितपार्श्वभागम्,
श्रीकण्ठदेवकलया ह्यवतीर्णमीड्यम् ॥

मीनाक्षीकरुणाकटाक्षनिलयं मीनध्वजागोचरम्,
मित्रादप्यधिकप्रभावविभवं शान्त्यादिभिर्मण्डितम् ।
श्रीमातुश्चरणारविन्दयुगलं संस्थाप्य भक्त्या हृदि ।
लोकानुग्रहमाचरन्तमसकृन्नत्वा सुधन्या वयम् ॥

भगवद्दर्शनेनैव चक्षुस्साफल्यमाभजत् ।
वाक्सुधासेचनेनैव श्रवः प्रीतिं समेष्यति ॥

उपदेशस्य संप्राप्त्या चित्तं हि विमलं च नः ।
भविष्यति न सन्देहो महतां संगमाद्ध्रुवम् ॥

सद्वासना भवति साधुसमागमेन,
दुर्वासना क्षयमुपैति च शीघ्रमेव ।
तस्माद्भवादृशसमागमसंप्रतीक्षा—
स्स्वागताः वयं प्रतिगृहं भगवन् भजामः ॥

निस्तुलत्वं समीक्ष्यैव तुलाराशिं गताधुना ।
विपुसंज्ञं दिनं तावत् व्याप्नं तस्य यशोन्वगात् ॥
भगवद्दर्शनं तावदानन्दाश्रु रुणद्धि नः
तद्विमृज्य पुनर्द्रष्टुमुत्साहः प्रेरयत्यहो ।
यथा चन्द्रः षोडशभिः कलाभिरभिवर्द्धते ।
तथा पद्यावलिरियं वर्धतामभिवर्धताम् ॥

अभिनन्दनपत्रिका

स्वस्ति श्रीमदखिलभूमण्डलप्रख्यातहृषीकेशनिवासिनामतुलितसुधारसमाधुर्यकमलासनकामिनीधम्मिल्लमल्लिकानिष्यन्दमकरन्दभ्ररीसौवस्तिकनिकुम्भविजृम्भणानन्दतुन्दिलितमनीषिमण्डलानामनवरतं ज्ञानमार्गोपदेशे बद्धकंकणानां शान्तिदान्तिभूम्नां श्रीमच्छिवानन्दसरस्वतीस्वामिनां सन्निधौ मण्डपंक्त्याम्पुनिवासिभिर्महाजनैः सविनयं समर्पितेयमभिनन्दनपत्रिका।

अयि भोः !

सेतुवास्तव्यजनतासंचितसुकृतसचयफलायितविजयोदयाना श्रीमद्गुरुचरणानां प्रशस्तेऽस्मिन् विजयोत्सवमहाघोषे हृदये विलसन्तं भक्तिस्तोमं प्रकाशयितुमनसो भक्तजनस्य प्राप्तः शुभवासोऽयं दिष्ट्या वर्धते।

> यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत,
> अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

इति स्वोक्तं अर्थम् प्रकाशयितुमेव भगवान् श्रीकृष्णः आध्यात्मिकादितापत्रयपराहतानां जनानामनुजिघृक्षया तीर्थयात्राच्छलेन भुवमिदमाससादेति तोषमाप्नुमः।

किंच सर्वतः प्रवृत्त्या कलिबाधया दुष्परिहाराय च परित-स्थित्या, समुदायाचारपरम्परा वर्णाश्रमधर्ममर्मसंरक्षिणी सुदूरंनीता स्वयमाकृतौ प्रकृतौ चानिर्वचनीयां कामपि दुरवस्थां प्राप्तेति परं विषादमनुभवामः ।

महोन्नतमहामहिमशालिनामखिललोकतपश्चर्याभूम्नां स्तवनीयनाम्नामविकलब्रह्माद्वैतसाक्षात्कारधाम्नां कलिसन्तारणोपनिषद्-बुद्ध—हरेरामेतिमन्त्रोपदेशेन जनततेः भवसन्तारणपटीयसां श्रीमच्छिवानन्दसरस्वतीस्वामिनां प्रथमोत्पत्यानुगृहीतस्यास्येन्दु-महाराज्यकृतार्थतां वक्तुं वयमसमर्थाः स्मः । श्रीशिवानन्दो विजयते ।

इति मण्डपंक्याश्मुनिवासिभिर्महाजनाः ।

अभिनन्दनपत्रिका

स्वागतं लोकगुरवे स्वागतं दृश्यशंभवे।
स्वागतं मन्मथजिते स्वागतं धर्ममूर्तये ॥

लोके कालवशात् गतेऽस्तमतुले धर्मे त्रयीकीर्तिते।
व्याप्तेऽधर्मतमश्चये च गिरिशः प्रादुर्बभूव स्वयम् ॥

धर्मं स्थापयितुं समस्तभुवने योगिस्वतन्त्राखिल-
तन्त्रस्याप्पयदीक्षितस्य हि कुले योगी शिवानन्दजी ॥

योगाभ्यासदृढीकृतेन मनसा ध्यात्वा शिवं ब्रह्म तत्।
तल्लीनो भवति प्रकाममम्मलं देहस्मृतिस्त्यज्यते ॥

ज्ञाने, तेजसि मङ्गले सति चिदानन्दस्वरूपे निजे।
लीनं ज्ञानिवरं नमामि शिवमानन्दस्वरूपं परम् ॥

जयतु जयतु योगी सर्वलोकोपदेष्टा
जयतु जयतु धर्मस्थापनैकप्रवीणः।

जयतु जयतु विद्याराशिरादित्यतेजाः
जयतु जयतु नित्यं श्रीशिवानन्दयोगी ॥

इत्थं

४—१०—५० (आंग्ल तिथिः) चिदम्बरनिवासिनः

श्री मायूरक्षेत्रे मार्गवशात् समागतानां श्रीशिवानन्दपूज्यपादानां
अमरभारतीसभासमाजिकैरुपहारीकृता

स्वागताभिनन्दनपत्रिका

भवानीशितुः शैलराजस्य सानौ
हृषीकेशमारात् तटे स्वर्गसिन्धोः।
पवित्रां कुटीं निर्मितामावसन्तः
शिवानन्दनाम्ना भवन्तः प्रथन्ते ॥ १ ॥

कुटीरे किलानन्दनाम्नि स्थितानां
समाधौ समासादितानन्दभूम्नाम्।
सदानन्दविस्फूर्तिफुल्लाननानां
नमो ब्रूमहे वः शिवानन्दनाम्नाम् ॥ २ ॥

प्रवाहै रमन्ती गिरेर्जह्नुकन्या
यथा पावयत्यार्यभूमिं विशन्ती।

तिरुचिरापल्ल्यामर्पिता

स्वागतपत्रिका

नित्यं शिवे नन्दति यो हिमाद्रौ, ख्यात शिवानन्दसरस्वतीति ।
सुदर्शनोऽय सुरदर्शनोऽभूत् अस्माकमेषा खलु भाग्यसंपत् ॥

सावित्र्याः समुपासन समभवत्त्वद्दर्शनप्रापकम् ।
अस्माकं सफल च जन्म भवता सद्दर्शनाद्भाग्यत ॥

प्राप्तव्यो किमितोऽस्ति तत्भवता पादाब्जससेवनात् ।
अस्मान् मोचय हे गुरूत्तम भवत्सूक्तैः सदा बन्धनात् ॥

सावित्रीविद्यालयस्थाः

तिरुचिरापल्ली

श्रीशिवानन्दसरस्वतीपद्यमालिका

भारद्वाजकुलोद्भवान् सुयशसः श्रीशाम्भवामेसरान्
वर्यान्यज्वसु भूमिपालविनुतान् शास्त्राब्धिपारङ्गतान् ।
सद्ग्रन्थैश्च शताधिकैः सुमनसामानन्दसन्दायकान्
जानन्त्यप्पयदीक्षितान् हि सुतरां विद्वज्जना भूतले ॥१॥

धन्यः पाण्ड्यमहीपतेश्च सचिवो वैदुष्यरत्नाकरो
पौत्रस्तस्य महात्मनस्समजनि श्रीनीलकण्ठाध्वरी ।
काव्यैरन्यनिबन्धनैरनुपमैराशान्तकीर्तिच्छटः
सन्यासाश्रममाश्रितः स्वतपसा ब्रह्मात्मभावं गतः ॥२॥

ताम्रपर्णीतटे जातान् शिवानुभवपूरितान् ।
श्वेतनद्यास्तटे लीनान् सुन्दराख्यान् यतीन्नुमः ॥३॥

लोके शास्त्रे च व्युत्पन्नाः जायन्तेऽस्मिन् कुले सदा ।
सी० पी० रामाद्योध्यार्याः सन्ति लोकहिते रताः ॥४॥

जातः पत्तमडाभिधे जनपदे श्रीताम्रपर्णीतटे
प्राचीपश्चिमसम्प्रदायसहिते भैषज्यतन्त्रेऽप्यसौ ।
प्रावीण्यं समवाप्य कीर्तिमतुलां वीतस्पृहो धार्मिकः
आधिव्याधिहरः स्वभावमधुरो वैद्यो बभूवश्चिरम् ॥५॥

दृष्ट्वा जातिमताभिमानविवशैरन्योन्यनिन्दाकरैः
नीचैर्नास्तिकयुक्तिवादनपरैः सन्तप्यमानं जनम् ।
कारुण्याप्लुतमानसो विगतभीः स्वीकृत्य तुर्याश्रमं
सत्यज्ञानसुखाद्वितीयसुपथं संप्रापयन् राजते ॥६॥

शिवं पुण्यवाचं सदा कीर्तयन्तं
शिवं चित्स्वरूपं मुदा भावयन्तम् ।
शिवं सर्वलोकं समालोकयन्तं
शिवं नूनमेनं मुनिं भावयामः ॥७॥

आद्यो दैव्यो भिषगिति शिवं प्राह साक्षात् श्रुतियो
तस्यैवांशः समजनि पुरा ह्यप्पयो दीक्षितेन्द्रः ।
आविर्भूत्वा पुनरपि शिवानन्दरूपेण लोकान्
दैव्ये जीव्ये पथि निरुपमे चालयन्नेप भाति ॥८॥

नगेन्द्रावरूढा शिवाङ्कैकसङ्गा
समुत्तारयत्यार्तभक्तान् हि गङ्गा ।
हृषीकेशनाम्नोऽभ्युलात् हन्त सर्वान्
शिवानन्दसिन्धौ इमे मज्जयन्ति ॥६॥

पुदुक्कोट्टै,
६—१०—५०

परमपूज्य श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती महाराज
के कर-कमलों में
श्री तामिलनाद-हिन्दीप्रचारिणी सभा और त्रिची की
हिन्दी वाग्वर्धिनी सभा के सदस्यों द्वारा सादर समर्पित

मानपत्र

पूज्य स्वामी जी !

यह हमारा अहोभाग्य है कि आपने इस पवित्र नगर में पदार्पण कर, हमें दर्शन देने की कृपा की। संसार में जब कि हर व्यक्ति और हर राष्ट्र स्वार्थ-सिद्धि को लक्ष्य मानकर अनेक-क्रान्ति के प्रयत्न कर रहा है तब आप सदृश महापुरुषों का आगमन संसार को स्वार्थ से दूर परमार्थ का पथ प्रदर्शित करेगा।

हे सिद्ध पुरुष !

आपने इहलोक के साधनों को पाकर भी उन्हें तुच्छ समझा और अब हिमशिखरविहारिणी-गङ्गा के तट पर आप लोकसंग्रह के पुनीत कार्य में परायण हैं।

हे आचार्यवर्य !

आपने ऋषिकेश में आरण्य विश्वविद्यालय स्थापित किया। प्राचीन प्रणाली के अनुसार आयुर्वेद औषधालय की स्थापना की। यही नहीं, सर्वशक्तिमान् ईश्वर की ओर मानवता का ध्यान आकृष्ट करने आप हिन्दुस्तान ही नहीं, वरन् विश्व की सभी मुख्य-भाषाओं में धार्मिक साहित्य रचकर, दिव्य जीवन संघ के द्वारा प्रकाशित कर रहे हैं।

मनुष्य के उद्धार के लिए आपने क्या-क्या नहीं किया है।

हम हैं आपके,
तिरुचिरापल्ली के हिन्दी प्रेमीगण

८ १०-५० (आंग्ल तिथि)

सिंहलद्वीप के नागरिकों की ओर से

अभिनन्दन-पत्र

लङ्का की कलाकृति को उद्धृत करते हुए, सुकोमल परिष्कृत ताड़ के पत्रों पर प्राचीन परिपाटी को सजीव कर, सम्मानसूचक अक्षरों को अङ्कित करते हुए, लङ्का के विदेशमन्त्री श्री कान्तीय वैद्यनाथन् ने यह सम्मान पत्र दिग्विजयी के चरणों में समर्पित किया । हिन्दी अनुवाद यहां पर दिया जा रहा है ।

श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज ! सम्मान के इष्टदेव !

लङ्कानिवासी भारतीयों की ओर से हम आपके प्रति आज अपनी कृतज्ञता का प्रकाशन करने यहां एकत्रित हुए हैं । क्यों कि आपने 'अखिल भारत यात्रा' में अनेकों कार्यक्रमों के होने पर भी श्री लङ्का को नहीं भुलाया । हम इस पवित्र द्वीप में आप के स्वागतार्थ खड़े हैं, क्योंकि इसी भूमि को श्री राम और श्री गौतम बुद्ध के चरणों के चुम्बन का श्रेय प्राप्त हुआ था ।

पट्टामडाईग्रामनहाजनैः समर्पिता

स्वागतपत्रिका

भोः श्रीगुरुमहाराजाः ! श्री शिवानन्दस्वामिनः !

आसेतुहिमाचलस्थानां सर्वेषामपि जनानां सर्वाभीष्टसिद्धये सदा पत्रिकाद्वारा-सदुपदेशपराः, जगद्विख्यातयशोलंकृताः, सन्तत-सन्तत्यमान-जप-योग-समाधिभिः स्वभक्तान् कृतार्थयन्तः, इदानीमपि तत्र-तत्र विजययात्रयाखिलान् जनान् करुणार्द्रदृष्ट्या पावयन्तः, तापत्रयाग्निसंतप्त-निखिल-जनमनःसमाह्लादन-चन्द्रिका-रूपमाधुर्याः, तत्र-तत्रसंचरणक्रमेण स्वजन्मभूमिमिमां पट्टमडाख्यां ताम्रपर्णी-दक्षिणतीरस्थां संप्राप्ताः, अत एव भवद्दर्शनपात्रभूताः परमभाग्यवन्तः एतद्ग्रामस्थाः सर्वे महाजनाः वयमत्र भवतामागमनं पुरुषार्थप्रदमिति चिरं प्रतीक्षमाणाः अद्यैव तत्फलमिति सन्तुष्टा अनुमन्यामहे ।

हृषीकेशवासी शिवानन्दयोगी,
कृपापूर्णदृष्ट्या कृतार्थीकरोतु,
इहस्थान् समस्तान् अतिप्रेमभक्त्या,
युतान् स्वीयभक्तान् प्रसादैकयोग्यान् ॥

भवच्चरणारजानुचराः

पट्टामडाई-ग्राम-महाजनाः

अभिनन्दन पत्र

हे दिव्य जीवन वंशावतंश !

आपके दर्शन प्राप्त कर हम आज सुखी हुए हैं। क्योंकि ऐसे पुण्यमय दर्शन तो हमारे पूर्वजन्मकृत अच्छे से अच्छे कर्म का फल है।

हे ब्रह्मविद्याम्भोधि !

हम यह भली भाँति जानते हैं कि आपके हृदय में हमारे स्कूल की एक मधुरस्मृति है। आप से हमारी यही प्रार्थना है कि आपके उपदेशामृत से हम शान्त और सुख से अपने विद्यार्थियो के शारीरिक, मानसिक विकास का आत्मिक विकास के साथ संयोग करें।

योगत्रयनिष्णात !

वही मानव यशस्वी है, जो निःस्वार्थ होकर सब मतो को एक-सा देखता हो। इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं आप। आप जैसे महापुरुष को देख हम महद्गौरव का अनुभव कर रहे हैं। आपका दिव्य मन्त्र साध्य कर के अनेको मानव आत्मा को प्राप्त करते हैं। आपके संकल्प में व्रत और कर्म मे फल की विरक्ति को देख कर हमे प्रोत्साहन मिलता है। आपके साथ, आशीर्वाद

स्वागत एकादशी

(श्री शिवानन्द दिग्विजय यात्रा के उपलक्ष्य में राजनगर समारोह के अवसर पर त्रिवेन्द्रमवासिनी श्रीमती सरोज माताजी ने १८—१०—५० को यह स्वागत-गीत गाया था।)

सुनो सुगाथा राजयती की, स्वामि शिवानन्द सरस्वती की।
गुंजित कीर्ति दीप्त शरीरी, ब्रह्मअंश में पूज्य गुरु की ॥सुनो…

ताम्रपर्णी नदी किनारे, पट्टामडाई नाम गांव में।
सन् अट्ठारह सौ सतासी, सेप्तम्बर की आठ तिथि में।
ऊंचे कुल के उच्चासद में, भव्य पुरुष ने जन्म लिया,
पाठशाला कालेज घरों में जीवन अपना पूर्ण किया ॥सुनो…

एम्० बी० बी०एस० डिग्री पाये, ऐफ०सी०एम० में आ पहुंचे,
जगतीतल में घूम घूम कर सत्य सुपथ में जा पहुंचे।
जाग्रत किया अपने मन को आत्मभाव का भार लिया,
माया-बन्धन मूल मिटा के, देश-भक्ति का कार्य किया ॥सुनो…

मीठे मीठे गीत बना के विश्व-विपिन में खोज रहे,
शान्ति कहां है, सत्य कहां है, जग का कारण कौन कहे।

को प्राप्त, आपकी जन्मभूमि पट्टामडाई के ये प्राचीन विद्यालय, अनन्त शक्ति और मर्यादा-सम्पन्न हो, कठिनाइयों को पारकर आगे बढ़ सकेंगे। हम सब मिलकर ईश्वर से यही प्रार्थना करते है कि आपका यह शुभागमन हम मे नवीन-आत्मविद्या की शक्ति पैदा करे और हम आपकी सौम्यमूर्ति को अपने मन-मन्दिर में सदैव प्रतिष्ठित रखें।

अप्पयकुलरत्न !

आप जो उज्ज्वल स्मृति छोड़े जा रहे हैं, वह निरन्तर हमारा पथप्रदर्शन करती रहेगी—शक्ति तथा साहस देकर हमें सच्चा रास्ता दिखाएगी। हम सब आपका सभक्ति स्वागत करते हैं और ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि आप चिरायु रहें, जिससे आप चिरकाल तक मानवता का कल्याण करते रहें।

हम हैं

आपके परम विनीत तथा आशीर्वादाभिलाषी,

सदस्य बोर्ड आफ ट्रस्टीज,

अध्यापक तथा विद्यार्थी

रामशेषय्यर हाई स्कूल, पट्टामडाई (द० भा०)

सद्गुरु तुमने योग सिखाया, दिव्य धाम का राह बताया,
भक्ति भाव का पाठ पढ़ाया, जन्म जन्म का बन्ध छुड़ाया ॥सुनो ...

वेद शास्त्र का सार बता के कर्म योग की मार्ग गही,
स्वार्थ रहित हो मानव सेवा, दलित जनो की नित्य गही।
कर्मलोक के पुण्य प्रतापी, शिव-आनन्द गुरू हमारे,
चौसठ वर्ष महातिथि मे, आयु सहस्र हो लिए तुम्हारे ॥सुनो

हृषीकेश की पुण्य-तटी मे मुक्तिधाम आनन्द कुटी मे,
भागीरथि के पूत पुञ्ज मे, मुक्ति लहूं मैं स्वामि पदों मे।
स्वागत अर्पण दिव्य गुरो, सौख्य सदा यह देश बना,
स्वागत स्वागत महा गुरो, कृतार्थ हमारा जन्म बना ॥

सुनो सुगाथा राजयती की, स्वामि शिवानन्द सरस्वती की।
गुंजित कीर्ति दीप्त शरीरी, ब्रह्मअंश मे पूज्य गुरू की ॥सुनो ...

—

संसार किसकी पूजा करता है ?

(श्रीमती राजेश्वरी सुन्दरराजुलू, बंगलूर)

दुनियां में केवल नाम के लिये कई प्रकार के महान् पुरुष होते हैं। परन्तु यदि हम सबका विवेचन करें तो हमें केवल कुछ व्यक्ति इस प्रकार के मिलते हैं, जिनकी महानता दूसरो से नहीं तोली जा सकती। किसी ने कहा है कि राजा लोग, जो हाथी पर आसीन होकर अमित वैभव के साथ जाते हैं, वस्तुत महान नहीं। धनी मनुष्य, जिनके पास असीमित धन-दौलत है और जो बिना तकलीफ के अपनी जिन्दगी व्यतीत करते हुए, दूसरो के कष्टो को नहीं सोचते और विश्व की परख अपनी विलासमयी दृष्टि मे ही करते हैं, महान् कहलाने योग्य नहीं है। जो मनुष्य अपना धर्म और कर्तव्य त्यागकर, स्वार्थ और सुख के लिए दूसरो को तो दुःख पहुंचाता और स्वयं सुखकी कामना करता है और उसका भोग भी करता है, कभी भी महान नहीं कहलाया जा सकता। लम्बी-चौड़ी बातें बनाने वाले, जो दूसरो की तारीफ बिना किसी सत्यके कर देते हैं, क्योकि उनका उद्देश्य अपना मतलब साधना रहता है, सच्चे शब्दो मे बड़े नहीं कहलाये जाते। सबसे ताकतवर और खूबसूरत आदमी भी महान् होने की शक्ति नहीं रखते, क्योकि उनके अन्दरूनी मनुष्य की परीक्षा की जाय तो वे अत्यन्त कायर और विहीन स्वरूप मालूम देंगे। खूब पढ़े लिखे

विद्वान् लोग बिना सद्‌गुण और सच्चरित्रता के साधारण ही समझे जाने चाहिये।

परन्तु जो आदमी दूसरों की सेवा नि.स्वार्थ भाव से करते हैं, वे ही सबसे महान् हैं। सूरज को बड़ा कहते हैं, इसलिए नहीं कि वह ऊंचाई पर रहता है, परन्तु इसलिए कि वह दुनियां को नि.स्वार्थ और निष्पक्ष भाव से प्रकाशित करता है।

सेवा करने वाले इतने ऊंचे दर्जे पर आ पहुंचते हैं कि परोपकार के लिए उनका अवतार हुआ माना जाता है। इसका रहस्य और दूसरे मुख्य विषयों पर प्रकाश करने की शक्ति गुरु के अतिरिक्त और किसी दूसरे मे नहीं, क्योकि मनुष्य मे यह शक्ति नहीं कि वह अपनी ही बुद्धि के बल से इसका ज्ञान करले। इसीलिए गुरू को इस संसार मे सबसे श्रेष्ठ स्थान दिया गया है। क्योंकि गुरू के अनुभवो के आधार पर हमारी शिक्षा का आरम्भ होता है।

गुरू सबसे श्रेष्ठ तो है ही, क्योकि उसका स्थान भगवान् के बाद दूसरा है। और किसी व्यक्ति मे यह शक्ति नहीं कि वह गुरूकी महिमा के मूल्य को निर्धारित कर सके। केवल मात्र हमारी शक्ति इस निश्चय पर जा पाती है कि गुरू श्रेष्ठ होते हैं और सचमुच प्रशसनीय होते हैं। प्राचीनकाल मे महाराजा लोग भी गुरूवर्ग पर अत्यन्त भक्ति और श्रद्धा का भाव रखते थे। इसीलिए वे गुरूकी आज्ञा को वेदवाक्य मानते थे और उस

ऐसी निराली भावनाएं हमने अपने गुरु श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज मे देखीं, जब कि वे हमारे जनपद में पधारे थे। वे सच्चे आदर्श गुरु हैं, विश्व को आत्मानुगामी बनाने पर कमर कसे हैं। यह तो नामुमकिन है कि हम उनकी शक्ति का विस्तृत वर्णन कर सकें, क्योंकि उन्होंने हमारे समान न जाने कितने शिष्यों का उद्धार किया है और इसी भाँति यदि सब उनकी महिमा के ग्रन्थ लिखने लग जांय तो विश्व के सभी पुस्तकालय भर जायेंगे और विश्व के साहित्य का प्रत्येक काव्य समाप्त ही हो जायगा। हां इतना अवश्य है कि हम उनके आशीर्वाद की याचना करें, जिससे हमारा जीवन सफल हो और हम उनके चरणों की छाया का आश्रय लेकर इस जगजीवन पथ पर शान्ति और निष्कंटक रूप से यात्रा पूर्ण कर सकें।

एतदर्थ ही हमने उनके उपदेशों को बरतने के लिए स्थानीय "दिव्य जीवन मण्डल" खोला है जिसमे हमारी मां-बहिनें उनके उपदेशो के अनुसार अपना कदम बढ़ाने का मार्ग खोज निकालें और जो सदा हमें उनकी याद दिलाता रहेगा, क्योंकि यह आवश्यकीय है कि हमारे समान गृहस्थ मायाभ्रमित मनुष्य उनको याद कर-कर पुनः पुनः घुटने टेक कर उठ जायें, और कई बार गिरने के बावजूद भी हताश न हो और अपने कर्तव्य से विमुख न हों और अपना ध्येय भूल न जांय। हम यह प्रार्थना करते हैं कि हमारी देवियों के ऊपर विश्व के अविस्मरणीय सन्त महा-मण्डलेश्वर स्वामी शिवानन्दजी महाराज की कृपा बनी रहे, जिससे हमारी गृहस्थी इस संग्राम-मय जग में सुरक्षित हो, सुसम्पन्न रहे और हम उनके बताए हुए परमार्थ को पावें।

श्रीमता समधिगतसकलविद्यावदातचेतसा साधुकर्माचरणेन क्षपितमलानां विमलान्तःकरणानां तापत्रयमिहतजनसमुद्धरण-धुरन्धरेण भारतीयसनातनधर्मोपदेशेन सर्वान् स्वधर्मे प्रवर्तयता विदितवेदितव्यानामद्वैतामृतानन्दझरी निमग्नाना श्रद्धविनेशप्रतिष्ठापितसकलजनानन्ददायकानन्दकुटीरकुलपतीना भूमण्डलेश्वराणा श्रीशिवानन्द स्वामिना मुम्बापुरी स्तम्भदाक्षिणात्य शिक्षणमण्डलया समर्पिताभिनन्दन माला ।

धन्यान्मन्यामहेऽस्मान् वयमिह भवतां संगमादर्शनाच्च ।
वन्द्यानाचार्यपादान् सविनयमभिनन्द्याशिषो वो भजामः ॥
सद्भिः संगेह्यभंगोऽभवदथ परिशुद्धान्तरंगा भवामो ।
ब्रह्मानन्दं भजामः समधिगतशिवानन्दसाधूपदेशात् ॥

विद्याः सर्वाः पठित्वा तदुदितमपि सत्कर्मजातं चरित्वा ।
शुद्धे चित्ते विदित्वा जननमरणक्लेशनाशाभ्युपायम् ॥
श्रुत्वा मत्वा च बुद्ध्वा भगवति परमे न्यस्तचित्ता यतीन्द्राः ।
साक्षात्कारं च लब्ध्वा निजहृदि सततं मोदमाना रमन्ते ॥

गंगातीराविदूरे हिमगिरिसविधे श्रीहृषीकेश देशेऽ-
प्यानन्दाख्ये कुटीरे बुधवरसमितिं स्थापयित्वैधयन्ते ॥
सद्धर्मान बोधयन्तः श्रुतिविहितपथे सज्जनानावहन्तः ।
स्वानन्दे स्थापयन्तो मुनिकुलतिलका लोकमुद्धारयन्ते ॥

ब्रह्मात्मैकत्वदृष्ट्या निखिलमपि जगद्ब्रह्मरूपं विदन्तोऽ-
प्यासक्तानां जनानां शुभहितकृतये लोकयात्रां वहन्त ।
विद्यावन्तो भवन्त क्षपितकलिमला श्रीशिवानन्दपादा
जीवन्मुक्ताश्चरन्तो जगति करुणया विश्वपीडां हरन्ति ॥

इत्थं मुम्बापुरी निवासिनः

———

॥ सम्मान - पत्रम् ॥

॥ तस्माद् आत्मज्ञं हि अर्चयेद् भूतिकामः ॥

श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य-अवधूतशिरोमणि-योगभास्कर-सर्वभूतात्मभावारूढ़-कलिमलप्रध्वंसनदक्ष-अज्ञजनाज्ञतानिरसनबद्धपरिकर-सादरता प्रचारणशील - धर्मधुरंधर - भक्तिरसमन्दाकिनीधरधवलितयशोधवलित-दिगन्तर-भारतीयसंस्कृतिज्योतिर्धर-गुणगुणालङ्कृत-मुनिनिकरगीतपरममगत्त तत्वपदार्थानुभवरसिक-दीनजनवत्सल-संसारवैतरणी-पतित जीवोद्धरणदीक्षित-आर्त्तबन्धु "शिवानन्दस्वामीमहोदयाः ।

स्वान्तस्थेन गदाभृता तीर्थान्यपि तीर्थीकुर्वतां भवादृशां लोकाभ्युदयजनिजुषां, लोकसंग्रहाभिरतानां, हरिगुणाक्षिप्तमनसां, विधिनिषेधातीताध्वसंचारिणां, शुकादिसम्मितानां, करुणा-वरुणालयानां परमभागवतानां पावनचरणसरोरुहकेसरांकिता इयंभूमिः व्रजभूरिव योगीश्वरेश्वरराधारमणचरणां चित्ताद्याधिकं जयति । राजर्षिप्रवर-परीक्षितसंभावित-ऋषिसभायां भगवन्तम् । भगवतकलोद्वहन्तं गृहमेधिनां गृहेषु गोदोहनमात्रावस्थायिनं शुकयोगिनमिवात्रभवन्तं समादरेण, गौरवेण, प्रश्रयेण, प्रेम्णा च व अभिनन्दामः । राजर्षिवर्यपृथुतत्पुत्रा कुमाराणामिव श्रीमतां स्वा-

गतव्यवहरामः । अवसरेऽस्मिन्मंगलतमे भगवद्-दर्शने भक्ता इवात्र भवतां दर्शनेन प्रमुदितहृदयाः श्रीमतां गुणसमुदायोल्लेखेन, कृतसत्कर्मणां परिकीर्तनेन, आदर्शजीवनोल्लासाविष्करणेन कृतकृत्यतां मन्महे ।

कौमारादेव महतां माचिमहिमा तावत् दरीदृश्यते । अत्रभवन्तः श्रीमन्तोपि जन्मनैव अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम् इति भगवदुक्तिं सत्यां कुर्वन्तो दृश्यन्ते। तत्र भवतां सुगृहीतनामधेयानां अप्पयदीक्षितमहोदयानां अन्वये जनिं प्राप्य, कुलक्रमागतां सरस्वतीं उपास्य, आंग्लविद्यासंपादनेऽपि डाक्टरपदवीं प्राप्य, मलयाप्रदेशेषु जनसेवैव जनार्दनसेवास्तीति स्ववृत्या संसाध्य, व्यासचरणा इव सर्वभूतहितेरतापि, आत्मानमसम्पन्नमिवाभिलक्ष्य, त्यागेनेवामृतत्वप्राप्ति श्रुपिपरंपरासम्मितां अभिसमीक्षमाणाः सर्वभूताभयप्रदं संन्यासधर्मं भगवत्प्रियं परिरभ्य, आत्मत्वेनाभिमतं सर्वस्वं हित्वा, नगाधिराजं हिमवन्तं समाश्रितवन्तः ।

श्रीमन्तः स्वीकृत्यापि संन्यासं, साक्षान्न शंकरं शंकराचार्यमिव क्षणमपि स्त्यानदुष्टं न नयन्ति । अपि च जगद्धितचिकीर्षया चारुवंशोद्भवं व्यजनमिव परतापनिवृत्तये एवाद्यपर्यन्तं जीवनमुद्वहन्ति । अनभ्यासतिरोहित श्रुतौ निगूढं भारतीय संस्कृतेः तत्वं कालकर्मतमोरुद्धं उद्घाट्य विश्वजनतापथप्रदर्शनाय सर्वतोमुखं अद्भुतं यत्नं विदधति भवन्तः ।

दिव्यजीवनसमाजसंस्थापनेन-संचालनेन-नियन्त्रणेन-प्रेरणेन-विस्मृतात्मगौरवं इमं लोकं पुनरात्म-गौरवस्मरणदानेन

चेतयितुं प्रयत्नशीला भवन्तः निखिलसहृदय-संस्कृति प्रियजनहृदयधन्यवादान् अर्हन्तः नूनं पूर्वेषां महर्षीणां अन्ववाये प्रवृत्तिं लप्स्यमानाः अनागतयुगेष्वपि बहुमानपुरस्सरां सपर्यां प्राप्स्यन्ति ।....न मे भक्तः प्रणश्यति-च भगवद्वाक्यम् । अतः कालोपि श्रीमता अक्षयां कीर्तिम् क्षपयितुं न क्षंस्यते । अपितु तृष्णामिवप्रतिफलोपचितां वर्धयिष्यत्येव ।

यथा भगवतस्तथैव भक्तस्यापि कृत्स्नां गुणसम्पतिं कात्स्न्येन अभिधातुं शेषोऽपि सहस्रफणाधरो नेष्टे । अतः मनःस्पृष्टमात्रां तामुल्लिख्य विरतिं भजामः ।

इयमेवाशीरस्माकं यद् निर्व्याजकरुणावलयस्य भगवतः परिपूर्णकृपया भुंजन्तु भवन्तः वेदायुः, अनुभवन्तु योगक्षेमं कृण्वन्तु विश्वं आर्यम्, समुद्धरन्तु आर्य संस्कृतिं, उद्दीपयन्तु योगप्रदीपं, प्रचारयन्तु विश्वेषु ज्ञानप्रकाशं, प्रवहन्तु भक्तिमन्दाकिनीं जगतितले, प्राप्नुवन्तु अजरां अक्षयां, अमलां, विमलां कीर्तिम् इति शम् ॥

अत्र भवता

अत्रत्यजनताप्रतिनिधिरूपाः शिवानन्दस्वागतसमिति-प्रमुखादिसभ्याः ।

अमलसाड, चन्द्रवासरे
३०-१०-५० (आंग्ल तिथि)

श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यवर्याणां पदवाक्यप्रमाणपारावारपारीणानां यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाध्यष्टाङ्गयोगानुष्ठाननिष्ठानां श्रीहृषीकेशदेशे विराजमानानां श्रीस्वामीशिवानन्दचरणानां सन्निधौ नवसालपुरी श्रीकुलपतिबालव्याकरणशालाध्यापकैः सप्रणामं साञ्जलिविनयादरभक्तिबहुमानपुरस्सरं च समर्पितेयं स्वागतपत्रिका ॥

स्वागतं श्रीशिवानन्दयोगिनां प्रभुमर्हे वयम् ।
संगतं वन्दनाचोदि यथाशक्त्युपचर्हणैः ॥

य एते महान्तः सन्ततामिनशालिव्यूहपरिपाट्यां श्रीशालिवाट्यां पट्टामडाईग्रामे सप्तत्युत्तराष्टशताधिकसहस्रतमे (सन् १८८७) वर्षे कृतावताराः आबाल्यादेव परोपकारनिरताः वैद्यविद्यापारंगताः विदेशनिदर्शितभैषज्यप्रावीण्याः प्राग्भवीय-सुकृतविशेषसंचयोदितैहामुत्रफलभोगविरागाः परित्यक्तपरदेशनिवासाः साक्षात्कृतर्षिगणनिवासदेशे हृषीकेशे परिकल्पितावसथाः नियमितमनोरथाः विराजन्ते तराम् ॥

......त एते यतीन्द्राः विरक्तितीव्रतानिदानभोग्यदोषानुचिन्तनाभ्यासजनितसाधनचतुष्टयसंपन्नाः परमकारुणिकतया संसारजलनिधिनिमग्नान् मोहान्धकारजटिलान् पामराग्रेसरानप्युद्धर्तुम् ज्ञानदैरविरलैरुपदेशसहस्रैः श्रुतियुक्त्यनुभूत्युपबृंहितैः हृषीकेशात्प्रस्थिता. भागधेयादस्माकं पूर्वाश्रमकृत-

मलयावासवासनानुवृत्त्येव कुलपतिवालैयाकलाशाज्ञायामस्यां संन्नि हिताः सर्वेषामप्यस्माकं नितान्तमानन्दमापादयन्ति ॥

……… प्रार्थयामहे च संयमिनीलनीरदान् चातका इव भवतापतप्ता वयं, ज्ञानोपदेशामृतवर्षधाराभिषेकैः अनुगृहीतव्याः इति ॥

इत्थं

१ श्रीस्वामिचरणसेवापरमाणवः अध्यापकाः

नवसालपुरी

६-१०-५० (आंग्ल तिथि)

श्री हृषीकेशाधिवासिभ्यःश्रीशिवानन्दयोगिभ्यः नवसालनिवासिभिरर्पिता

स्वागत-पत्रिका

शिवानन्दमहायोगिन् स्वागतं ते निवेद्यते ।
अस्माभिर्नवसालीयैः भक्त्या प्रेम्णा च भूरिणा ॥१॥

सांप्रतं प्रायशो लोके स्वस्वार्थकपरा जनाः
राज्यनिर्वाहकाश्चापि संलक्ष्यन्ते तथाविधाः ॥२॥

ऐवं विवादे संभूते खिद्यत्सु सकलेष्वपि ।
शांतिस्सुखं कथं वा स्यात् विना यत्नं भवादृशाम् ॥३॥

सर्वत्र समबुद्धीनामास्तिकानां मनस्विनाम् ।
ब्रह्मण्याहितचिंतानां सर्वभूतदयावताम् ॥ ४ ॥

इतःसमीपे कालेऽभून्महायुद्धद्वयं भुवि ।
प्रवर्तते महद्युद्धं ऐशान्ये दिशि साम्प्रतम् ॥५॥

शमाभिलाषिणस्सर्वे यतन्तेऽद्य समाहिताः
प्रसरं तस्य युद्धस्य रोद्धुं देशान्तरेष्वपि ॥ ६ ॥

विक्लवो यद्ययं यत्नस्स्याद्युद्धं सार्वलौकिकम् ।
विनश्येदखिला भूमिः मैवं भूद्वैशसं महत् ॥७॥

हृषीकेशतीर्थवासिदिव्यजीवनसंस्थापक श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य
श्रीमच्छिवानन्दस्वामी पूज्यपादेभ्यः इयं

स्वागत पत्रिका

नामभक्तिसुसाम्राज्यं आसेतोराहिमालयात् ।
स्थापयन् जयतान्नित्यं शिवानन्दसरस्वती ।।

हृषीकेशवासिन् हृषीकाणि यन्तुम्
हृषीकेशनामानि हृद्यानि जल्पन् ।
हृषीकेशपादाब्जलग्नान्तरंगः
हृषीकेश भक्तिं जगत्यां तनोषि ।।

शिवं भारतस्याद्य भक्त्या सुसाध्यं,
विचिन्त्यादिशन् भक्तिमार्गं जनेभ्यः ।
शिवानन्द धन्याखिलान्यायभाजः,
पुनीषे परेशस्य नामातिसर्गात् ।।

ज्ञानेन बोद्धुं परेशस्य तत्वं,
के वा यतन्तेऽद्य योगेन वापि ।
पुण्यैश्च निष्कामकर्मादिभिर्वा,
तत् त्वं नरान् शास्सि भक्तिं परेशे ।।

हृषीकेशतः सेतुयात्राभिधायः
प्रजाः पावयत्यासिहैरुक्तिजालैः ।
शिवानन्दसंज्ञाय पूज्याय तुभ्यं,
नमोवाकमाशास्महे स्वागतं यत् ॥

सर्वेषां योगमार्गं सुलभमनुपमं बोधयन् बोधनीयम्,
मर्त्यानां चित्तदोषं झटिति परिहरन्नप्रमादैरुपायैः ।
नीरोगानाप्तकामान्विदधन्निजान्मोक्षमार्गप्रसक्तान्,
मान्यानां माननीयस्त्वमसि परशिवानन्दयोगिन् जगत्याम् ॥

वि०सं० २००७,　　　　　　　　श्री तपसतीर्थ
कन्याकृष्ण द्वादशी २२　　(लालगुडि) वासिनः आस्तिकाः

इन्द्रप्रस्थपुरवास्तव्यवैदिकसमाज

स्वागत-पत्रिका

स्वस्तिश्रीमद्धृषीकेशाख्यशुद्धगंगातीरनिवासिनः अखिलाध्यात्मविद्यासारपारंगताः सकलमततत्वसारसंवेदनेनाद्वैतमतसारभूतसच्चिदानन्दस्वरूपब्रह्मबोधनपारयिष्णवस्तथैवाखिलबुधजनानुजिघृक्षव. शमदमादिषाड्गुण्यपरिपूर्णस्वान्ताः श्रीमहान्तः श्रीपरमहंसपरिव्राजकाचार्यवर्याः तत्रभवंतः श्रीमन्तो भवन्तः स्वागतम् ॥

सकलदेशवासिशिष्यकोटिजनान्तर्गतास्मद्विनयपूर्वकानेकप्रणतिपुरस्सरीमिमां सुस्वागतपत्रिकां स्वीकृत्य भवदीयकरुणाकटाक्षकांक्षिणोऽस्मान् अनवरतमनुगृह्णन्तु तत्रभवन्तो भवन्तः इति सविनयं प्रार्थयामः।

आनन्द कुटीर के परमसन्त श्री स्वामी शिवानन्दजी महाराज

के

ऋषिकेश-रामेश्वरम् की हिमासेतु यात्रा समाप्त करके विजयान्वित

हृषीकेश वापिस लौटने के उपलक्ष में

अभिनन्दनपत्र

श्रीमान् !

आज ठीक दो मास पश्चात् पुनः आपके दर्शन पाकर ह जिज्ञासुओं को जो अनिर्वचनीय आनन्द एवं सौभाग्य की प्राप्ति हुई है उसे शब्दों में व्यक्त करने में अपने को असमर्थ पाकर हम केवल कायेन-मनसा-वाचा शत-शत प्रणाम निवेदन करके ही सन्तोष मान लेते हैं।

मुमुक्षुओं के प्राण !

आपकी अनुपस्थिति में हमारी मनोदशा वैसी ही रही जमी कि श्रीकृष्ण जी के व्रज से चले जाने के समय गोप-कुमारों की। आपके लौटने की अवधि का निश्चित होना ही हमारी वियोग की विशेषता थी जो कि गोप-कुमारों को उपलब्ध नहीं थी।

दिग्विजई सन्त !

आप अपने भक्तों के कल्याण के जिस महान् उद्देश्य को लेकर निकले थे—उसकी उपयोगिता एवं सफलता को जानकर हम लोगों को आप पर तथा अपने सौभाग्य पर जितना भी गर्व हो अनुचित न होगा। स्थान स्थान पर आपका जो विशाल हार्दिक स्वागत हुआ है वह आपके प्रति जिज्ञासुओं, धर्मप्रेमियों की श्रद्धा निष्ठा का स्पष्ट प्रमाण है जिसे सुन सुनकर हमारे हृदय गद्गद् हो रहे हैं।

उत्तराखण्ड के तपस्वी !

केवल भारतवर्ष के ही नहीं, देश-विदेश के जिज्ञासुओं की ज्ञान-पिपासा भी आपके निर्मल-ज्ञान-सागर के कण विन्दुओं से शान्त होती है। उनके हृदयों में भी आपकी विजय-वीणा झंकृत हो उठी है। इस प्रकार आपके विशाल हृदय से निस्सृत सूत्र ने विश्व-भ्रातृभाव के एक नवीन प्रकार को जन्म दिया है। जिसके स्मरण मात्र से असीम आनन्द प्राप्त होता है। वह है—'अध्यात्म-पथ में देश, जाति, वर्ण, शासक, शासित के भेद-भाव से रहित हम सब एक आत्मा हैं।'

आनन्द कुटीर के सर्वस्व !

आपकी प्रशंसा हम क्या करें। सूर्य को दीपक दिखाने की धृष्टता हम नहीं कर रहे। देश देशान्तर में आपके द्वारा अपना, अपने स्थान का भाल उन्नत होता देखकर इस असीम आनन्द को

संवरण कर लेना भी तो आसान नहीं था। अतः आनन्दोल्लास में बरबस जो छलक पड़ा वही आपके चरण-कमलों तक प्रवाहित हो गया। इसमें हम निर्दोष हैं।

ऋषिमुनि देवेन्द्र !

अन्त में आपकी कीर्ति पताका की परिधि उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त होवे, ऐसी भगवान् से प्रार्थना करते हुए हम पुनः एक बार आपको हार्दिक प्रणाम निवेदन करते हैं। भगवान् हमारा यह सौभाग्य सब भांति अक्षय करने की कृपा करें।

हम हैं आपके कृपाभिलाषीः—

पं० देशराज जी	ला० इन्द्रसैन जैन	देवेन्द्र विशारद
प्रेसीडेन्ट व्यापार सभा	सेक्रेटरी टि० ग० मों० यूनियन	अध्यक्ष विज्ञान प्रेस तथा विज्ञान प्रेस के कर्मचारी गण।

द्वितीय परिशिष्ट

इसमें दिग्विजयी के अनमोल वचनों का सारांश संग्रहित है, और उनके अपने संस्मरण भी हैं। किसी भी महापुरुष के संस्मरणों का मूल्य अनादि काल से अमूल्य रहा है और यह भी सच है कि उन-उन संस्मरणों पर मनुष्य जाति की सभ्यता और संस्कृति बनती आई है। अतः श्री स्वामी जी के व्याख्यानों और उनके संस्मरणों के बिना प्रस्तुत ग्रन्थ की पूर्ति नहीं हो सकती। हाँ, इतना अवश्य है कि महाराज के सभी व्याख्यान पुस्तक के विस्तार भय से नहीं दिए जा सके। किन्तु यह भी प्रयत्न किया गया है कि उनके अमूल्य विचारों को किसी भी प्रकार प्रस्तुत ग्रन्थ में संक्षिप्ततः प्रकाशित कर दिया जाय।

शिवानन्द दिग्विजय के अवसर पर

श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती जी महाराज के परम-पवित्र उपदेशों का संक्षिप्त सारांश

"अखिल भारत यात्रा" के अवसर पर प्रत्येक नगर में श्री-चरण महाराज के कई व्याख्यान हुए, जिनका प्रकाशन पुस्तक के विस्तार-भय से किया जाना असम्भव है। किन्तु पाठकों के परिज्ञान के लिए हम महाराज के उपदेशों का संक्षिप्त सारांश, जो 'हंस-क्षीर-न्याय' के समान होगा, दे रहे हैं। श्री स्वामी जी के उपदेशों में इन्हीं भावों की ध्वनि प्रतिध्वनित होती थी, जिसने भारत और लंका में कोटिशः नागरिकों के हृदयों को मोहित और पवित्र किया था। विश्वविद्यालयों और सार्वजनिक संस्थानों, रेडियो केन्द्रों और देवस्थानों में दिग्विजयी महाराज की आत्मगीता के इन शब्दों ने वह अपूर्व हलचल मचाई, जिसकी पुनरुक्ति इतिहास बारम्बार करता रहेगा।

दिग्विजयी के उपदेश

ओ३म । अमरत्व की सन्तानो और अनादि विभूतिसत्ता के अविनश्वर अवतार ! तुमने अनेकों विज्ञानों का अध्ययन किया है। किन्तु एक विज्ञान ऐसा भी है, जिसके जान लेने स अदृश्य पदार्थ दृश्यमान हो जाते, अश्रुत गीत सुन लिए जाते और अज्ञात रहस्य जान लिए जाते हैं। यही विज्ञान सब विज्ञानोका विज्ञान है, जिसे आत्मविज्ञान कहते हैं। सुनते हैं कि उसी विज्ञान से हम आनन्दमय अमर-जीवन और शाश्वत शान्ति को प्राप्त कर सकते है। उसे ही ब्रह्मविद्या कहा जाता है। ब्रह्म या आत्मा ही तो सभी नामो और रूपो का परमाधार है। वही मन, इन्द्रिय और प्राण को प्रकाश देता है। कहा है न उपनिषदो ने 'मनस्य मन: प्राणस्य प्राण:'। यदि उस विज्ञान को प्राप्त कर लोगे तो सभी दुखो और भौतिक क्लेशों का निराकरण हो जाएगा; साथ-साथ आनन्द का अक्षय भण्डार भी आपको मिल जाएगा। जब आप ब्रह्म के उस परम-विज्ञान का परिज्ञान कर लोगे तो आपका मन सासारिकता मे उपलिप्त नहीं रहेगा, असन्तुष्ट भी नहीं रहेगा । क्यो कि ब्रह्म परिपूर्ण है। उस परमपद को प्राप्त कर लेने पर आपकी सम्पूर्ण इच्छायें पूर्ण हो जाऍगी और आप कामनारहित अवस्था की प्राप्ति कर सकेंगे, जिसे राजयोग में निर्विकल्प समाधि कहा है।

इसीलिए हमने यह शरीर धारण किया है। प्रत्येक के मन मे आत्मा को प्राप्त करने के सस्कार वर्तमान हैं, किन्तु पथप्रदर्शन

की ही आवश्यकता है और लगन के साथ साधना करना ही वांछित है। सांसारिक चक्कर में हम यह नहीं जान पाए कि किस प्रकार परम-लक्ष्य की प्राप्ति की जाए। अतः आज से हम पुनः जाग जाएँ और आत्म-साधन के पथ पर निरन्तर अग्रसर होते जाएँ।

कैसे आत्मज्ञान प्राप्त करें ?

किन्तु आत्मा की प्राप्ति कैसे की जाए, यह प्रश्न सभी के मन में आता है। तुम कितने ही बुद्धिमान् क्यों न हो, तुम्हारे पास कितना ही प्रचुर धन क्यों न हो और कितना ही लोकबल भी क्यों न हो, किन्तु जब तक आप साधना नहीं करेंगे, लगन के साथ आत्मा को प्राप्त करने की चेष्टा नहीं करेंगे—तब तक आप अन्धकार में ही भटकते रहेंगे। मैं तो आपको ज्यादा पचड़े में डालना नहीं चाहूँगा। यदि सच पूछो तो मैं आपके भटकने का कारण भी अच्छी तरह जानता हूँ। कमी यह है कि आप मन के कार्य-कलाप को समझने की चेष्टा ही नहीं करते और न आपमें साधन करने की तीव्र इच्छा ही है। वैसे तो सभी लोग यही चाहेंगे कि आत्मज्ञान हो जाय और वे जीवनमुक्ति के अनुभव करने लगें। किन्तु साथ-साथ वे अपने परिवार, अपनी समाज-प्रतिष्ठा और अपने वैभव को भी देखते रहना चाहेंगे। यही हमारी कमी है। जिस प्रकार नाव को किनारे बाँधने पर उसे रात-दिन चलाने का भी कोई फल नहीं होता, उसी प्रकार

अपना मन दुनियाँदारी में जकड़ कर नाममात्र की साधना कोई भी मूल्य नहीं रखती। साधना का अर्थ तो यह है कि हम अपने अशुद्ध मन को शुद्ध करें और अपना ध्यान अधिक-से-अधिक परमात्मा की ओर ही लगायें। अपने दैनिक जीवन में 'भक्ति-भक्ति' का नाम लेकर पुकारना हमें तब तक शोभा नहीं देता, जब तक हम अपने हृदय में सचमुच परमात्मा की उज्ज्वलता के दर्शन न करें और जब तक हम अपने हृदय के परमात्मा को प्रत्येक रूप में रमा हुआ न जानें। "मुँह में राम और बगल में छूरी" यह योग नहीं है। इसे भक्ति और आध्यात्मिकता की संज्ञा देना हमारी मूर्खता ही होगी। हमारा जीवन नियमित होना चाहिए और सिद्धान्तों की आधार भूमि पर सुदृढ़ भी।

आप लोग योग और आध्यात्मिकता का नाम सुनकर डरना नहीं। यह गलत धारणा है कि योग और आध्यात्मिकता मनुष्य को जंगली बना देती है और उसे संसार से दूर हटा लेती हैं। योग तो प्रत्येक स्थान में सिद्ध किया जा सकता है। किन्तु वह योग क्या है? वह है हमारे दैनिक जीवन में दिव्य गुणों का जागना। हमारे दैनिक जीवन से दुर्गुणों का भाग जाना, उनका अस्त हो जाना ही दुनियाँदारी से हट जाने का अर्थ है। यदि हम सद्गुणों का संचय करेंगे तो आत्मतत्त्व की प्राप्ति कर सकेंगे। अतः चाहिए कि हम स्थिरबुद्धि, निरहंकारिता, सरलता, ईमानदारी, भद्रता, दानशीलता और पवित्रता के अभ्यास आरम्भ कर दें। वैसे तो एक ही गुण के विकास में आप आनन्द और

शान्ति का अनुभव कर सकेंगे, किन्तु ज्योंही एकाध गुण विकसित हो जायगा, त्यों ही आप अन्य गुणों को स्वतः ही जागृत होता हुआ पाओगे। इन्द्रियाँ आपको बार-बार विचलित करती रहती हैं। आप छोटी-से-छोटी बात को ले कर दुःखित या अति प्रसन्न हो जाते हो; अपनी चीजों के प्रति तो ममता और मोह के भाव रखते हो और दूसरों की चीजों को लापरवाही से देखते आते हो। इस आदत को दबाना होगा। अपनी-परायी नाम की कोई चीज नहीं। यह तो स्वार्थपरता का उदाहरणमात्र ही है। यदि आप को इच्छा हो कि आप सच्चे और ईश्वरीय गुणों का संचय करें, तो आज से ही आपको परमार्थ के भावों से परिपूर्ण हो जाना होगा। याद रखो कि इस जगत् में कोई भी वस्तु ऐसी नहीं, जिसे आप सदा अपनी कह सकें। धन-दौलत आती तो है आपके पास, किन्तु चली भी तो जाती है किसी दूसरे के पास। पति-पुत्र, स्त्री और पोते भी आते हैं, किन्तु चले जाते हैं और सदा के लिए आपके नहीं बने रहते। इसी प्रकार दुनियाँ में प्रत्येक वस्तु आपकी होते हुए भी सदा के लिए आपका साथ नहीं दे सकती। अतः उचित यही है कि उन नश्वर चीजों के मोह में न पड़ें और व्यर्थ की चिन्ता मोल न लें। जब तक कोई वस्तु हमारे पास है, उसका उचित व्यवहार करें और यह याद रखें कि किसी भी समय वह वस्तु हमारा साथ छोड़ सकती है। यदि मन में यह भावना सदा बनी रहेगी तो यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि हम आज की तरह

दुःखित, चिन्तित और सन्तापित नहीं होगे। महाराजा जनक इसके ज्वलन्त उदाहरण थे। उन्होने एक बार कहा था, "मिथिलाया प्रदग्धाया न मे किञ्चित विनश्यति"। अर्थात मिथिला मे आग लगी तो मेरा क्या जाता है ? इसका अर्थ यह नहीं कि महाराजा जनक लापरवाह थे। किन्तु इस उदाहरण से यह तात्पर्य है कि महाराजा जनक की अनासक्ति भावना परमार्थ के उस चरम पद तक पहुँच चुकी थी, जहा वे जगत् की प्रत्येक वस्तु को अपना न जानकर प्रत्येक का जानते थे और उन को क्षणभंगुर समझते थे। यही निरासक्ति प्रत्येक मनुष्य मे उदय होवे तो मैं विश्वास-पूर्वक कह सकता हूँ कि मनुष्य-समाज के समस्त दु खो की इति-श्री हो जायेगी।

दैवी गुण

मुझे यह भी कहना ही पड़ता है कि आज हमारे सामने ऐसे गुरु नहीं, जो इस ज्ञान की दीक्षा दें। आज तो केवलमात्र विश्वविद्यालयो की लोक शिक्षा ही जीवन का आधार बन चुकी है, जिस आधार पर हम आज की संस्कृति को हिलती डुलती हुई देख रहे हैं। जब तक विश्वविद्यालय मनुष्य को आत्मतत्व की शिक्षा नहीं देंगे, विद्यार्थियों को सत्पथ की ओर चलने की प्रेरणा नहीं देंगे और जब तक शिक्षक स्वयं परमार्थ, परोपकार तथा जनहितपरायणता प्रभे वीण नहीं होगे, तब

तक हम मनुष्य-समाज के आतंकित जीवन को यथापूर्व ही पाएँगे।

मैं पूछता हूँ कि क्या जीवन में कुछ आनन्द भी है, जिसके लिए हम परमार्थ जैसी वस्तु को त्याग रहे हैं उसे भूल रहे हैं ? यदि जीवन मे कुछ आनन्द है, यदि जीवन में भोगे जाने वाले भोग अक्षय हैं, तो हम उनको भोगते रहें, कुछ भी आपत्ति का विषय नहीं उठ सकता। किन्तु यदि जीवन में अनुभूत आनन्द अक्षय आनन्द नहीं दे सकते, यदि वे भोग हमारे पास सदा के लिए नहीं रह सकते और यदि वे लोक-वैभव हमारा साथ सदा के लिए नहीं दे सकते तो हम आज ही इनका त्याग करते हैं और आत्मा नाम की ऐसी वस्तु की खोज मे जाते हैं, जिसे प्राप्त कर लेने पर सभी आनन्द प्राप्त हो जाते, सभी ज्ञान हस्तामलकवत् हो जाते, सभी वैभव करतल-भूमि पर नाचने लगते और सभी शान्तियां कर जोड़े हमारी सेवा में युगानुयुगों तक खड़ी रहती हैं।

आत्मा में तन्मय वह जीवन कैसा है ? क्या वह इन्द्रजाल है या भानुमती का पिटारा ? नहीं, नहीं । वह तो साक्षात् जीवन है, दिव्य गुणों का भण्डार, ईश्वरीय चेतना का आगार, सद्गुणों का रत्नाकर और सदाचारशीलता का हिमाचल ... जहा से निःसृत और प्रस्रवित होती हैं, आत्म-विज्ञान के प्रकाश की सहस्रधा रश्मियाँ।

आत्मनिष्ठ जीवन इसी देह और इसी जीवन में किसी भी समय प्राप्त किया जा सकता है। आत्मनिष्ठ जीवन प्राप्त करने के लिए यह आवश्यकता नहीं रहेगी कि आप अरण्यों की भूमि मे समाहित रहें। आत्मनिष्ठ जीवन को प्राप्त करने के लिये अनिवार्य होगा कि आप अपने दैनिक जीवन को सत्यपरायणता की कसौटी पर परखें और उस ईश्वरपरायणता के आधार पर प्रतिष्ठित करें। सदा यह याद करते रहें कि सर्वत्र परमात्मा-ही-परमात्मा का अधिवास है। 'सियाराम मय सब जग जानी'. अतः सीताराममय हो जाने से विश्व में कौन-सा पदार्थ ऐसा है, जिसमे सियाराम न हो। प्रत्येक पदार्थ में परमात्मा का साक्षात्कार कर लेने और सत्यतः परमात्मा को स्थित देखने से हम प्रत्येक कर्म सावधानी से करेंगे। ऐसी अवस्था मे यह सम्भव नहीं होगा कि हम बेईमानी, बदनीयती, दुराचार का व्यवहार करें, दूसरो को ताड़ित, दूसरो का अनर्थ और दूसरों के प्रति अनुचित बर्ताव करें। बल्कि हम उस समय इस सीमा तक विकास के मार्ग पर चले जाएँगे कि विश्व के प्रति हमारा कर्तव्य असीम हो जाएगा। हम उसकी सेवा के लिए सतत सन्नद्ध रहेंगे। यह इसीलिए कि परमात्मा के अतिरिक्त विश्व मे और किसी भी जीव की सत्ता नहीं। विश्व में आत्मा और आत्मा में ही विश्व को देखने वाला निश्चयतः प्रत्येक कर्मों को करते हुए भी निरासक्त और निर्लिप्त ही रहेगा—साथ-साथ आनन्द तथा शान्ति का अधिनायक भी।

यही जीवन की साधना है, जिस मे सफलता पाने पर हम आत्मपद के अधिकारी हो सकेंगे।

व्यर्थ के आनन्द त्यागो

रही आनन्द और भोग-विलास की बातें। जो पदार्थ किसी सम्पर्क के कारण हमे आनन्द देते हैं, वे दु.ख के गर्भ ही जाने जाने चाहिये। मिठाइयाँ आनन्द देती हैं, किन्तु उनका परिणाम कितना भयंकर होता है। मिर्चें भी कितना आनन्द देती हैं, किन्तु हम यावज्जीवन उस आनन्द का परिणाम भोगते रहते हैं। गीता मे तो यह स्पष्ट कहा है कि प्रारम्भ मे आनन्द को देने वाले भोग नहीं भोगे जाने चाहिये, क्योंकि उनका परिणाम निश्चयत. दु खदायी ही होता है। जो पदार्थ हमे पहिले आनन्द देते हैं, वे भविष्य मे हमे अकल्पनीय दु ख ही देंगे। पुत्र के जन्म के समय हमें जितना आनन्द होता, उससे अधिक दु ख हमे होता है, जब वह बीमार होकर कराल-काल के गाल मे गिर जाता है। यदि हम पुत्र के विवाह पर एक-दो दिन हँसते हैं, तो उसके मरण के उपरान्त यावज्जीवन आँसू बहाते रहते हैं। क्या इनको सुख कहा जा सकता है ? सुख तो उस आनन्द को कहा जाता है, जिसका कभी भी नाश न हो।

हम देखते हैं कि आज का मनुष्य भोग-विलास की ओर उन्मुख हो रहा है। और यह भी सम्भव है कि वह किसी दिन

गर्व, मोह, ममता आदि शत्रुओं से जीवन जर्ज्जर हो गया है। हम संसार में ही आनन्द चाहते हैं; पुत्र, धन, दौलत और जग-वैभव में ही आनन्द चाहते हैं। अतः हम अशान्त हैं। कभी भी हम एकान्त में बैठ कर यह विचार नहीं करते कि दुनियां से दूर नहीं तो दुनियाँदारी से दूर ही रहना चाहिए। संसार से भाग कर कहाँ जाओगे? किन्तु सांसारिकता से भाग कर परम-परात्पर आत्मा के केन्द्र—अपने हृदय में विश्राम कर सकोगे। संसार से भाग कर जंगलों में जाने से ही आनन्द नहीं मिलेगा। आपको दैनिक जीवन में ही साधना करनी होगी। अनुभव करना होगा कि योग, प्रत्येक व्यक्ति के लिए है। योग केवलमात्र तपस्वी की ही पैतृक सम्पत्ति नहीं, वीतराग की ही अपनी वस्तु नहीं—किन्तु प्रत्येक बालक और प्रत्येक महिला, प्रत्येक युवक और प्रत्येक वृद्ध का जन्मसिद्ध अधिकार है।

अतः आप लोग जान गए कि परमात्मा की भावना से दूर रहना ही दुःख और परमात्मा के सन्निधान में रह कर अपने जीवन के प्रत्येक व्यवहार को करना ही सुख है। नास्तिकता दुःख है और धार्मिकता परम-सुख है। भक्ति में ही परम सुख है और मदान्धता में परम दुःख। एकान्त में आनन्द है और द्वन्द्वों में महादुःख। संयम में शान्ति है और स्वेच्छाचार में महापतन। सत्यपरायणता में महद्-सुख है और असत्यशीलता में रौरव नरक। जनकल्याण की भावना आत्म-कल्याण की

भूमिका है और पर-अपकार का प्रयत्न आत्म पतन का दृश्य। सवभूतहितार्थ ही मनुष्य का जन्म हुआ है और सर्वभूतहित ही आत्मा की सच्ची पूजा है; साधक की सच्ची किन्तु कठोर कसौटी है, जहा सोना खरा उतरता ही है और नकली धातु पहिचान ली जाती है। ईश्वरीय कार्यों को करने मे सुख है और अनीश्वरवादी कार्यों को करने में चिरन्तन दुःख। इसे जानो और आज से ही अपने जीवन को इसी साँचे मे ढालो, जिससे आपके जीवन मे आत्मा का सुगठित ओज जन्म ले सके।

माया—कल्पना और आदर्शवाद

आखिर यह भोग कब तक तृप्त कर सकेंगे। जो वस्तु आज आनन्द दिया करती है, वही दूसरे दिन आपके लिए भार-सी हो जाती है। वास्तव मे आनन्द वस्तु मे नही, किन्तु आपकी कल्पनाओं मे है, आपके विचारो मे है, जिन विचारों मे आप उस वस्तु विशेष को महत्त्व देते हो। दूध आपको सुखकर प्रतीत होता है, किन्तु कब तक ? दूसरा गिलास लीजिए और तीसरा लीजिये। अतिशयता आपको वमन करने पर विवश करेगी ही। भोगो की अतिशयता ही तो सभी क्लेशों की माता है। अपनी प्रिय वस्तुओं को महत्व देना त्याग दो तो कुछ ही दिनों में अनुभव हो जायगा कि सच्चा सुख उन विषय-पदार्थों मे नहीं, किन्तु आपकी भावनाओं मे और आपके आदर्शवाद

में था। अतः आवश्यकता है मनोविचारों पर संयम की। यदि मन में नित्यप्रति जागते हुए विचारों पर नियन्त्रण स्थापित किया जायगा तो जीवन अत्यन्त सुख से बीत सकेगा और आप किसी भी बात पर मिनट-मिनट में क्षुब्ध नहीं होवेंगे और न गई बातों पर शोच ही करेंगे। इसी प्रकार अन्य विषयों को लीजिए। उनसे आनन्द की प्राप्ति तभी तक कर सकते हैं, जब तक आपकी उनके प्रति श्रद्धा है। जहाँ श्रद्धा गई, तहाँ यह वस्तु घृणा का विषय बन जाती है।

माया मोहित कर रही है। लोग अज्ञानी और विवश पतंगों की नाईं अग्निशिखा को ही आनन्ददात्री समझ कर, सर्वनाश के लिए अग्रसर हो रहे हैं। आज से ही माया के बन्धन से मुक्त हो जाना होगा। जो कुछ भी आप अपनी इन्द्रियों से देखते, सुनते और सोचते हो, वह केवलमात्र भुलावामात्र है. माया का बन्धन है। यदि आपकी सच्ची लौ है, यदि आप चाहते हैं कि विषय-भोगों के चक्कर में अपना मार्ग न भूलें तो आज से ही साधना प्रारम्भ कर दो, आज से ही आध्यात्मिक पथ पर अग्रसर हो जाओ और आज से ही आत्मपरायण, ईश्वरपरायण, सत्यशील और मुमुक्षु बन जाओ। मैं विश्वास दिलाता हूँ कि आप अवश्यमेव इन लौकिक तापों से मुक्त हो सकेंगे, जिस प्रकार हमारे अनेकानेक पूर्वज होते आये हैं।

कर्म करो और हृदय को उदार बनाओ

अतः आज से ही अपने हृदय को समधुर और कोमल

बनाओ। नित्यप्रति भगवान् की आराधना करो। वे ही आप
बल देंगे। बिना भगवत-आशीर्वाद के पथ पर चलना असम्भ
होगा। अनेकों जन्मों के पाप-ताप आगे नहीं आने दें
किन्तु भगवद्-अनुग्रह मार्ग को स्वच्छ और निष्कण्टक बनायेग
अकैतव भक्ति मार्ग पर जीवन-ज्योति का प्रकाश विस्तार
करती रहेगी। माया के मोहक चमत्कार और विषयों के र
का भय मार्ग से जाता रहेगा। साथ-साथ सदाचरण को आ
साथ लिए चलो। यदि सदाचरण पर डटे रहोगे तो निश्च
है कि अपने को आत्मा के विशाल मार्ग पर एकाकी न
पाओगे। ये दिव्य गुण ही एकाकी मार्ग पर आपको बहल
और सहलाते रहेंगे सत्यशीलता, निष्कपटता, तीव्र लग
निरहंकारिता, प्रसन्नता, नियमित्र जीवन, सिद्धान्तप्रियत
दयाशीलता, उदारता, पवित्रता, स्थिरता, शान्ति-दान्ति, क्षम
अनुकूल-व्यवहारपरायणता, नम्रता, निश्चयपरायणता, सक्रियता
महानता, विशालता तथादिक सुन्दर और मनोहर गुण जीव
के अमूल्य अलकार बन जाने चाहिये। तभी आप जीवन
लक्ष्य की प्राप्ति आनन्दपूर्वक कर सकेंगे। याद रखो कि पर
पिता परमात्मा सब के पिता हैं। वे ही आपकी करुण पुका
सुनेंगे। यदि आपके पास साधना करने को नैतिक बल न
तो विगलित हृदय से प्रार्थना कीजिए, सच्चे दिल से याचन
कीजिए। वे आपको सीधी राह र लगा ही देंगे। जिन्हों
विशाल ब्रह्माण्ड और अनन्त सृष्टियां रची हैं और जो इ

सबका प्रतिपालन अलौकिक प्रकार से करते हैं, और जिनकी आज्ञा के बिना पत्ता भी नहीं हिल सकता, उनके आशीर्वाद मिल जाने पर क्या यह सम्भव है कि आप की करुण पुकार अनसुनी चली जावे ? भगवान तो पतितों का उद्धार करने वाले हैं—"तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्।" मृत्यु के सागर में पतितों को उबारने वाले भगवान हैं। उन्हीं की स्तुति गानी चाहिए, उन्हीं के गुणों का वर्णन होना चाहिए और उन्हीं की पूजा की जानी चाहिए तथा उनका ही एकमात्र आसरा होना चाहिए। वे ही विश्व के नियन्ता हैं, हमारे माता और पिता हैं।

भक्ति के साथ-साथ कर्म भी करते जाओ। आलसी, काहिल और कामचोर मत बनो। आलसी का विश्व अन्धकार-मय है और काहिल के लिए विश्व में दुःख-ही-दुःख है। यदि निरासक्ति की भावना से कर्म करते, कर्मों को भगवान के चरणों में अर्पण करते जाओगे तो सत्वरतः मुक्ति का अनुभव करोगे और परात्पर-आनन्द की संप्राप्ति भी। गीता में भगवान् ने इसका उपदेश दिया है। इसे नित्य के जीवन मे ढालना होगा। यदि आप डाक्टर हैं, तो आपका कर्तव्य होगा कि आप दीन-दुखियों की धर्मार्थ चिकित्सा करें। यदि अदालत के कर्मचारी हैं, तो आपको दीनों की सहायता में कोई भी कोर-कसर नहीं रखनी होगी। यदि शिक्षक हैं, तो निर्धन विद्यार्थियों को निःशुल्क शिक्षा का दान देवें। इसी

प्रकार प्रत्येक का कर्तव्य निर्धारित किया जाना चाहिये। दुनियाँ में आप जो कुछ भी कर रहे हों, जिस किसी स्थान में हों और जब-जब सम्भव हो, सेवा-ही-मेवा करें तथा जनकल्याण की बलवती भावना से ओतप्रोत रहें। आपका हृदय शुद्ध हो जायगा और कलुषित संस्कार विदग्ध हो जायेंगे। हृदय-गगन में ज्ञान का मधुर प्रभात उदित हो जायेगा। सेवा ही पूजा है और सेवा ही सच्चा मोक्ष है। सेवा के लिए हमें आज से ही तैयार होना होगा। यही मनुष्य के जीवन की प्रथम और चरम साधना है।

धर्मपरायणता ही जीवनशक्ति है

कर्मपरायण के साथ-साथ धर्मपरायण भी बनिए। कर्म करने का अर्थ निरर्थक है, यदि आप कर्म का समन्वय धर्म के साथ नहीं करते हैं। धर्मपरायणता ही वह कल्पवृक्ष है, जिसका सुन्दर फल शान्ति और समृद्धि, मुक्ति और कैवल्य है। यही जीवन का ध्येय है। इसी लिए ही आपने मनुष्य देह पाई है। प्रत्येक क्षण अमूल्य है, जो धीरे-धीरे चिरन्तन की गोद में छिपता भी जाता है, जिसे आप पुनः नहीं बुला सकते। कौन जानता है कि हम इस सत्सग भवन से बाहर जाने तक जीवन की श्वासें ले सकेंगे। अतः जिन्हें कुछ करना है जल्दी कर लें। धर्मकार्यों में विलम्ब की आवश्यकता नहीं।

विश्वात्मक प्रेम धर्मपरायणता का आधार है। प्रत्येक प्राणी में भगवान् के दर्शन करो। यही विश्वात्मकता है। इसी के आधार पर आप जीवन-मन्दिर का सुन्दर निर्माण कर पायेंगे, जिसमें शान्ति और आनन्द, अमरत्व और विभुत्व का देवता निवास कर सकेगा।

धर्मपरायण व्यवसायी लोभी नहीं होता। वह धनसंचय भी नहीं करता। वह कभी भी असत्यभाषण नहीं करेगा, चोरबाजारी में नहीं कूदेगा और न कोई अन्य पाप ही करेगा। सर्वत्र आराध्य को देखते हुए, वह प्रत्येक कार्य को पूजा की ही भावना से करेगा। ऐसा व्यवसायी ही धन्य है और है विश्व की प्रथम आवश्यकता।

यदि मालिक धर्मपरायण है तो वह अपने सेवकों के साथ समान और उचित व्यवहार करेगा, मानो वे दोनों इस विशाल जीवन पथ के सहयात्री हों। प्रेम और दया उसके जीवन की ज्योति होगी, जिसके प्रकाश में वह अपना पथ गहनतम अन्धकार में भी खोज सकेगा और ईश्वर के सान्निधान में जा पावेगा। इसी प्रकार सेवक का धर्म भी है। उसको अपने स्वामी में परमात्मा के दर्शन करने चाहिए। तभी वह शान्ति और आनन्द, कल्याण और सफलता को प्राप्त कर सकता है।

इसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति रात दिन अपने जीवन के ध्येय को प्राप्त करने की चेष्टा करता रहे, विश्व-शान्ति और

आत्म-कल्याण (जन-कल्याण) मे योग देवे। वही मानवता का सच्चा सेवक है और समाज का उद्धारक भी। आत्मा का ज्ञाता तो वह है ही।

अत धर्मपरायण और कर्मपरायण बनो। सदाचारी, पवित्र, परमार्थप्रिय और साधुता के अवतार बनते हुए, इसी देह मे अक्षुण्ण कीर्ति के यशभागी बनते हुए, शाश्वत जीवन के मन्त्र मे दीक्षित होते तथा परम कैवल्यधाम मे आत्मप्रतिष्ठा को पाते हुए।'

योग करो और योगी बनो

साथ साथ योगाभ्यास करना न भूलो। नित्यप्रति आसन और प्राणायाम का अभ्यास करो। अपने शरीर को स्वस्थ और कार्यानुकूल बनाओ। अस्वस्थ मनुष्य सदा दु खित रहता है, किन्तु आरोग्य जीवन की प्राप्ति कर आप प्रत्येक काय मे सफलता की प्राप्ति करोगे। यही योग है। नित्य के जीवन में कुछ हल्के आसन और कुछ सुगम प्राणायाम करना तथा कुछ देर तक प्रात काल तथा रात्रि को ध्यान मे बैठना चाहिए। इस प्रकार आप अपने को सभी दैहिक विकृतियो से परिमुक्त हुआ पाएँगे।

वायुमार्ग से जाना, गगनमण्डल मे अदृश्य हो जाना तथा मनोनुकूल शरीरो की प्राप्ति करना तथा तथाविध सभी

सिद्धियाँ योग की मनोवैज्ञानिक शाखायें हैं, किन्तु सच्चा और कल्याणकारी योग तो अपने जीवन को पतन से उत्थान की ओर ले जाना है। अन्धकार से प्रकाश की ओर, दुराचरण से सदाचरण तथा स्वार्थपरता से विश्वकल्याण की ओर अपनी बौद्धिकता तथा कर्मपरायणता को जागृत करना ही योग है। भौतिकता, नास्तिकता, असत्यता, कामुकता और धूर्तता से विरत होकर परमात्मिकता, अहिंसा, सदाचरण, इन्द्रिय-सयम तथा शीलपरायणता के मार्ग की ओर अपनी बुद्धि, अपने कर्म तथा अपनी वाणी को अभ्युदित करना ही योग है। योग यदि अपने अन्दर नहीं प्राप्त हो सकता तो और कहीं भी प्राप्त नही हो सकता। संसार के प्रत्येक कर्म कुशलता-पूर्वक करते हुए प्रत्येक प्राणी आत्मसिद्धि को प्राप्त कर सकता है। मनुष्य कभी भी ईश्वर को न भूले, क्यो कि जीवन की सच्ची सफलता ईश्वर-भक्ति पर ही निर्भर रहती है।

ज्ञानी बनो और मनन करो

नित्य प्रति उपासना के द्वारा आन्तरिक मल को हटा कर, योगाभ्यास से शरीर को योग्य और समर्थ बना, वेदान्तिक विचारों द्वारा अपने को आदर्श और विशाल करते हुए, हमें जप, कीर्तन और सत्संग में विश्वास करना चाहिए। इनका सहयोग ही आपको मनन या विचार के मार्ग से परमार्थ की

र ले जायगा। मनन करने से विचार-शक्ति पवित्र होगी। चार शक्ति में शक्ति आयेगी। भावनाएँ ही कालान्तर में पके जीवन का निर्माण कर पायेंगी। ईश्वर का ही मनन रो। परमात्मा के अतिरिक्त किसी की भी सत्य-सत्ता नहीं र उनसे इतर और कोई आदर्श और दिव्य चैतन्य नहीं। नन्त शाश्वत परमात्मा पर मनन करोगे तो अमर शाश्वत और परिपूर्ण बन सकोगे।

•

संकेत—भविष्यवाणी

जीवन छोटा तो है ही और हमें भी कई काम करने हैं। अतः आज और इसी क्षण से जुट जाना चाहिए। कौन जानता है कि 'कल' आयगा भी या नहीं। न जाने किस समय काल हमारे हाथ पकड़ कर उस लोक को रवाना हो जाय। अच्छा तो यही होगा कि हम काल के बन्धनों में गिर-पड़ने से पहिले ही अपने को हरि के पार्षदों से सम्पन्न करलें, जो किसी भी समय हमें काल के आक्रमण से मुक्त रख सकेंगे। आज से ही जप, कीर्तन, सत्संग और स्वाध्याय करना प्रारम्भ कर दो। पवित्र जीवन बिताओ। योग और आत्मज्ञान तो अपने ही अन्दर हैं। यदि अपने अन्दर नही पा सकते तो और कहीं भी नहीं पा सकोगे। यदि बाहर खोजोगे तो असफल ही रहोगे। जंगलों मे, कन्दराओं और

पर्वतों मे केवल निराशा ही मिलेगी। किन्तु अपने अन्दर खोजोगे तो धीरे-धीरे अनन्त-ज्ञान की निधियाँ मिलती जाएँगी और आप आश्चर्य चकित हो जाएँगे कि जिस आनन्द और जिस ज्ञान को आप बाहर खोजते थे, वह तो आपके अन्दर ही वर्तमान था, मृग भूल कर कस्तूरी को तृणदल मे खोज रहा था। जिस तरह मदिरा मे नशा होता है, सागर मे लहरें होती हैं, सूर्य मे प्रकाश और अग्नि मे ताप होता है। जिस प्रकार मेघ मे जल और पुष्प मे सौरभ होता है, उसी प्रकार प्रत्येक में आत्मा है और अभिन्न आत्मा है। बिना आत्मा के तो उसकी सत्ता ही नहीं।

कामनाओं के मल-विकार को हटाना होगा। दुनियाँ की खाक छानने से क्या मिलेगा ? अपनी सफाई कर लो। बस, आपको स्वच्छ आत्मा प्रतिभासित होगा।

मुझे विश्वास है कि प्रत्येक व्यक्ति मुझे अच्छी तरह समझेगा और मेरी बातो को चरितार्थ सत्य समझ कर व्यवहारिणीय जानेगा। मुझे आप लोगो के मध्य में आनन्द का जो अनुभव हो रहा है, मैं उसका वर्णन नही कर सकता। मैं आपको धन्यवाद देता हूँ, जो आपने शान्तिपूर्वक मेरे व्याख्यान को सुना। मैं आपका कृतज्ञ हू, जो आपने मुझे सेवा का यह अवसर दिया। पुन पुन मैं सब लोगो का ऋणी हूँ, जो आप लोगों ने इस परम पवित्र अवसर को जन्म दिया और इसे सफल भी बनाया। भगवान् का आशीवाद आप लोगो पर सदा रहे और

आप नित्य साधना के द्वारा अपने-अपने जीवन के निश्चित और निर्धारित क्षेत्रों में आत्मा की अनुभूति करलें तथा जन-कल्याण (आत्मकल्याण) की तीव्र भावनाओं से ओतप्रोत हो अपने जीवन को सरस और सुन्दर, मनोहर और आकर्षक बनालें। वे ही आपको शक्ति दें।

ओ३म् सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्।

ओ३म् असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्माऽमृतं गमय।

ओ३म् पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।

ओ३म् शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

दिग्विजयी के अपने संस्मरण

(श्री स्वामीजी महाराज ने भारत और लंका में किन-किन विशेषताओं के दर्शन किए और जनता में किस सीमा तक ईश्वर प्रेम की भावना को जागते देखा, उनको संस्मरण स्वरूप यहा पर प्रस्तुत किया जा रहा है। वेदों के उद्भवकाल से लेकर आज तक हम महापुरुषों की वाणी से जो कुछ सुनते आए, वह केवलमात्र उनके संस्मरण ही तो थे, जिनकी अनुभूति उन्होंने तत्कालीन जनता की भावना को लेकर की थी। श्री स्वामी जी के सस्मरण भी उसी मार्ग के उज्ज्वल प्रकाश हैं।)

मुझे आज भी 'अखिल भारत यात्रा' की याद आती है। आदिकाल से विश्व का आध्यात्मिक सिरमौर भारत आज भी अपने आध्यात्मिक वेष मे मेरे सामने सजीव होकर नृत्य करते आता है। आदि मानव की आध्यात्मिक सभ्यता के देश भारत मे मुझे अपने संस्मरणो को अंकित करना ही पड़ा।

परम पिता परमात्मा की कृपा का वर्णन किया ही किन शब्दो में जाय। उन्होंने बार बार इस पवित्र देश मे योगियों,

सन्तों तथादिक आचार्यों को आविर्भूत कर जनता के पवित्र पथ को निर्मल और निष्कंटक रखा तथा युगों-युगों में आने वाली जनता को पतन के मार्ग से बचाया। मानवता पर इस प्रकार की कृपा करने के लिए हम अपने आदि सन्तों और आचार्यों के प्रति बारम्बार प्रणाम करना चाहते हैं। उन्होंने ही तो ईश्वर-साक्षात्कार की परम्परा को अमर बनाए रखा। उनके प्रयत्नों के फलस्वरूप समय-समय पर राष्ट्रीय संकटों के भीषण अन्धकार और इतिहास की उथल पुथलों में भी आध्यात्मिक-शक्ति जीवन-सम्पन्न रही और मानवता को असत्य से सत्य, अन्धकार से प्रकाश और मृत्यु से अमरत्व की ओर ले जाती रही। आज भी आत्म ज्ञान के प्रोज्वल-प्रकाश का विस्तार विश्व के इस पवित्र मन्दिर* (भारत) मे आलोकित हो रहा है और मनुष्य के प्रत्येक जीवन को आदि-आध्यात्मिक-प्रकृति के सौन्दर्य के दर्शन कराता आ रहा है।

यात्रा के प्रारम्भ होते ही मैंने उत्तर प्रदेश मे देखी, ज्ञान और भक्ति की पवित्रमती युगलधाराएँ, जिनका उद्गम-अचल था, जनता का भक्ति-पूर्ण हृदय। अयोध्यापुरी के कीर्तनों और वाराणसी की वेदध्वनियों का मधुर राग मुझे सदा स्मरण आता रहेगा। वे मेरी यात्रा के अविस्मरणीय दिन ही रहेंगे, क्योंकि मैंने उन दिनों में वैदिक भारत की प्रगति का दर्शन किया।

बिहार में भी मैंने विशेषता के दर्शन किए। उच्चाधिकारी-वर्ग को भी मैंने सादे वेष में आध्यात्मिक-वृत्तिसम्पन्न देखा। राज्याधिकारी भी आध्यात्मिक प्रवृत्तियो के उपासक थे। प्रत्येक बिहारी की भक्ति और सादगी सचमुच वहा के गौरव का निरन्तर प्रगतिमय इतिहास है। भगवान् भी तो पूर्ण समर्पण के उपरान्त ही हृदय मे निवास करते हैं।

गौराग महाप्रभु और श्री रामकृष्ण के देशवासियो ने भी मुझे अपनी भक्ति की अमृतसलिला में स्नान करवाया। स्वामी विवेकानन्द जी की मधुमयी लीला भूमि मेरे प्रवेश होते ही भगवन्नाम सकीर्तन से प्रतिमुखरित हो उठी। मैंने उनमे देखी, सहिष्णुता और एकता की चरम सीमा। वह एकता आत्मैक्य की भूमिका ही थी, जहां 'विश्वबन्धुत्व की भावना तो केवल अभिवचनमात्र है। समग्र बंग देश मे मैंने चरम-एकता के विशाल विचारो को आश्चर्यपूर्णरीत्या मनुष्य जीवन से समन्वित देखा।

वहा निवास करने वाले मारवाडी समुदाय ने भी उदारता और दानशीलता के प्रताप से हृदय और मानव-बाहु को एकांकित कर दिया है। जहा धन की गंगा मारवाड़ी परिवारों मे बहा करती है, वहीं प्रभु भक्ति का मधुर आलोक भी उनके जीवन का आदर्शमय प्रकाश रहा करता है।

और, जब मैं दक्षिण भूमि की ओर आकृष्ट हुआ तो मैंने आन्ध्र जनसमुदाय की भावुकता के चरम-दृश्य देखे।

"सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्" की यह नाट्यस्थली ही थी। मुझे सिर-ही-सिर दृष्टिगोचर होते थे। आनन्द-सम्भूत कलरवमात्र ही श्रुतिगत होता था। सचमुच आन्ध्रदेशवासियों की भक्ति की सीमा को नापना असम्भव ही होगा। सब की मुखाकृतियों में मैंने मानव समाज की जीवनाशा के लक्षण देखे और यह परिज्ञान प्राप्त किया कि अभी मानवसमाज में मानवता के जीवित रहने की सम्भावना है। मुझे स्पष्ट पता चला कि इतर देशों की भौतिकता और नास्तिक विचारपरायणता के प्रबल होने पर भी मानवसमाज पतन के कराल कौर से बचा लिया जा सकता है। मानव समाज के उत्थान की आशा के यह लक्षण मैंने प्रत्येक आन्ध्रवासी में देखे।

तात्पर्य यह कि मैंने किसी भी नगर में नास्तिकता को नग्नप्रदर्शन करते हुए नहीं देखा। परमात्मवाद के आगे जन-जन के शीश नत हो जाते थे और ईश्वरपरायणता को सबने एक स्वर से स्वीकार किया। मैंने सुना था कि आजकल के नवयुवक साम्यवाद के प्रवाह में बह कर परमात्मवाद के विनाश पर तुले हुए हैं, किन्तु यह केवल किम्वदन्ती ही रही, क्योंकि मैंने नवयुवकों के हृदयों से भी विश्वास और आस्तिकता के प्रकाश को विकीर्ण होते देखा और उनमें जनसेवा की लगन देखी। आवश्यकता है कि इस प्रकाश में हम खोई हुई वस्तुओं की प्राप्ति करें। राज्यों का कर्तव्य होगा कि वे परमात्मवाद, सदाचार और आस्तिकता के द्वारा जन-जन के सुन्दर भावों का उपयोग

करें, जिसके फलस्वरूप मनुष्य और मनुष्य का देश किसी सु-कथित अनिर्वचनीय आनन्द की समुपलब्धि कर सके।

आज आवश्यकता है कि समाज मे समानता के व्यवहार को प्रधानता दी जाय और समानता को ही जीवन का प्रथम कर्तव्य माना जाय। वह समानता वेदान्तिक समानता है, जहां प्रत्येक जीव ब्रह्म है, परमात्मा है तथा च आनन्दमय है। हिन्दू धर्म की यह विचारधारा आज मनुष्य को आर्थिक साम्यवाद की ओर नहीं; किन्तु आध्यात्मिक साम्यवाद की ओर जाने का सन्देश देती है, जहा मनुष्य के हृदय तक एक हो जाते हैं, जहा मनुष्य की आत्मा भी एक हो जाती है और मनुष्य-मनुष्य परम-एकता मे सम्प्रतिष्ठित हो जाते है। वेदान्तिक साम्यवाद पोला साम्यवाद नहीं, जहा रक्त और क्रान्ति को ही प्रधानता दी जाती है, जहां मनुष्य को एक तो माना जाता है, किन्तु उनके हृदयो को और उनकी आत्माओ को एक नहीं किया जा सकता। जहा केवलमात्र एकता का स्वाग मात्र ही है। अत हमारा कर्तव्य होता है कि हम मानवसमाज के विशाल-जीवन की सुखमयी शान्ति के लिए वेदान्तिक विचार धारा और व्यावहारिकता का आश्रय लें और उसी आधार पर अपने विचारो, व्यवहारो तथा समाज के निर्माण का सफल प्रयास करें। यही हमारा भारतीय साम्यवाद है, जिसके लक्षण मैने यात्रा के अवसर पर भारतीय जनता मे पनपते देखे।

जब-जब मैं विश्वविद्यालयों तथा अन्य विद्यापीठों में प्रविष्ट

हुआ तो मैंने वहां के विद्यार्थियो और शिक्षको मे योग के प्रति अखण्ड भक्ति को सजीव देखा। मैंने अनुभव किया कि उनमे से प्रत्येक योग के प्रति श्रद्धा की भावना रखता था और योगनिष्ठ होने की चाह भी। अतः मुझे विचार आया कि शिक्षा विभाग द्वारा इस अंग को सबल बनाना हमारा कर्तव्य होगा। योग सम्बन्धी आवश्यक बातो और आवश्यक व्यवहारों की शिक्षा का प्रसार करना प्रत्येक विद्यापीठ के शिक्षकवर्ग का *अनिवार्य कर्तव्य होगा*, यदि वे जनता की सेवा करना चाहें तो। अमेरिकादि इतर देश भी योग मे दिलचस्पी ले रहे हैं और अपनी अभिरुचि की पूर्ति के लिए अनेकों व्यवस्थाएँ भी कर रहे हैं। जब यह अवस्था अन्य देशों की है तो हम भी क्यों न इस विद्या को जीवन दान दें, क्योकि यह हमारी ही तो सम्पत्ति है, जिसका जन्म हिमालयों के अन्तरिक अंचल से हुआ था, हमारे पुराण पुरुषो द्वारा।

जनता के विचारो मे कलुषता का आविर्भाव होता जा रहा है। चलचित्रो ने विचारो और वाणियों मे अश्लीलता भर दी है। चलचित्र यदि रहे तो केवलमात्र जन-शिक्षण और जन-उत्थान के लिए ही। यदि मनोरंजन को ही चरम-ध्येय मान लिया जाय तो हम चलचित्रों को समाज-का विकार कहेंगे और समाज का दूषण भी। मैंने नगरों की दीवालों पर चित्रों के अश्लील विज्ञापन देखे, जो हमारे देश की मानसिक-शक्ति के अवसान के लक्षण हैं। कुछ-न-कुछ अवश्य किया

जाना चाहिए। समाज मे दूषण का व्यापक हो जाना संक्रामक है। चित्रों के प्रति हमारा ध्यान अवश्य आकृष्ट होना चाहिए। अश्लील साहित्य की भरमार के वेग को रोकना होगा और जनता के मानसिक विकास के लिए साधनो को शक्तिमय बनाना होगा। मुझे विश्वास है कि इन दो चार नियमो के पालन करने से हमारे नवयुवक सच्चे नागरिक बन सकेंगे।

जहा तक आध्यात्मिक प्रवृत्ति का प्रश्न उठ सकता है, मैंने देखा कि सभी वर्गों के लोगों ने आध्यात्मिकता के सम्मुख किसी भी प्रकार के जातीय या साम्प्रदायिक भेद को नहीं जागने दिया। क्या हिन्दू और क्या मुसलमान और क्या अन्य जातियों के लोग—सभी ने मेरी अखिल भारत यात्रा के समय पवित्र ज्ञानयज्ञ मे भाग लिया और आनन्द पूर्वक मुझे निमन्त्रित किया। मुझे स्मरण है कि चिदम्बरम् (दक्षिण भारत) मे मुझे हिन्दू और मुसलमान वर्गो ने एक सार होकर मानपत्र अर्पित किया। तिरुनेलवेली मे यही हुआ। वास्तव मे आत्मिक-सत्ता मे भेदभाव होता ही नहीं। पारस्परिक वैमनस्य और भेदभाव का जन्मदाता तो भौतिक मनुष्य ही है। जहा मनुष्य अपने को आध्यात्मिक सत्ता से एकाकार मानने लगता है या मानने का प्रयत्न करता है, वहा द्वैत की छाया भी नहीं रह सकती। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, बुद्ध, जैन तथेतर सम्प्रदायो का जन्मदाता तो मनुष्य का भौतिक जीवनमण्डल है। मनुष्य की आध्यात्मिकता के चरम-विकास मे जाति और वर्ग,

भेद-भाव और सामाजिक विभिन्नताएँ कभी रह ही नहीं सकती। क्या किसी ने सूर्योदय के उपरान्त अन्धकार की कल्पना की है ?

यही कथा भारतवर्ष के आश्रमो और देवालयो के विषय मे भी कही जा सकती है। मैं जिन जिन देवालयों और आश्रमो मे गया, उनकी स्मृति सदा मेरे जीवन मे ‧ हलहानी रहेगी। मुझे अच्छी तरह ज्ञात है कि भारत की सच्ची सम्पत्ति मन्दिरों और वहा के आश्रमो में ही आदिमानव के काल से सुरक्षित रहती आई है। सच्चे शब्दो मे कहा जाय तो वे ही भारत के जीवन प्राण रहते आए हैं, जिन्होंने बारम्बार गिरते-रोते हुए देश और देश की जनता को सभाला और उसमे सांस्कृतिक-आध्यात्मिक चेतना सम्प्राणित रखी। अतः जब-जब मैं उन देवालयों और आश्रमो को अपने स्मृति पट पर लहलहाते देखता हू तो मुझे सहसा ही हिरण्यगर्भोदय के प्रातःकाल का प्रथम मुहूर्त स्मरण हो आता है, जिस समय मनुष्य ने प्रथम बार जीवन प्रभात देखा था। यदि मैं प्रत्येक देवस्थान की महिमा के वर्णन के लिए एक-एक अक्षर भी लिखू तो महाभारत के उत्तर-खण्ड की रचना का आविर्भाव हो सकेगा। हा, इतना तो अवश्य कहूगा कि भारत के जीवन की कुञ्जी देवस्थानो और वहा के पवित्रतम आश्रमो मे ही है अन्यत्र नही। अन्यत्र तो केवल आडम्बरमात्र है।

तदुपरान्त मुझे भारत के नरेशो की धर्मपरायणता स्मरण हो आती है, जिन्होंने प्रत्येक प्रकार से मुझ हिमाचल के भिक्षु

को राजमहलों की सीमाओं में प्रविष्ट होने तो दिया। उनकी श्रद्धा और भक्ति, आध्यात्मिकता और धर्मपरायणता बारम्बार इतिहास के कोरे पन्नों को स्वर्ण-लिपि मे चित्रमय करती आ रही है और करती जा रही है। अपनी राज्यश्री के दर्प को दूर किसी सागर के तट पर भूल कर उन्होने धर्मप्रचार मे मेरी सहायता हर प्रकार से की और न केवल मेरी सहायता ही की, किन्तु, सच्चे शब्दो मे तो यही कहा जा सकता है, उन्होने विश्व में रहने वाली सभी जातियो के आध्यात्मिक-जागरण मे सहयोग दिया। मानवसमाज भारत के धर्मपरायण नरेशों के ऋण से उऋण कभी नहीं हो सकेगा और बारम्बार समाज की कथाएँ उनके आध्यात्मिक प्रभाव की पुनरावृत्तियां करती रहेंगी।

इस प्रकार मैं लंका पहुँचा, आत्मज्योति का वृत्तदल ले कर। श्री लंका ने मुझे पहिचाना और मेरी बातों को सुना। लंका भारत के अत्यन्त सन्निकट है। भारत और लंका का आध्यात्मिक सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक सम्बन्ध एक सूत्रांकित है। भेदभाव की खाई तो भौतिक मनुष्य की ही खोदी हुई है, जिसे प्रेम की नौका द्वारा पार किया जा सकता है। जब मैं गया तो मुझे लंका मे कई विभीषण मिले, जिन्होंने धर्मविजय में सहयोग दिया। मैंने सबके घर की दीवारों पर से राम नाम के दीपक की ज्योतिरेखा को जागते देखा और हरिनाम की अमृतसलिला को बहते हुए। हरोहरा—के गीत गाती हुई

पवित्रतमा लंका लाखों की संख्या में सागर के तटों पर आई—राम से युद्ध करने नहीं, किन्तु आत्मविजय में मेरा परामर्श लेने। सीताहरण को सफल बनाने नहीं, किन्तु सांसारिकता (दैविकता) से मुक्ति पाने। यही लंका निवासियों ने मेरे सामने व्यक्त किया। मैंने उनके प्रश्नों का उत्तर तथा शंकाओं का समाधान किया। उनको सद्परामर्श दिया। मैंने साम्यवाद के समान किसी भी वाद की ओर उनको आकृष्ट नहीं किया, किन्तु मैंने उनको वादों के भूत से मुक्ति दिलाई। मैं लोकवादो का पुजारी नहीं और संसार को सत्य जानने वालों का अनुयायी भी नहीं। मैं कठोर सत्य कहने वाला हूं, किन्तु मधुर आत्मा की गीता को गाने वाला ही। लका ने यही मुझमें देखा और यही मैंने लंका को दिया।

इस यात्रा में मैंने देश की आध्यात्मिक-स्थिति के अतिरिक्त अन्य स्थितियों का भी निरीक्षण किया। मुझे तो यही ज्ञात हुआ कि वर्तमान कष्ट और विवशताएँ केवलमात्र हमारे हाथों की लीलाएं हैं। मुझे ज्ञात हुआ कि हमने ही अपने हाथों अपने पैरों में कुल्हाड़ी मारी है। अत्यन्त गम्भीर परीक्षण के उपरान्त में इसी निष्कर्ष पर जा पहुँचा कि आध्यात्मिक जीवनचर्या अवश्यमेव और निःसन्देह सभी प्रकार के लोकसंकटों का निवारण कर सकती है। आध्यात्मिक जीवनचर्या रोटी भी दे-सकती है और रोटी के आनन्द का अनुभव भी। आध्यात्मिक-

जीवनचर्या सभी प्रकार के लोक संकटों का निवारण कर सकती है ।

इस प्रकार मैंने समग्र भारत में आध्यात्मिकता के जीवन के लक्षण देखे और यह प्रत्यक्ष अनुभव किया कि निरन्तर प्रयत्न करने से देश की आध्यात्मिकता को बलवती बनाया जा सकता है और उसे जन-जन के जीवन की प्राणवायु भी। यदि भारत को आज रोटी और वस्त्र की आवश्यकता है तो आध्यात्मिकता का व्यवहार भी उसके लिए अनिवार्य ही होना चाहिए। रोटी और वस्त्र की समस्या तो एक छोटी-सी समस्या है, यदि मनुष्य अपने जीवन की महान् समस्या को हल कर ले और यह प्रण कर ले कि वह अपने जीवन को सरल शान्त और सचाई से प्रपूरित रखेगा।

मैं भारत और सिंहल द्वीप के निवासियों का अत्यन्त ऋणी हूं और परम पिता परमात्मा से यही प्रार्थना करता हूं कि मैं पुनः पुनः इसी प्रकार मानवता की सेवा के सौभाग्य को प्राप्त करता रहूं—क्योंकि मानवता की सेवा ही परमात्मा की सेवा है और यदि किसी भी सेवा को सच्ची सेवा कहा जाय तो वह मानवता की ही है। मनुष्य ही वह अचिन्त्य और शाश्वत शक्ति है, जिसमे महान् ब्रह्म ने स्वरूप को समाविष्ट कर पाया और अनन्त काल के लिए मनुष्य के क्षेत्र मे आश्चर्यजनक और अद्‌भुत स्मृति अंकित कर दी। जब तक मानवता मे जीवन रहेगा और जब तक मनुष्यता को मनुष्यता पर प्रतिष्ठित रहने

का अधिकार है, तब तक ब्रह्म भी शाश्वत और अमर है और उसको केवलमात्र मनुष्य में अपने साक्षात्कार का वरदान प्राप्त होगा।

किन्तु साथ-साथ यह भी सत्य ही है, प्रत्येक भौतिक और आध्यात्मिक पदार्थ में ईश्वर की व्यापकता है, चाहे वह पदार्थ उसके साक्षात्कार का सौभाग्य प्राप्त नहीं करता हो। इस प्रकार के अनन्त पदार्थों की सामूहिकता के चिरन्तन स्वरूप सार्वभौम ब्रह्म को, जो स्वयंभू है, प्रत्यंग प्रणाम।

दिग्विजय मण्डल का रूपावलोकन

मण्डल के सदस्यों से मिलिए

— ०:—

स्वामी चिदानन्द सरस्वती

आपका व्यक्तित्व और व्यक्तिगत वार्तालाप दिग्विजय के अवसर पर जनता के लिए स्फूर्ति का वरदान रहा। आप में जनता को मुग्ध करने के सभी गुण वर्तमान तथा सक्रिय रहे। यात्रा में आपने व्याख्यानों द्वारा स्वामी जी के उपदेशों को जन-प्रसारित किया। फैजाबाद, बनारस और पटना के नागरिक क्या आपको कभी भूल सकेंगे? अपने शरीर और अपनी व्यक्तिगत सुविधाओं के लिए आप सदा निश्चिन्त रहे। आपका जीवन गुरुसेवा में तन्मय हो गया है। जब अपना घर ही किसी भले मनुष्य के अर्पण कर दिया तो उसे बुहारने और ताला लगाने की आवश्यकता के लिए आपको चिन्तित नहीं रहना पड़ता। उसी प्रकार जब गुरु के चरणों की सेवा में सब कुछ दे डाला तो फिर अपने पास और रहा ही क्या जिसकी चिन्ता की जाए। स्वामी चिदानन्द जी इसके उज्ज्वल रत्न-प्रकाश हैं।

दिग्विजय मण्डल : (मध्य में) श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज
(खड़े) स्वामी वेंकटेशानन्द, स्वामी चिदानन्द, स्वामी गोविन्दानन्द,
स्वामी दयानन्द, स्वामी शिवप्रेम ।
(बैठे) योगिराज पद्मनाभ, स्वामी सत्यानन्द, स्वामी पुरुषोत्तमानन्द,
स्वामी ओंकारानन्द । अन्य सदस्यों के चित्र अन्यत्र देखिए ।

आप में स्वामी शिवानन्दत्व की मधुर आभा का छायालोक प्राचीर्य को प्राप्त करते जा रहा है। जहाँ हम विश्व के नियमों के अनुकूल व्यवहारपरायणता को आवश्यक जानते हैं, वहाँ आप विश्व के नियमों के पीछे परमार्थ को अनिवार्य बतलाते हैं और जहाँ मनुष्य के नाते हम जीवन की घटनाओं में 'महत्व' नाम की किसी भी वस्तु का अनुभव नहीं करते, वहाँ स्वामी चिदानन्द जी सम्पूर्ण जीवन की सक्रियता को महामाता की अभिप्रेरणा का अभिनय ही जानते हैं। यही ज्ञान, जो स्वामी शिवानन्द जी गुरु महाराज से उनको प्राप्त हुआ, उन्होंने यात्रा के अवसर पर जन-जन के हृदयों में प्रतिष्ठापित किया।

हिमालय से लेकर कन्याकुमारी और शिवगिरि के अंचल से सिंहलद्वीप की सिन्धुक्षालिता भूमि तक आपने अपने शरीर में शिवानन्दत्व का दर्शन गाया और उनके जनहितकारी उपदेशों को दिग्विजयी किया। त्याग और वैराग्य, बुद्धिगता और परोपकारिता के अचिरपूर्व आदर्श स्वामी चिदानन्द जी को कोटिशः हृदय तब तक याद करते रहेंगे, जब तक 'दिग्विजयी शिवानन्द जी' की स्मृति उनके जीवनों को अपने में एक-सूत्रांकित किए रहेगी। दिव्य जीवन की विश्वात्मक माला के कोहनूर, तपस्या और आत्मदर्शन के द्रष्टा तथा विशाल-ब्रह्ममय जीवन के स्रष्टा—स्वामी चिदानन्द जी हम भारतवासियों के हृदयों में सदा के लिए अमर रहेंगे और उनकी कहानी भी स्वामी शिवानन्द जी की कहानी के साथ कही जाती रहेगी; क्योंकि उन्होंने अपने

जीवन को विशाल-परात्पर जीवन के अध्याय मे ही समांकित कर दिया था।

श्री स्वामी नारायण और स्वामी पूर्णबोधेन्द्र जी

'अखिल भारत यात्रा' के प्रकूट-स्तम्भ आप दोनो पर दिग्विजय मण्डल का जीवन अवलम्बित रहा। कोटिशः भक्तों के आन्तरिक उद्गार जब मां के चरणों मे अपना स्नेह उड़ेलने के लिये स्वामी जी की सन्निधि में आते तो उस पवित्र प्रेम के संरक्षक ये ही दो स्वामी जी थे, जिनको सम्भवत अपने जीवन की चेतना का भी प्रात्यय नहीं रहता था। जनता अपनी सेवा के पुष्प अर्पण करती रहती थी और ये दोनों स्वामी जी अत्यन्त आदर और सावधानी से उस थाती का संरक्षण किया करते थे। 'दिव्य जीवन मण्डल' के विशालात्मक यन्त्र की ये निरन्तर-प्रचलित कीलिका रहे हैं। 'सेवा ही पूजा है—' यही इन्होने विचारा और कर्मपरायण हुए।

स्वामी शाश्वतानन्द जी···

· यात्रा के अवसर पर स्वामी जो के चरणों की रज को निहार कर चलते थे। कोई भी अवसर यात्रा मे ऐसा नहीं आया, जहाँ स्वामी शाश्वतानन्द जी उपस्थित न थे। आपके कीर्तनों

की सोमवती स्वर्णधारा में जनता ने अजस्र गति से स्नान किया और आपके उपदेशों ने उनके मनों को प्रभावित भी कर दिया।

स्वामी शाश्वतानन्द जी 'दिव्य जीवन मण्डल' के विशाल कर्मयोगी रहने के सौभाग्य को प्राप्त कर चुके हैं। आपने 'दिव्य जीवन मण्डल' के वे पूर्व दिन भी देखे, जब मण्डल के निरन्तर कर्मपरायण कार्यकर्ता अपने जीवन की सुविधाओं को किनारे रख, दिव्य-कार्य में लवलीन रहते थे। आपमें सब से महान् गुण रहे--गुरुसेवा और भगवद्-प्राप्ति की अथक लगन। इन्हीं दो कारणों ने आपके जीवन को दिव्य आनन्द से संचारित रखा। ऐसे शिष्य संसार में करामगण्य तो हैं ही और पूज्ञा के प्रतीक भी हैं। आप योग वेदान्त फारेस्ट यूनिवर्सिटी वीकली (अंगरेजी साप्ताहिक) के सम्पादक रह चुके हैं, जिसके द्वारा योग-वेदान्त के दर्शन का प्रचार दूर-दूर तक अत्यन्त सुविधापूर्वक हो रहा है।

जनमण्डल के लिए यात्रा को जीवित सत्य का रूप दिया। सम्भवत उनके ही प्रयत्नो के फलस्वरूप 'शिवानन्द दिग्विजय' को कालान्तर मे कोई गल्प पौराणिक कहने का साहस नहीं करेगा। चलचित्रों के सुमधुर योग से आपने यात्रा के चमकते हुए सोने मे सचमुच सुहागा ही लगाया। आपने कला का उपयोग किया और उसको परम सफल भी। ऐसे योगी कलाकार को कौन नहीं प्रणाम करना चाहेगा।

श्री स्वामी गोविन्दानन्द और स्वामी पुरुषोत्तमानन्द

हिमालय के पथ से लेकर सिंहल द्वीप तक ये ही दो स्वामी जी दिग्विजयी के दैहिक सहायक थे, जिन्होने अनेकों अवस्थाओ मे भी स्वामी जी महाराज की अथक सेवा की। सहस्रो मीलों की यात्रा मे भी इन्होने स्वामी जी महाराज के भोजनादि की व्यवस्था समुचित रूप से की, जिसके फलस्वरूप स्वामी जी को किसी भी प्रकार का कष्ट नहीं हुआ। अपने गुरुदेव की व्यक्तिगत परिचर्या मे इन दो स्वामी जी ने कुछ भी कोर कसर नहीं रखी। और, छाया के समान महाराज का अनुसरण कर उनके चमत्कारो को अपनी आँखो से देखा · औरो से कहने के लिए। और इसी प्रकार…

स्वामी ओंकारानन्द जी…

…महाराज की कथा भी गाई जाती है। वे क्षण क्षण मे

अपने गुरुदेव के बहुमूल्य उपदेश की पत्रावलियों को जनता में वितरित करते रहते थे। उनको संकोच नाम की वस्तु का कोई अनुभव ही नहीं। सीधे जनता के बीच घुँस जाना और पत्र-पत्रिकाओं को अलकनन्दा की धारा के समान प्रवाहित कर देना, उनकी यात्रानुगत दिनचर्या रही। हम जब विश्वविद्यालयों या अन्य स्थानों में पहुँचते तो हमें सर्वप्रथम उनके दर्शन होते, क्योंकि वे स्वामी जी महाराज की पुस्तकों के वितरण के लिए हमसे पूर्व पहुँच जाते थे। यह केवल उनकी अपूर्व क्रियात्मकता के परिणाम स्वरूप हम 'शिवानन्द दिग्विजय' के अवसर पर स्वामी जी की पुस्तकों को जन-जन में प्रचारित कर पाए। ऐसे शिष्य किसी भी गुरु की अमर थाती हैं, जिन पर संसार सदा के लिए गर्व कर सकता है।

स्वामी दयानन्द जी···

····भी दिग्विजय के अवसर पर कर्मयोगी के मन्त्र में दीक्षित कर दिए गए। जिन दयानन्द स्वामी जी को हम आश्रम में लोकोत्तर महात्मा के नाम से सम्बोधित करते थे, वे ही दयानन्द स्वामी जी साक्षात् कर्मपरायणता और निरन्तर क्रियाशीलता के अवतार बन उठे। स्थानों-स्थानों पर स्वामी जी के साथ जाना और जहाँ आवश्यकता पड़ी, स्वामी ओंकारानन्द जी को प्रचार और वितरण-कार्य में सहयोग देना—स्वामी

योग-वेदान्त

(हिन्दी मासिक पत्रिका)

वार्षिक मूल्य ३।।।) रु०। आरण्य विश्वविद्यालय की ओर से प्रकाशित यह मासिक पत्रिका हमारे पूर्वजों के विचारों का प्रतिनिधित्व करती है। आज के युग में यही एक मासिक पत्रिका है, जो योग-वेदान्त के व्यावहारिक ज्ञान को सरल और सुबोध-गम्य भाषा में प्रचारित करने का प्रयत्न कर रही है। इसमें सभी आध्यात्मिक विषयों को स्थान दिया जाता है और साथ-साथ जनता के लिये उपयोगी विचार भी प्रकाशित किये जाते हैं। पत्रिका प्रतिमास प्रकाशित होती है और इसका साल जुलाई से प्रारम्भ होता है। चन्दा भेजने का पता:—

व्यवस्थापक, योग-वेदान्त (मासिक पत्रिका)

आनन्द कुटीर, (ऋषिकेश)

आरोग्य जीवन

(आरोग्य और स्वास्थ्य शास्त्र की प्रतिनिधि)

आरोग्य शास्त्र का प्रचार करने के लिए यह मासिक पत्रिका आरण्य विश्वविद्यालय की ओर से प्रकाशित की जाती है। इसमें श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज के विचारों के साथ-साथ अन्य लब्धप्रतिष्ठित विद्वानों के विचार भी प्रकाशित किये जाते हैं। प्राचीन चिकित्सा की प्रणाली को सु-प्रचारित करती हुई यह पत्रिका सभी प्रकार के रोगों के निर्मूलन का उपाय सुगम

रूप में प्रकाशित करती है। वार्षिक मूल्य केवल ३॥) रु०
पृष्ठ संख्या ३०।

पता—व्यवस्थापक, आरोग्य जीवन
आनन्द कुटीर (ऋषिकेश)